तुलसी और उनका काव्य

लेखक
रामनरेश त्रिपाठी

मिलने का पता:-
मोहन न्यूज एजेन्सी कोटा

प्रकाशक
राजपाल एण्ड सन्ज़
कश्मीरी गेट
दिल्ली।

मूल्य
सात रुपया

१९५३
संशोधित व परिवर्द्धित संस्करण

प्रस्तावना

बहुत वर्ष हुए रामचरितमानस के शुद्ध पाठ की खोज करके मैंने उसे टीका सहित अपने हिन्दी-मन्दिर प्रयाग से प्रकाशित कराया था। यह पुस्तक उसका भूमिका भाग है। 'मानस' के प्रेमियों में इसकी बड़ी प्रसिद्धि हुई और महात्मा गांधीजी तक ने इसको पढ़ा और आशीर्वाद दिया। 'मानस' का पहला संस्करण दो ही तीन वर्षों में समाप्त हो गया; पर उसका दूसरा संस्करण न हो सका; क्योंकि सन् १९४१ में मैंने अपना प्रकाशन-कार्य बन्द कर दिया। पर इसकी मांग बराबर बनी रही और गोस्वामी तुलसीदासजी के भक्तगण इसके नये संस्करण के लिए बराबर प्रेरणा पहुँचाते रहे। अन्त में दिल्ली के राजपाल एण्ड सन्ज़ (पुस्तक प्रकाशक) ने इसके प्रकाशन की इच्छा प्रकट की, मैंने उनको इसका कापीराइट दे दिया।

इसबार भूमिका भाग रामचरितमानस से अलग पुस्तकाकार प्रकाशित हो रहा है। क्योंकि केवल भूमिका के लिए बहुतों को पूरा रामचरितमानस खरीदना पड़ता, जो उन्हें महँगा हो जाता। आशा है, प्रकाशक के इस सदुद्देश्य से 'मानस' के प्रेमी पाठकगण लाभ उठायेंगे।

वसंत-निवास,
सुलतानपुर
२५. ११. १९५१

—रामनरेश त्रिपाठी

विषय-क्रम

पहला भाग
तुलसी और उनका जीवन
[पृष्ठ १ से पृष्ठ ११८ तक]

दूसरा भाग
तुलसी और उनका काव्य
[पृष्ठ ११९ से पृष्ठ ३५० तक]

पहला भाग

तुलसी और उनका जीवन

१

तुलसी और उनका जीवन

आज से लगभग चार सौ वर्ष पहले सोरों (ज़िला एटा-उत्तर प्रदेश) के एक मुहल्ले में एक अत्यन्त निर्धन भिक्षुक ब्राह्मण के घर एक बालक पैदा हुआ। उसके जन्म लेते ही उसकी माँ का देहान्त हो गया। फिर थोड़े ही दिनों में उसका पिता भी चल बसा। बालक किसी तरह, पता नहीं दरिद्रता की किन-किन गोदों में पलकर, जीवित बच गया। शरीर में चलने-फिरने की शक्ति आते ही वह पेट का भार उठाये हुए, राम-राम बोलते हुए, पेट की आग को बुझाने के लिए स्वजाति, विजाति और कुजाति सब के घरों में खीस काढ़कर, पेट दिखाकर और बार-बार पैरों पर सिर रखकर टुकड़े माँगता फिरा, और केवल अपने बाहु-बल पर उसने करोड़ों मनुष्यों के कल्याणकारी अपने जीवन को मृत्यु से लगभग नब्बे वर्षों तक बचाये रखा।

बचपन में उसकी गरीबी का यह हाल था कि कहीं किसी के यहाँ विवाह के बाजे की आवाज सुनकर वह दौड़ जाता और बचा-खुचा आहार पाकर निहाल हो जाता था। किसी के यहाँ श्राद्ध का समाचार पाकर वहाँ जा बैठता और एक टुकड़े के लिए घंटों टकटकी लगाये रखता था।

उसके शरीर पर वस्त्र नहीं थे, इधर-उधर से चिथड़े जमा करके, सीकर या गाठें देकर वह तन ढक लेता। रात में कभी सड़क पर, कभी किसी मन्दिर में और कभी-कभी किसी मसजिद में भी सो रहता। इस प्रकार की न जाने कितनी भीषण वेदनाओं, असह्य यातनाओं के अन्दर से वह अपने शरीर को बचाकर समाज के सामने आया और अपने अमूल्य जीवन को उसने उसी दुःख से दग्ध, ताप से पीड़ित और चिन्ता से व्याकुल समाज को दान कर दिया, जिसने उसकी जीवन-रक्षा में स्वेच्छा से कुछ भी हाथ नहीं बँटाया था।

वह दुःख ही में जन्मा, दुःख ही में पला और फिर जब तक जिया तब तक दुःख ही को सहोदर की भाँति अपने हृदय से उसने चिपकाये रखा और फिर अपने तपोबल से उसी दुःख को सुख बनाकर संसार को सौंप दिया।

उस चमत्कारी बालक का नाम रामबोला था, जो पीछे गोस्वामी तुलसीदास के नाम से विख्यात हुआ। तुलसीदास जी का जीवन-चरित दुःखों का मर्मवेधी इतिहास है।

उस दीन, हीन, अनाथ मनुष्य ने जागृत अवस्था में एक सुन्दर स्वप्न देखा। उसने उस स्वप्न को आदर्श पुरुष-स्त्री, आदर्श समाज और सुराज के रूप में चित्रित किया। वही चित्र 'रामचरितमानस' है। 'रामचरितमानस' दीनता की एक अमूल्य भेंट है, जो गरीबों की ओर से एक अत्यन्त निर्धन व्यक्ति द्वारा संसार को मिली है। यह 'रामचरितमानस' गृहस्थों का अमूल्य धन है। इसे किसी मूल्य पर, बदले में बड़े-बड़े राज्य लेकर भी, वे देना स्वीकार नहीं करेंगे। यही इस युग में हिन्दुओं का वेद है।

एक गरीब ने जो कर दिखाया, वह राम से नहीं हो सका था। न अब राम हैं, न सीता, न लक्ष्मण, न विभीषण और न हनुमान; पर तुलसीदास अब भी हैं। 'रामचरितमानस' उनका प्रत्यक्ष रूप है, जो अमर है, अजर है, अमिट है, और अचल है। तुलसीदास न होते, तो शायद उनके राम भी न होते और तब हम भी न होते। परिवर्तनशील काल हमें खा चुका होता। यद्यपि यह भी राम ही की महिमा है।

माघ नाम के एक दानी कवि ने वदान्यता के असह्य भार को न सहन करके स्वयं पराजित होकर, आत्मघात कर लिया था। कहा जाता है कि वह निर्धनता से प्रताड़ित होकर एक बार धन के लिए धारा-नरेश की राजधानी में पहुँचा। उसने अपनी स्त्री के हाथ राजा के पास यह श्लोक लिखकर भेजा :

कुमुदवनमपश्री श्रीमदम्भोजखण्डं
त्यजति मुदमुलूकः प्रीतिमांश्चक्रवाकः।
उदयमहिमरश्मिर्याति शीतांशुरस्तं
हतविधिलसितानां हा विचित्रो विपाकः॥

'कुमुद-वन की शोभा जाती रही, कमल शोभायमान हो गए, उलूक हर्ष को त्याग कर रहा है, चक्रवाक प्रसन्न हो रहा है, सूर्य इधर उदय हो रहा है, चन्द्र अस्त हो रहा है। हा! विधाता के कार्यों का परिणाम विचित्र है।'

इस पद्य के भाव पर मुग्ध होकर धारा-नरेश ने कवि-पत्नी को प्रचुर धनराशि देकर विदा किया। कवि-पत्नी धन लेकर पति के पास चली। रास्ते में याचकों के मुख से अपने पति की कीर्ति सुनकर उसने सब धन उन्हें दे डाला और वह खाली हाथ पति के पास पहुँची।

माघ ने सब वृत्तान्त सुनकर कहा—तुमने बहुत अच्छा किया। पर तुम्हारे

दान का समाचार पाकर जो याचकों की भीड़ आ रही है, उसे अब क्या दिया जायगा ? दान-शक्ति की क्षीणता से विकल होकर माघ ने यह कहकर आत्म-हत्या कर ली :

अर्थी न सन्ति न च मुंचति मां दुराशा,
त्यागान्न संकुचति दुर्ललितं मनो मे।
याञ्चा च लाघवकरी स्ववधे च पापं
प्राणाः स्वयं व्रजत किं प्रविलम्बितेन ॥

'धन पास नहीं, आशा छोड़ती नहीं, मूढ़ मन दान देने से हिचकता नहीं, माँगने से लघुता प्राप्त होती है, आत्म-हत्या में पाप है, अरे प्राणो, क्यों देरी करते हो ? स्वयं क्यों नहीं निकल जाते ?'

दारिद्रयानलसंतापः शान्तः सन्तोपवारिणा।
याचकाशाविघातान्तर्दाहः केनोपशाम्यति ॥

'दरिद्रतारूपी अग्नि का सन्ताप तो सन्तोषरूपी जल से शान्त हो गया, पर याचकों की आशा के विघात से हृदय में जो जलन हो रही है, वह कैसे शान्त हो ?'

व्रजत व्रजत प्राणा अर्थिनि व्यर्थतां गते।
पश्चादपि हि गन्तव्यं क्व सार्थः पुनरीदृशः ?

'प्राणो ! याचक निराश होकर चले गए, अब तुम भी चल दो। पीछे भी तो जाना ही होगा; पर ऐसा साथ कहाँ मिलेगा ?'

जिस दरिद्रता से पराजित होकर माघ ने शरीर-त्याग किया, उसी दरिद्रता पर विजयी होकर तुलसीदास ने वह अक्षय-भांडार दान किया है, जिससे कोई याचक कभी निराश होकर नहीं लौटेगा। दरिद्रता पर तुलसीदास की यह विजय साधारण विजय नहीं है।

मनुष्यों का कल्याण करने के लिए तुलसीदास ने धन की लालसा ही नहीं छोड़ी, उन्होंने स्त्री का भी त्याग किया, जिसके सम्बन्ध में नीलपट्ट कवि कहता है—

स्त्री-बल से गर्वित कामदेव रति का हाथ अपने हाथ में लेकर अट्टहास करके कहता है :

अयं स भुवनत्रय प्रथित संयमी शंकरो
बिभर्ति वपुषाधुना विरहकातरः कामिनीम्।
अनेन किल निर्जिता वयमिति प्रियायाः करं
करेण परिलालयंजयति जातहासः स्मरः ॥

'देखो, यह शंकर हैं, जो तीनों भुवनों में जितेन्द्रिय प्रसिद्ध हैं। ये क्षण-भर भी अपनी प्रिया का वियोग नहीं सह सकते। उसे अपने अर्द्धाङ्ग में धारण किये हुए हैं। इन्होंने, अरे इन्होंने ही, हमें जीता है!'

पर कामदेव तुलसीदास पर अट्टहास न कर सका। वे दुखियों की सेवा में निमग्न थे; इससे कामदेव के लिए उन्होंने अपने अन्तर्जगत् का द्वार ही नहीं खुलने दिया।

जिस स्त्री-बल की अजेयता का गान भर्तृमेण्ठ करते हैं :

जनमजितमपीच्छता विजेतुं निशितदशार्धशरं धनुर्विमुच्य।
अतिरभसतयोद्यता स्मरेण ध्रुवमसियष्टिरिहांगनाभिधाना॥

'मनुष्य पर विजय पाने के लिए कामदेव ने अपने पाँचों तेज़ बाण छोड़े, पर मनुष्य जीता नहीं गया। तब उसने झटपट नारी-रूपी तलवार उठा ली।'

उस स्त्री-बल को कामदेव की उस तलवार को, तुलसीदास ने निष्फल कर दिया।

अश्वघोष ने सच ही कहा है :

तथा हि वीराः पुरुषा न ते मता जयन्ति ये साश्वरथद्विपान् नरान्।
यथा मता वीरतरा मनीषिणो जयन्ति लोलानि षडिन्द्रियाणि ये॥

'जो घोड़े, हाथी और रथ से युक्त मनुष्यों को जीतते हैं, वे सच्चे वीर नहीं हैं। सच्चे वीर तो वे विद्वान् हैं, जो छहों चंचल इन्द्रियों को जीतते हैं।'

तुलसीदास को हम ऐसे ही वीरों में अग्रगण्य पाते हैं। बाह्य जगत् में राम रावण पर विजय प्राप्त करते हैं तो तुलसीदास अपने अंतर्जगत् के शत्रुओं—मोह, मद, मत्सर आदि से जीवन-भर युद्ध करते रहकर कीर्ति पाते हैं।

तुलसीदास ने मानव-समाज के समस्त मानसिक और प्राकृतिक व्यापारों का अनुभव किया था। उनके मुख से एक विशाल जन-समुदाय की सरस्वती बोली थी। वे एक कवि थे, भक्ति उनका गौण विषय था। वे कवि होकर ही समाज में आये और अन्त समय तक कवि ही रहे भी। यों तो कवि की प्रतिभा बहुमुखी होती है और वह प्रत्येक विषय की मर्मज्ञता प्रकट भी करता है; पर उसकी एक खास प्रकृति अलग होती है, जिसमें वह विशेष रुचि रखता है। कोई शृङ्गार-रस का रसिक होता है, तो कोई करुण का; कोई हास्य-रस का प्रेमी होता है तो कोई वीर का। जिसकी रुचि जिस रस में अधिक होती है, वह उस पर अधिक अनुराग रखता है। तुलसीदास की रुचि भक्ति की ओर अधिक थी, और उन्होंने अध्ययन और अनुभव से भी उसमें अन्तरंगता बढ़ा ली थी; उनका लक्ष्य भी यही था कि भक्ति को जीवन का केन्द्र बनाकर उसकी

ओर लोगों को आकर्षित करें, जिससे उनके मन की कर्कशता और उनके जीवन का कल्मष दूर हो और वे सुखी बनें। इससे उन्होंने भक्ति पर अधिक तन्मयता दिखलाई। पर भक्ति का विवेचन उन्होंने कवि ही की हैसियत से किया है।

तुलसीदास एक राम के उपासक थे। उनके राम कौन थे? 'मैं सेवक, सचराचर रूप-रासि भगवन्त' कहने वाले राम। अर्थात् यह सचराचर जगत् ही उनका राम था। उसी के लिए उन्होंने तपस्या की थी। उनकी तपस्या का एक प्रत्यक्ष फल 'रामचरितमानस' है।

संसार की भयानक विपत्तियाँ सहकर कवि तुलसीदास ने हमें अमूल्य पदार्थ 'रामचरितमानस' के रूप में दान दिया है, उसकी तुलना संसार के किसी दान से नहीं हो सकती। 'रामचरितमानस' एक कल्याणकारी ग्रन्थ है। वह एक साँचा है, जिसमें जीवन को ढालकर उससे एक सुन्दर स्वरूप प्राप्त किया जा सकता है।

इस ग्रन्थ-रत्न का आदर गरीब की झोंपड़ी से लेकर राजमहल तक है। अच्छे-अच्छे विद्वान् भी इसका आनन्द लेते हैं और अपढ़ और अशिक्षित भी इसे बड़े चाव से गाते और सुनते हैं।

ज्ञान-प्राप्ति के लिए मनुष्य ने वर्णमाला का निर्माण किया पर जो उसे नहीं जानते, वे ज्ञान से भी वंचित रह जाते हैं। ज्ञान और मनुष्य के बीच में वह एक दीवार है, जिसे लाँघे बिना न कोई वाल्मीकि, व्यास को जान सकता है, न कालिदास को और न शेखसादी या शेक्सपियर को। पर तुलसीदास ने अक्षरों की उस दीवार को तोड़ दिया है। अक्षर-ज्ञान से रहित अहीर, धोबी, चमार, नाई, कहार आदि जातियों के लोग 'मानस' की चौपाइयाँ अपने जातीय गीतों में मिलाकर गाते और नाचते हैं। अक्षरों पर इस तरह की विजय संसार में शायद ही किसी कवि को प्राप्त हुई हो।

ऐसे ग्रन्थ-रत्न की चर्चा के पहले उसके कर्ता कवि का जीवन-चरित जानने की लालसा उसके प्रेमी पाठकों में स्वभावतः उत्पन्न होती है। पर खेद है, कवि में अपने गौरव का गर्व था ही नहीं, इससे उसने अपने बारे में हमें कुछ नहीं बताया। अपने राम से विनय-प्रदर्शन करने में प्रसंगवश उसके मुख से जो कुछ निकला है, उसीसे हम उसके जीवन-चरित का कुछ अनुमान कर सकते हैं। उसके सम्बन्ध की कुछ दन्त-कथाएँ भी मुख से मुख में चली आ रही हैं, उनमें भी सचाई का बहुत-कुछ अंश है। हमने उन सबको, जो उपलब्ध हो सकीं, एकत्र कर दिया है।

२
स्वकथित जीवनी

तुलसीदास को इस लोक से गये तीन सौ वर्षों से अधिक हो गए, पर अभी तक निश्चित रूप से यह निर्णय नहीं हो सका कि वे कौन थे ? कहाँ के थे ? कब उन्होंने जन्म लिया ? कब वे परलोकवासी हुए ? और उन्होंने कब और कितने ग्रन्थ रचे ?

वे एक विद्वान् थे, महाकवि थे, सम्मानित थे, पर उनमें अभिमान नहीं था, कीर्ति की लोलुपता नहीं थी; इससे उन्होंने अपने विषय में बहुत ही थोड़ा कहा है और वह भी उनके सांसारिक दुःखों की स्मृति-मात्र है।

उनकी लोकमान्यता की तो एक भी बात हमें उनकी लेखनी से नहीं मिलती। जहां कहीं उन्होंने अपने सांसारिक सुख का कुछ स्मरण किया है, वहाँ हम उन्हें नम्रता और अपने आराध्य देव के प्रति कृतज्ञता से दवा हुआ ही पाते हैं। इससे उनके कष्टों को हम जितना जान सके हैं, उतना उनके सुखों को नहीं।

तुलसीदास के रचे हुए कुछ ग्रन्थों में हमें उनके जीवन की एक अस्पष्ट आभा देखने को मिलती है, उसके आधार पर उनकी जीवनी का एक धुँधला-सा चित्र तैयार हो सकता है।

उनके ग्रन्थों से उनका जीवन-वृत्त निकालने के पहले हम उनके नाम से प्रसिद्ध ग्रन्थों के नाम दे देना आवश्यक समझते हैं।

उनके नाम से जितने ग्रन्थ इस समय उपलब्ध हैं, उनके नाम ये हैं—

१—रामचरितमानस
२—कवितावली रामायण
३—गीतावली रामायण
४—रामलला नहछू
५—वैराग्य-संदीपनी
६—बरवै रामायण
७—पार्वती-मङ्गल
८—जानकी-मङ्गल
९—रामाज्ञा-प्रश्न
१०—दोहावली रामायण
११—श्रीकृष्ण-गीतावली
१२—विनय-पत्रिका

१३—छन्दावली रामायण
१४—पदावली रामायण
१५—कुण्डलिया रामायण
१६—छप्पै रामायण
१७—कड़खा रामायण
१८—रोला रामायण
१९—झूलना रामायण
२०—हनुमान-बाहुक
२१—संकट-मोचन
२२—हनुमान-चालीसा
२३—राम-शलाका
२४—राम-सतसई
२५—कलिधर्माधर्म-निरूपण
२६—बारहमासी
२७—मंगल रामायण
२८—सूर्य पुराण
२९—राम मुक्तावली
३०—गीता भाषा
३१—ज्ञान-परिकरण

इनमें कितने ग्रन्थ वास्तव में तुलसीदास के रचे हुए हैं, इस विषय पर हम स्वतन्त्र रूप से आगे विचार करेंगे।

इनमें चार-पाँच ही ग्रन्थ ऐसे हैं, जिनमें उन्होंने कहीं-कहीं प्रसङ्गवश अपने जीवन की कुछ झलक डाल दी है। वे ग्रन्थ ये हैं—रामचरितमानस, कवितावली, विनय-पत्रिका, दोहावली और बरवै रामायण।

इन ग्रन्थों से उनके जीवन की जो बातें मालूम हो सकी हैं, उनके आधार पर उनकी स्वकथित जीवनी यहाँ दी जाती है—

समय

तुलसीदास के जन्म-काल का यद्यपि ठीक-ठीक पता नहीं चलता, पर वे किस समय में विद्यमान थे, यह अज्ञात नहीं है। 'रामचरितमानस' में उन्होंने उसकी रचना का यह समय दिया है :

संवत् सोलह सै इकतीसा। करउँ कथा हरि पद धरि सीसा॥
× × × ×
नौमी भौमवार मधु मासा। अवधपुरी यह चरित प्रकासा॥

तुलसीदास के दोहों का एक संग्रह 'तुलसी-सतसई' नाम से प्रसिद्ध है। उसमें उसका रचना-काल सं० १६४२ दिया हुआ है :

अहि रसना (२) थन धेनु (४) रस (६), गनपति द्विज (१) गुरुवार।
माधव सित सिय जनम तिथि, सतसैया अवतार॥

'पार्वती-मंगल' में संवत् का नाम 'जय' दिया हुआ है :

जय संवत् फागुन सुदि पाँचै गुरु दिनु।
अस्विनि विरचेउँ मंगल— ॥

'कवितावली' में यद्यपि कोई समय स्पष्ट नहीं दिया हुआ है, पर उसमें

रुद्रबीसी और मीन की सनीचरी का जिक्र आता है :

बीसी बिस्वनाथ की बिषाद बड़ो बारानसी
बूझिये न ऐसी गति संकर सहार की।

× × × ×

एक तो कराल कलिकाल सूल-मूल तामें
कोढ़ में की खाजु-सी सनीचरी है मीन की।

गणना से रुद्रबीसी का समय सं० १६६५ से १६८५ तक और मीन के शनैश्चर का योग सं० १६६६ से १६७१ के मध्य तक पड़ता है। 'कवितावली' का अन्तिम अंश इन्हीं दिनों में लिखा गया होगा।

'विनय-पत्रिका' में कोई सन्-संवत् नहीं दिया हुआ है। पर 'विनय पत्रिका' तब लिखी गई थी, जब तुलसीदास स्थायी रूप से काशी में रहने लगे थे।

ऊपर के प्रमाणों से इतना तो निश्चित ही है कि तुलसीदास सं० १६३१ और सं० १६८५ के बीच में विद्यमान थे। अब आगे यह तो अनुमान ही करना पड़ेगा कि 'रामचरितमानस' लिखने के समय तक वे कम-से-कम कितने वर्ष के हो चुके होंगे।

वंश

तुलसीदास ब्राह्मण-वंश के थे। 'विनय-पत्रिका' में वे लिखते हैं :

दियो सुकुल जनम सरीर सुन्दर हेतु जो फल चारि को।
जो पाइ पंडित परम पद पावत पुरारि मुरारि को॥

इसमें आये हुए 'सुकुल' शब्द से मैं यह अर्थ लेता हूँ कि वे शुक्ल ब्राह्मण थे। पर यह अर्थ न भी लिया जाय, तो 'सुकुल' शब्द का 'उत्तम कुल' अर्थ करने से भी ब्राह्मण-वंश ही समझा जायगा। तुलसीदास ब्राह्मणों के बड़े ही प्रशंसक थे भी। और दूसरे चरण में आया हुआ 'पंडित' शब्द तो और भी इस बात को पुष्ट करता है कि वे ब्राह्मण-वंश के थे। 'कवितावली' में उन्होंने अपने को 'जायो कुल मंगन' (मंगन-कुल में उत्पन्न हुआ) लिखा है। ब्राह्मणों के सिवा मंगन और कौन होगा?

जन्म और बालपन

तुलसीदास के जन्म लेते ही उनकी माता का देहान्त हो गया था। 'विनय-पत्रिका' में वे लिखते हैं :

तनु जन्यो कुटिल कीट ज्यों तज्यो मातु पिताहू।

'कुटिल कीट' का अर्थ 'विनय-पत्रिका' के टीकाकारों ने सर्पिणी आदि किया है, पर सोरों और उसके आस-पास 'कुटोला' नाम का एक कीड़ा होता

है, जो केकड़े की जाति का है और उसकी यह विशेषता कही जाती है कि वह अपनी माता का पेट फाड़कर बाहर निकलता है। तुलसीदास के उत्पन्न होते ही उनकी माता का देहान्त हो गया था; इसीसे उन्होंने अपनी तुलना 'कुटिल कीट' (कुटीला) से की है।

माता की मृत्यु के बाद ही, सम्भवतः थोड़े ही दिनों में, उनके पिता का भी देहान्त हो गया होगा। 'पिता' के साथ लगा हुआ 'हू' शब्द इसी अर्थ का द्योतक है।

'विनय-पत्रिका' में उन्होंने एक स्थान पर ऐसा ही संकेत और भी किया है :

स्वारथ के साथिन तज्यो तिजरा को सो टोटक औचट उलटि न हेरो।

सोरों और उसके आस-पास तिजरा बच्चों की पसली चलने की बीमारी को कहते हैं। उसके लिए यह टोटका किया जाता है कि आटे का एक पुतला बनाकर लोग चौराहे पर छोड़ आते हैं और फिर उलटकर उसकी ओर देखते नहीं। देखने से रोग के फिर वापस आने का भय रहता है। इससे भी पता चलता है कि तुलसीदास के माता-पिता उन्हें बचपन ही में छोड़कर मर गए थे।

'कवितावली' में एक स्थान पर वे और भी कहते हैं कि माता-पिता ने जन्म देकर छोड़ दिया :

मातु-पिता जग जाय तज्यो।

माता-पिता-विहीन, अनाथ तुलसीदास घर-घर घूमते और टुकड़े माँगकर खाते थे। बचपन के इस कष्ट को वे जीवन की अन्तिम घड़ियों तक भी न भूल सके। वृद्धावस्था में जब वे केवल मरने ही के लिए काशी में जा बैठे थे, तब भी वे अपने बाल्य-काल के कष्टों का चित्र देखते ही रहते थे।

बचपन में कथरी ओढ़े हुए, हाथ में मिट्टी का लोटा लिय हुए वे घर-घर टुकड़े माँगते फिरते थे। उन्होंने सब जातियों के टुकड़े खाये थे। उन दिनों चार चने को वे चारों फल (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) के समान समझते थे। द्वार-द्वार घूमकर, दाँत निकालकर, पेट खलाकर, पैरों पड़कर वे गृहस्थों को अपनी गरीबी बताया करते थे। पेट ने उन्हें कौन सा नाच नहीं नचाया ? दुष्टों तक के आगे उन्होंने अपना पेट खोलकर दिखलाया, पर किसी ने उस अनाथ को अपनाया नहीं, किसी ने उनसे बात भी नहीं की। स्वार्थ के साथी उनके माता-पिता तो तिजरा के टोटके की तरह उन्हें छोड़कर पहले ही चले गए। उन्होंने पलटकर देखा ही नही :

घर-घर माँगे टूक— (दोहावली)

पातक पीन, कुदारिद दीन, मलीन धरे कथरी करवा है ।
लोक कहै, विधिहू न लिख्यो सपनेहू नहीं अपने वर बाहे ॥
राम को किंकर सो तुलसी समुझेहि भलो कहिवो न रवा है ।
ऐसे को ऐसो भयो कवहूँ न भजे विन वानर के चरवाहे ॥
(कवितावली)

मातु-पिता जग जाय तज्यो विधिहू न लिखी कछु भाल भलाई ।
नीच निरादर भाजन कादर कूकर टूकन लागि ललाई॥
(कवितावली)

जायो कुल मंगन वधावनो वजायो,
सुनि भयो परिताप पाप जननी जनक को ।
वारें ते ललात विललात द्वार-द्वार दीन,
जानत हौं चारि फल चारि ही चनक को ॥
(कवितावली)

जाति के सुजाति के कुजाति के पेटागि वस,
खाये टूक सवके विदित वात दुनी सो ।
(कवितावली)

छाछी को ललात—
(कवितावली)

हुतो ललात कृसगात खात खरि मोद पाइ कोदौ कनै ।
(गीतावली)

चाटत रह्यों स्वान पातरि ज्यों कवहुँ न पेट भरो ।
(विनय-पत्रिका)

जननी जनक तज्यो जनमि करम विनु विधिहुँ सृज्यो अवडेरे,
फिरेउ ललात विनु नाम उदर लगि दुखउ दुखित मोहिं हेरे ।
(विनय-पत्रिका)

वाल दसाहूँ न खेल्यों खेलत सुदाउँ मैं ।
(विनय-पत्रिका)

स्वारथ के साथिन तज्यो तिजरा को सो टोटक औचट उलटि न हेरो ।
(विनय-पत्रिका)

द्वार-द्वार दीनता कही काढ़ि रद परि पाहूँ ।
हैं दयालु दुनि दस दिसा दुख दोष दलन छम, कियो न संभापन काहूँ ।

काहे को रोष दोष काहि धौं मेरे ही अभाग मोसो सकुचत छुइ सब छाहूँ ।।
(विनय-पत्रिका)

हाहा करि दीनता कही द्वार-द्वार बार-बार परी न छार मुँह बायो ।
असन बसन बिन बावरो जहँ-तहँ उठि धायो ।।
महिमा मान प्रिय प्रान ते तजि खोलि खलनि आगे खिनु-खिनु पेट खलायो ।
साँच कहौं नाच कौन सो जो न मोहिं लोभ लघु निलज नचायो ।।
(विनय-पत्रिका)

ये हैं तुलसीदास के हृदयोद्गार, जो उनकी वृद्धावस्था में उनके मुख से निकले थे। अपनी दरिद्रता का ऐसा सजीव वर्णन शायद ही किसी कवि ने किया हो। एक-एक शब्द से करुणा टपक रही है।

ईश्वर की विचित्र लीला है कि उसने ऐसे एक परम दरिद्र के हाथों हमें 'रामचरितमानस'-जैसा विभव बाँटा।

तुलसीदास के शब्दों में उनके बालपन की हमें इतनी ही झलक मिलती है। कब तक उनकी यह दशा रही, यह ज्ञात नहीं है। पर वे उन्हीं दिनों कभी संतों के हाथों में पड़ गए थे :

दुखित देखि सन्तन कह्यो सोचै जनि मन माहूँ ।
(विनय-पत्रिका)

संतों के अनुरोध से या स्वजाति का अनाथ बालक जानकर नरसिंहजी नाम के एक सन्त ने तुलसीदास को अपने पास रख लिया। उन्होंने तुलसी की पीठ पर हाथ फेरा और बाँह पकड़कर अपना लिया :

मीजो गुरु पीठ अपनाइ गहि बाँह बोलि––
(विनय-पत्रिका)

गुरु कह्यो राम भजन नीको मोहिं लगत राज डगरो सो ।
(विनय-पत्रिका)

इसके बाद उनका विद्यार्थी-जीवन प्रारम्भ होता है।

तुलसीदास का पहला नाम

तुलसीदास का पहला नाम रामबोला था। सम्भव है, राम-राम बोलकर वे भीख माँगा करते थे, इससे लोगों ने उनका नाम 'रामबोला' या 'रामबोलवा' रख लिया होगा। माता-पिता तो मर ही चुके थे, नाम कौन रखता? तुलसीदास को किसी व्यक्ति-विशेष का नाम नहीं मालूम था कि किसने उनका नाम रामबोला रखा था, इसीसे वे कहते हैं कि राम ने नाम रख दिया था :

राम को गुलाम नाम रामबोला राख्यो राम ।
(विनय-पत्रिका)

रामबोला नाम हौं गुलाम राम साहि को।
(कवितावली)

यह भी पता नहीं चलता कि किसने और कब रामबोला का नाम तुलसीदास रख दिया।

गुरु और विद्या

तुलसीदास के विद्या-गुरु का नाम नरसिंह था। 'रामचरितमानस' के प्रारम्भ में गुरु की वंदना करते हुए तुलसीदास ने अपने गुरु का नामोल्लेख आदर के साथ किया भी है :

वन्दौं गुरु-पद-कंज, कृपा-सिंधु नर रूप हरि।
महा मोह तम-पुञ्ज, जासु वचन रवि-कर निकर॥

'हरि' शब्द 'सिंह' और 'नारायण' दोनों का पर्यायवाची है। कुछ लोग 'हरि' पाठ शुद्ध नहीं मानते। उनका कथन है कि 'नर रूप हर' पाठ शुद्ध है। इसमें वे दो दलीलें देते हैं। पहली यह कि तुलसीदास शिव को गुरु मानते थे। बालकांड के तीसरे श्लोक में उन्होंने 'गुरुं शंकररूपिणम्' लिखा भी है। इसलिए शिव का पर्यायवाची 'हर' शब्द ही उन्होंने लिखा होगा। मुन्शी सुखदेवलाल ने स्वसम्पादित 'रामचरितमानस' में 'हर' ही पाठ रखा है। काशी के प्रसिद्ध रामायणी पंडित विजयानन्द त्रिपाठी ने भी 'हर' ही पाठ रखा है।

दूसरी दलील यह है कि तुलसीदास ने उक्त सोरठे के ऊपर के चारों सोरठों में उनके दूसरे और चौथे चरणों के तुक भी मिलाकर लिखे हैं। जैसे, वदन-सदन, गहन-दहन, नयन-सयन और अयन-मयन। इसी क्रम से पाँचवें सोरठे का भी तुक हर और निकर मिलना चाहिए। हरि होने से अनुप्रास ठीक नहीं मिलता।

अब हम दोनों दलीलों पर विचार करते हैं। अभी तक मेरे देखने में 'मानस' की एक भी हस्तलिखित प्रति ऐसी नहीं मिली, जिसमें 'हर' पाठ हो। अयोध्या की प्रति सं० १६६१ की है। उसमें भी 'हरि' ही पाठ है। मलीहाबाद की प्रति तुलसीदास के हाथ की लिखी हुई कही जाती है, यद्यपि उसमें कहीं संवत् का उल्लेख नहीं है। उसमें भी 'हरि' पाठ है।

मलीहाबाद में दूसरी प्रति सं० १७७६ की है, उसमें भी 'हरि' पाठ है। अतएव 'हरि' पाठ को हम आधुनिक कैसे मानें ? अब रही यह बात कि तुलसीदास ने सोरठे के पहले 'गुरुं शंकररूपिणम्' लिखकर गुरु को शिव का रूप दिया है। यही भाव सोरठे में भी होना चाहिए। पर तुलसीदास के लिए कहीं यह बन्धन तो था नहीं कि वे नर में नारायण को अभिव्यक्त न

करें। रुद्र की अपेक्षा हरि में तो अधिक कृपा का भाव माना जाता है और उन्होंने अपने गुरु नरसिंह के 'सिंह' को 'हरि' नाम से व्यक्त किया है, तब तो 'हर' पाठ हो ही नहीं सकता।

दूसरी दलील तुक मिलने की बहुत जोरदार नहीं है। तुलसीदास ने अच्छे-से-अच्छे तुक मिलाये हैं, पर लापरवाहियाँ भी कम नहीं की हैं। उसी सोरठे में उन्होंने 'कंज' का तुक 'पुञ्ज' मिलाया है। जब वे तुक के मामले में इतने स्वतन्त्र थे, तब 'निकर' के लिए वे विवश माने जायँ, यह युक्ति-संगत नहीं है। मेरा दृढ़ विश्वास है कि शुद्ध पाठ 'हरि' ही है और वह नरसिंह के सिंह के लिए भी व्यवहृत हुआ है।

राम नाम का उच्चारण करते हुए, घर-घर रोटी के टुकड़े माँगते हुए बालक रामबोला को गुरु ने बुलाकर पूछा—क्या चाहते हो ?

रामबोला ने कहा :

बूझ्यो ज्यों ही कह्यो 'मैं हूँ चेरो ह्वैहौं रावरोजू

मेरो कोऊ कहूँ नाहिं, चरन गहत हौं।'

(विनय-पत्रिका)

इस पर कृपासिंधु गुरु ने रामबोला की पीठ पर हाथ फेरा और उसकी बाँह पकड़कर उसे अपना लिया :

मींजो गुरु पीठ अपनाइ गहि बाँह बोलि

(विनय-पत्रिका)

इस प्रकार रामबोला, जो राम-राम बोलते हुए भीख माँगता फिरता था, दरिद्रता के समुद्र में डूबता-उतराता एक किनारे लगा। उसकी दशा पर तरस खाकर गुरु नरसिंह ने उसे, सम्भव है स्वजाति का बालक समझकर, अपने निकट शरण दे दी। इस घटना के बाद ही रामबोला का नाम तुलसीदास हुआ होगा।

तुलसीदास ने वेद, शास्त्र, पुराण, काव्य, नाटक आदि संस्कृत-साहित्य के प्रायः सभी विषयों के प्रसिद्ध ग्रन्थों का अध्ययन किया था। उन्होंने 'रामचरित-मानस' के प्रारम्भ में :

नानापुराणनिगमागमसम्मतं यद्रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि

की प्रतिज्ञा एक अधिकारी ही की हैसियत से की थी।

गुरु के पास वे युवावस्था तक रहे। अनेक शास्त्रों के अध्ययन के लिए काफी समय आवश्यक भी है। उनके गुरु रामोपासक थे। वे प्रायः राम की कथा कहा करते थे। तुलसीदास ने बचपन में पहले-पहल गुरु-

मुख से राम-कथा सुनी थी; पर उस समय वे बिलकुल बच्चे थे, इससे वे उसे ठीक-ठीक समझ नहीं सके :

मै पुनि निज गुरु सन सुनी, कथा सो सूकरखेत।
समुझि नहीं तसि बालपनु, तब अति रहेउँ अचेत ॥
(रामचरितमानस)

गुरु राम की कथा कहते ही रहते थे। तुलसीदास की आयु और अध्ययन के साथ उनकी बुद्धि का विकास भी होता रहा। गुरु के समीप रहकर कई बार राम-कथा सुनने से उन्हें कुछ-कुछ समझ पड़ने लगा। कम-से-कम उतना तो उन्होंने समझ ही लिया था जितना 'रामचरितमानस' में उन्होंने व्यक्त किया है। फिर भी उसे वे 'कुछ' ही कहते हैं :

तदपि कही गुरु बारहिं बारा। समुझि परी कछु मति अनुसारा ॥

'रामचरितमानस' लिख सकने की योग्यता प्राप्त कर लेने पर वे प्रतिज्ञा करते हैं कि मैं गुरु से सुनी हुई राम-कथा को साधारण बोल-चाल की भाषा में लिखूँगा :

भाषाबद्ध करबि मैं सोई। मोरे मन प्रबोध जेहि होई।

'मोरे मन प्रबोध जेहि होई' लिखकर उन्होंने यह प्रकट किया है कि उन्होंने अपनी परीक्षा ली है कि देखूँ तो मैंने राम-कथा ठीक-ठीक समझी है या नहीं। यह बात उन्होंने 'रामचरितमानस' के प्रारम्भ में भी कही है कि मैंने राम-कथा अपने सन्तोष के लिए लिखी है :

स्वान्तः सुखाय तुलसीरघुनाथगाथा,
भाषानिबन्धमतिमंजुलमातनोति।

यह नहीं कहा जा सकता कि कितने वर्षों तक वे गुरु के पास अध्ययन करते रहे, पर 'रामचरितमानस' लिख सकने भर की शिक्षा के लिए दस-पन्द्रह वर्षों का लगातार परिश्रम तो चाहिए ही।

विवाह

तुलसीदास का विवाह हुआ था। 'विनय-पत्रिका' में उन्होंने स्पष्ट स्वीकार किया है :

लरिकाई बीती अचेत चित चंचलता चौगुनी चाय।
जोबन जर जुवती कुपथ्य करि भयो त्रिदोष भरे मदन वाय।

गृहस्थ-जीवन

विद्याध्ययन के पश्चात् तुलसीदास ने विवाह किया था। विवाह के उप-

रान्त वे गृहस्थी चलाने के लिए उद्योग-धन्धे में लगे। 'कवितावली' में वे कहते हैं :

> वालपने सूधे मन राम सनमुख भयो,
> राम नाम लेत माँगि खात टूकटाक हौं।
> परचो लोक-रीति में पुनीत प्रीति रामराय,
> मोहवस वैठो तोरि तरकि तराक हौं॥

लोक-रीति में पड़ने और मोहवश रामराय की पुनीत प्रीति को तोड़ वैठने को विवाह के सिवा और क्या कहा जा सकता है ?

धन के लिए तुलसीदास ने खेती की, व्यापार किया और अनेकों उपाय रचे :

> मध्य वयस धन हेतु गँवाई कृषी वनिज नाना उपाय।
> (विनय-पत्रिका)

तुलसीदास की कविता में उनके खेतिहर और व्यापारी होने की खासी झलक मिलती है। वे ऐसे-ऐसे शब्दों का प्रयोग करते हैं जो किसानों और व्यापारियों के ठेठ वोल-चाल के हैं। जैसे :

> जानि पुरजन त्रसे, धीर दै लखन हँसे,
> वल इनको पिनाक नीके नापे जोखे हैं।
> × × ×
> कुँवर चढ़ाई भौंहैं, अव को विलोकै सौहैं,
> जहँ-तहँ ये अचेत खेत के से धोखे हैं
> देखे नर-नारि कहैं साग खाइ जायें माइ
> वाहु पीन पाँवरनि पीना खाइ पोखे हैं॥
> (गीतावली)

नापे-जोखे का प्रयोग विलकुल किसानों का है। खेता का धोखा तो खास उनका ही शब्द है। खेत को रात में जानवरों से वचाने के लिए किसान उसमें एक डंडा गाड़कर उसके सिरे पर काली हांडी रख देते हैं और डंडे पर कपड़ा लटका देते हैं। जानवर उसे आदमी समझकर खेत में नहीं आते। उसी को खेत का धोखा कहते हैं। पीना भी किसानों की चीज है। पीना कहते हैं तिल की खली को। देहात में किसान लोग तिल का तेल निकलवाकर उसकी खली में गुड़ मिलाकर खाते हैं। पीना यद्यपि पुष्टिकारक आहार है, पर समझा जाता है निकृष्ट श्रेणी का। इसी से वह ताने के लिए उपयोग में आता है। 'साग खाइ जाये माइ' अर्थात् तुझे माँ ने साग खाकर जन्म दिया है, यह भी

किसानों की बोल-चाल का वाक्य है।

'विनय-पत्रिका' में वे एक स्थान पर ऐसी बात कहते हैं, जो किसान ही के अनुभव की है :

करम बचन हिये कहौं न कपट किये,
ऐसी हठ जैसी गाँठि पानी परे सन की।

सन की गाँठ पानी पड़ने से और भी कस उठती है और फिर सहज में नहीं छूटती। किसान इसे रोज भोगता है।

ऐसे और बहुत से प्रमाण हैं, जिनसे यह स्पष्ट प्रकट होता है कि तुलसीदास ने खेतिहर का जीवन बिताया था।

उन्होंने व्यापार भी किया था। व्यापारी-समाज में प्रचलित बहुत से प्रयोग उनकी कविता में मिलते हैं :

स्वारथ के साथी मेरे हाथ सों न लेवा देई।
(विनय-पत्रिका)

'लेवा-देई' ठेठ व्यापारी प्रयोग है।

एक और प्रयोग देखिये :

और भूप परखि सुलाखि तौलि ताइ लेत,
लसम के खसम तुही पै दशरत्थ के।
(कवितावली)

इसमें 'सुलाखि' और 'लसम' ये दो शब्द चाँदी के व्यापारियों के हैं। सुलाखना कहते हैं छेनी से काटकर यह देखने को कि वह चाँदी है या नहीं। और लसम कहते हैं सूबड़ या खोटी चाँदी को। इस प्रकार के और भी प्रमाण हैं जो तुलसीदास के व्यापारी जीवन की कुछ साक्षी रखते हैं।

वैराग्य

गृहस्थ-जीवन में वे कब तक रहे? यह उनके ग्रन्थों से प्रकट नहीं होता। पर सं० १६३१ ('रामचरित मानस' के रचना-काल) के बहुत पहले वे विरक्त हो चुके थे। विरक्त होने का भी कोई मूल कारण उनके ग्रन्थों में नहीं है। घर छोड़ने के बाद वे कहाँ-कहाँ घूमते-फिरते और सत्संग करते रहे, इसका भी पता नहीं चलता; पर प्रयाग, चित्रकूट और काशी की यात्रा करके वे अयोध्या में जा बैठे थे, जहाँ उन्होंने 'रामचरित मानस' का प्रारम्भ किया था।

गोसाईं की उपाधि

तुलसीदास जन्म से गोसाईं नहीं थे। यह एक उपाधि थी, जो उन्हें किसी समय किसी से मिली थी :

तुलसी गोसाईं भयो, भेड़ि'दिन भूलि गयो,
ताको फल पावत निदान परिपाक हौं।
(हनुमान-बाहुक)

भ्रमण

तुलसीदास बीच-बीच में भ्रमण भी करते रहते थे। 'रामचरित मानस' को उन्होंने अयोध्या में प्रारम्भ किया था, पर बाल-काण्ड, अयोध्या-काण्ड और अरण्य-काण्ड लिखने के पश्चात् वे काशी चले गए और वहाँ उन्होंने किष्किन्धा-काण्ड प्रारम्भ किया :

मुक्तिजन्म महि जानि, ज्ञान खानि अघहानिकर।
जहँ बस संभु भवानि, सो कासी सेइय कस न॥
(किष्किन्धा-काण्ड)

तीर्थराज प्रयाग के प्रति उनमें बड़ी श्रद्धा थी। वे प्रयाग भी आते-जाते रहते थे :

देव कहें अपनी अपना अवलोकन तीरथराज चलो रे।
देखि मिटै अपराध अगाध निमज्जत साधु समाज भलो रे॥
सोहै सितासित को मिलिवो तुलसी हुलसै हिय हेरि हलोरे।
मानों हरे तृण चारु चरैं वगरे सुरधेनु के धौल कलोरे॥
(कवितावली)

चित्रकूट भी उनके प्रिय स्थानों में था। वहाँ भी वे बार-बार जाते रहते थे। चित्रकूट-सम्बन्धी छन्द चित्रकूट ही में रचे गए होंगे :

अब चित चेति चित्रकूटहिं चलु।
(विनय-पत्रिका)

तुलसी जो रामपद चहिय प्रेम।
सेइय गिरि करि निरुपाधि नेम॥
(विनय-पत्रिका)

सब दिन चित्रकूट नीको लागत।
वर्षा ऋतु प्रवेस विसेप गिरि देखन मन अनुरागत॥
चहुँदिसि बन सम्पन्न विहँग मृग बोलत सोभा पावत।
जनु सुनरेस देस पुर प्रमुदित प्रजा सकल सुख छावत॥
सोहत स्याम जलद मृदु घोरत धातु रँगमँगे सृङ्गनि।
मनहुँ आदि अंभोज विराजत सेवित सुर मुनि भृङ्गनि॥
सिखर परस घन घटहिं मिलति बग-पाँति सों छवि कवि बरनी।
आदि वराह विहरि वारिधि मनो उठ्यो है दसन धरि धरनी॥

जल जुत विमल सिलनि झलकत नभ वन प्रतिबिम्ब तरङ्ग।
मानहुँ जग रचना विचित्र विलसति विराट अँग अङ्ग ॥
मन्दाकिनिहिं मिलत झरना झरि-झरि भरि-भरि जल आछें।
तुलसी सकल सुकृत सुख लागे मानौ राम भगति के पाछे ॥

(विनय-पत्रिका)

किसी समय तुलसीदास वारिपुर और दिगपुर भी गये थे। यह वह स्थान है, जहाँ वाल्मीकि मुनि का आश्रम था और जहाँ सीता का निर्वासन और लव-कुश का जन्म हुआ था :

जहाँ बालमीकि भये व्याध तें मुनीन्द्र साधु,
मरा मरा जपे सुनि सिख ऋषि सात की।
सीय को निवास लवकुस को जनम थल,
तुलसी छुवत छाँह ताप गरै गात की ॥
विटप महीप सुरसरित समीप सोहै,
सीतावट पेखत पुनीत होत पातकी।
वारिपुर दिगपुर बीच विलसति भूमि,
अंकित जो जानकी चरन जलजात की ॥

(कवितावली)

वाल्मीकि-आश्रम के निवासियों की बोल-चाल और व्यवहार का भी उल्लेख तुलसीदास ने किया है :

देवधुनि पास मुनिवास श्रीनिवास जहाँ,
प्राकृत हूँ वट बूट वसत पुरारि हैं।
जोग जप जाग को विराग को पुनीत पीठ,
रागिन पै सीठि दीठि बाहरी निहारि हैं ॥
'आयसु', 'आदेश', 'बाबा', 'भलो भलो', 'भावसिद्ध',
तुलसी विचारि जोगी कहत पुकारि है।
राम भगतन को तौ कामतरु तें अधिक,
सियवट सेये करतल फल चारि हैं ॥

(कवितावली)

सम्मान

'रामचरितमानस'-जैसे चमत्कारपूर्ण काव्य के रचयिता का सम्मानित होना स्वाभाविक ही है। तुलसीदास ने अपने सम्मान का अनुभव बार-बार किया है :

केहि गिनती महँ गिनती, जस बन घास। राम जपत भये तुलसी, तुलसीदास॥

(बरवै रामायण)

× × ×

घर घर माँगे टूक पुनि, भूपन पूजे पाय।
ते तुलसी तब राम बिनु, ते अब रामसहाय॥

(दोहावली)

× × ×

हौं तो सदा खर को असवार तिहारोई नाम गयंद चढ़ायो।

(कवितावली)

× × ×

नाम राम को कलपतरु, कलि कल्यान निवास।
जो सुमिरत भये भाग ते, तुलसी तुलसीदास॥

(रामचरितमानस)

× × ×

बचन बिकार करतबउ खुवार मन बिगत बिचार कलिमल कौ निधानु है।

× × ×

तेऊ तुलसी को लोग भलो भलो कहै—

(कवितावली)

रामनाम को प्रभाउ-पाउ महिमा प्रताप,
तुलसी से जग मनियत महामुनी सों।

(कवितावली)

× × ×

तुलसी सो साहिब समथ को सुसेवक है,
सुनत सिहात सोच बिधिहू गनक को।
नाम राम ! रावरो सयानो किधौं बावरो,
जो करत गिरी तें गरु तृन तें तनक को॥

(कवितावली)

× × ×

छाछी को ललात जे ते राम नाम के प्रसाद,
खात खुनसात सोंधे दूध की मलाई है।

(कवितावली)

× × ×

साधु जानैं महा साधु ।

× × ×

कोऊ कहै राम को गुलाम खरो खूब है ।

(कवितावली)

× × ×

जागै भोगी भोग ही, वियोगी रोगी रोग वस,
सोवै सुख तुलसी भरोसे एक राम के ।

(कवितावली)

× × ×

पतित पावन राम नाम सो न दूसरो ।
सुमिरि सुभूमि भयो तुलसी सो ऊसरो ॥

(विनय-पत्रिका)

× × ×

लहै न फूटी कौड़िहू, को चाहै, केहि काज ।
सो तुलसी मँहगो कियो, राम गरीब नेवाज ॥

(दोहावली)

राम नाम के प्रभाव से तुलसीदास का प्रताप इतना बढ़ा कि राजा भी उनके पैर पूजने लगे थे ।

प्रतिष्ठा अधिक बढ़ जाने पर उनके भजन में बाधा पड़ने लगी थी । संभव है, मिलने-जुलने वालों के लिए उन्हें अधिक समय देना पड़ता रहा हो । संयोग से उन्हीं दिनों उनके शरीर में फोड़े निकल आए । तब उनको अपनी सम्मान-लोलुपता पर बड़ी ग्लानि हुई थी :

तुलसी अनाथ सों सनाथ रघुनाथ कियो,
दियो फल सीलसिन्धु अपने सुभाय को ।
नीच यही बीच पति पाइ भरुआइगो,
विहाय प्रभु भजन वचन मन काय को ।
तातें तनु पेखियत घोर बरतोर मिस,
फूटि-फूटि निकसत लोन रामराय को ॥

(कवितावली)

काशी-वास

तुलसीदास के जीवन के अन्तिम कई वर्ष लगातार काशी में बीते और अन्त में उनका स्वर्गवास भी वहीं हुआ । राम के भक्त होकर वे राम की

राजधानी छोड़कर काशी क्यों आये, इसका उत्तर ग्रन्थों से नहीं मिल सकता। 'दोहावली' के कुछ दोहों में तीर्थ-स्थानों की तत्कालीन दशा का जो चित्र खींचा है, उससे इतना अनुमान किया जा सकता है, कि उन दिनों अयोध्या में काशी की अपेक्षा अशान्ति अधिक थी और इसी से वे अयोध्या छोड़कर काशी चले गए :

सुर सदननि तीरथ पुरिन, निपट कुचालि कुसाज।
मदहुँ मवासे मारि कलि, राजत सहित समाज॥
गोंड़ गँवार नृपाल महि, यमन महा महिपाल।
साम न दाम न भेद कलि, केवल दण्ड कराल॥
फोरहिं सिल लोढ़ा सदन, लागे अढुक पहार।
कायर कूर कुपूत कलि, घर घर सहस डहार॥

वे काशी कब गये ? इसका कोई ठीक समय नहीं बताया जा सकता। पर यह निश्चित है कि वृद्धावस्था में अन्तिम बार काशी जाकर वे फिर कहीं नहीं गये और वहीं से परम धाम को पधार गए। काशी में शरीर छोड़ने ही की लालसा से वे गये भी थे :

जीव जहान में जायो जहाँ सो तहाँ तुलसी तिहुँ दाह दहो है।
दोष न काहू कियो अपनो सपनेहु नहीं सुख लेस लहो है॥
राम के नाम तें होउ सो होउ न सोउ हिये रसना ही कहो है।
कियो न कछू करिवो न कछू कहिवो न कछू मरिवोई रहो है।

(कवितावली)

× × ×

जीवे की न लालसा दयालु महादेव मोहिं
मालुम है तोहिं मरिवोई को रहतु है।

(कवितावली)

तुलसीदास रुद्रवीसी के समय में काशी में थे, जो सं० १६६५ से १६८५ तक थी :

अपनी बीसो आपुही, पुरिहि लगाये हाथ।

(दोहावली)

× × ×

बीसी बिस्वनाथ की विषाद बड़ो बारानसी।

(कवितावली)

उस समय शनैश्चर भी मीन राशि पर था :

कोढ़ में की खाजु-सी सनीचरी है मीन की।

(कवितावली)

मीन राशि पर शनैश्चर की स्थिति का योग सं० १६६९ के प्रारम्भ से १६७१ के मध्य तक पड़ा था। इससे यह अनुमान किया जा सकता है कि तुलसीदास सं० १६६९ से सं० १६७१ के बीच किसी समय काशी में जरूर थे।

काशी में तुलसीदास का निवास-स्थान

काशी में तुलसीदास गंगा-तट पर रहते थे। प्रत्येक दिन गंगा-स्नान और गंगा-जल-पान करते थे :

भागीरथी-जल-पान करौं अरु नाम द्वै राम के लेत नितै हौं।

(कवितावली)

× × ×

चेरी राम राय को सुजस सुनि तेरो हर !

पाइँ तर आइ रह्यों सुरसरि तीर हौं॥

(कवितावली)

काशी में तुलसीदास ने सुख नहीं पाया

जीवन के अन्तिम भाग में तुलसीदास स्थायी रूप से काशी में जाकर रहने लगे थे। पर काशी में उन्हें सुख नहीं मिला। पहले उन्हें मानसिक कष्ट और फिर शारीरिक कष्ट भोगने पड़े। काशी के शैवों ने उनके साथ अच्छा व्यवहार नहीं किया। सम्भवतः राम-भक्त तुलसीदास का बढ़ा हुआ और बढ़ता हुआ सम्मान ही उनके दुःख का मूल कारण था।

राजा राम के दास होकर भी वे शिवजी का सुयश सुनकर काशी चले गए थे। पर शिव के भक्तों ने उनको इतना कष्ट दिया कि नम्रता और क्षमा की मूर्ति तुलसीदास की मनोव्यथा असह्य हो उठी और उन्होंने इसकी शिकायत शिवजी से की :

देवसरि सेवौं वामदेव गाँव रावरेही

नाम राम ही के माँगि उदर भरत हौं।

दीबे जोग तुलसी न लेत काहू को कछुक

लिखी न भलाई भाल पोच न करत हौं॥

एते पर हू जो कोऊ रावरो ह्वै जोर करै

ताको जोर देवे दीन द्वारे गुदरत हौं।

पाइकै उराहनो उराहनो न दीजै मोहि

काल कला काशीनाथ कहे निबरत हौं॥

(कवितावली)

अगले कवित्त में वे शिव-सेवकों के विविध [illegible] न करके अपने

को उनके मुकाबले में बिलकुल असमर्थ बताते और पार्वती से प्रार्थना करते हैं कि किसी तरह उनका पिण्ड छुड़ाइये :

भूत भव भवत पिसाच भूत प्रेत प्रिय
आपनो समाज सिव आपु नीके जानिये।
नाना वेष वाहन बिभूषन बसन बास
खान-पान बलि-पूजा-विधि को बखानिये॥
राम के गुलामनि की रीति-प्रीति सूधी सब
सबसों सनेह सब ही को सनमानिये।
तुलसी की सुधरै सुधारें भूतनाथ ही के
मेरे माय बाप गुरु संकर भवानिये॥
(कवितावली)

उनका आदर-सत्कार देखकर आस-पास के शिव-सेवक उनसे ईर्ष्या करते और उन्हें कष्ट भी पहुँचाते रहे होंगे। तुलसीदास भी तत्कालीन साधुओं गोसाइयों और नाथों की कड़ी आलोचना करने में पीछे नहीं थे :

कीबे कहा, पढ़िबे को कहा, फल बूझि न वेद को भेद विचारैं।
स्वारथ को परमारथ को कलि कामद राम को नाम बिसारैं।
वाद-विवाद विषाद बढ़ाइ कै छाती पराई और आपनी जारैं।
चारिहु को छहु को नव को दस आठ को[1] पाठ कुकाठ ज्यों फारैं॥

× × ×

काशी में बैठकर तुलसीदास ने भी उन लोगों को, जो राम के भक्त नहीं थे, बुरा-भला कहने में किफायत नहीं की थी। उनको उन्होंने शठ, गँवार, गधे सुअर और कुत्ते से भी गया बीता, बिना सींग-पूँछ का पशु कहा है। 'झूठ है, झूठो है, झूठो सदा जग सन्त कहंत जे अंत लपा है' इस प्रकार संसार को झूठा कहने वाले सन्तों को 'जे अन्त लहा है' कहकर उन्होंने ताना भी मारा है और 'काढ़त दन्त करंत हहा है' कहकर उनकी खिल्ली भी उड़ाई है :

झूठो है झूठो है झूठो सदा जग संत कहंत जे अन्त लहा है।
ताको सहै सठ संकट कोटिक काढ़त दंत करंत हहा है॥
जानपनी को गुमान बड़ो तुलसी के विचार गँवार महा है।
जानकी जीवन जान न जान्यो तो जान कहावत जान्यो कहा है॥

किसी व्यक्ति को 'झूठो है' तीन बार कहकर तुलसीदास ने यह प्रकट

---

१. चार वेद, छः दर्शन, नौ व्याकरण, अठारह पुराण।

मीन राशि पर शनैश्चर की स्थिति का योग सं० १६६९ के प्रारम्भ से १६७१ के मध्य तक पड़ा था। इससे यह अनुमान किया जा सकता है कि तुलसीदास सं० १६६९ से सं० १६७१ के बीच किसी समय काशी में जरूर थे।

काशी में तुलसीदास का निवास-स्थान

काशी में तुलसीदास गंगा-तट पर रहते थे। प्रत्येक दिन गंगा-स्नान और गंगा-जल-पान करते थे :

भागीरथी-जल-पान करौं अरु नाम द्वै राम के लेत नितै हौं।

(कवितावली)

× × ×

चेरौ राम राय को सुजस सुनि तेरो हर !

पाइँ तर आइ रह्यों सुरसरि तीर हौं॥

(कवितावली)

काशी में तुलसीदास ने सुख नहीं पाया

जीवन के अन्तिम भाग में तुलसीदास स्थायी रूप से काशी में जाकर रहने लगे थे। पर काशी में उन्हें सुख नहीं मिला। पहले उन्हें मानसिक कष्ट और फिर शारीरिक कष्ट भोगने पड़े। काशी के शैवों ने उनके साथ अच्छा व्यवहार नहीं किया। सम्भवतः राम-भक्त तुलसीदास का बढ़ा हुआ और बढ़ता हुआ सम्मान ही उनके दुःख का मूल कारण था।

राजा राम के दास होकर भी वे शिवजी का सुयश सुनकर काशी चले गए थे। पर शिव के भक्तों ने उनको इतना कष्ट दिया कि नम्रता और क्षमा की मूर्ति तुलसीदास की मनोव्यथा असह्य हो उठी और उन्होंने इसकी शिकायत शिवजी से की :

देवसरि सेवौं वामदेव गाँव रावरेही

नाम राम ही के माँगि उदर भरत हौं।

दीवे जोग तुलसी न लेत काहू को कछुक

लिखी न भलाई भाल पोच न करत हौं॥

एते पर हू जो कोऊ रावरो ह्वै जोर करै

ताको जोर देवे दीन द्वारे गुदरत हौं।

पाइकै उराहनो उराहनो न दीजै मोहि

काल कला काशीनाथ कहे निवरत हौं॥

(कवितावली)

अगले कवित्त में वे शिव-सेवकों के विविध रूपों का वर्णन करके अपने

को उनके मुकाबले में बिलकुल असमर्थ बताते और पार्वती से प्रार्थना करते हैं कि किसी तरह उनका पिण्ड छुड़ाइये :

भूत भव भवत पिसाच भूत प्रेत प्रिय
आपनो समाज सिव आपु नीके जानिये।
नाना वेष वाहन विभूषन बसन वास
खान-पान बलि-पूजा-विधि को बखानिये॥
राम के गुलामनि की रीति-प्रीति सूधी सब
सबसों सनेह सब ही को सनमानिये।
तुलसी की सुधरै सुधारें भूतनाथ ही के
मेरे माय बाप गुरु संकर भवानिये॥
(कवितावली)

उनका आदर-सत्कार देखकर आस-पास के शिव-सेवक उनसे ईर्ष्या करते और उन्हें कष्ट भी पहुँचाते रहे होंगे। तुलसीदास भी तत्कालीन साधुओं गोसाइयों और नाथों की कड़ी आलोचना करने में पीछे नहीं थे :

कीबे कहा, पढ़िबे को कहा, फल बूझि न वेद को भेद विचारैं।
स्वारथ को परमारथ को कलि कामद राम को नाम बिसारैं।
वाद-विवाद विषाद बढ़ाइ कै छाती पराई और आपनी जारैं।
चारिहु को छहु को नव को दस आठ को[1] पाठ कुकाठ ज्यों फारैं॥

× × ×

काशी में बैठकर तुलसीदास ने भी उन लोगों को, जो राम के भक्त नहीं थे, बुरा-भला कहने में किफायत नहीं की थी। उनको उन्होंने शठ, गँवार, गधे सुअर और कुत्ते से भी गया बीता, बिना सींग-पूँछ का पशु कहा है। 'झूठ है, झूठो है, झूठो सदा जग सन्त कहंत जे अंत लपा है' इस प्रकार संसार को झूठा कहने वाले सन्तों को 'जे अन्त लहा है' कहकर उन्होंने ताना भी मारा है और 'काढ़त दन्त करंत हहा है' कहकर उनकी खिल्ली भी उड़ाई है :

झूठो है झूठो है झूठो सदा जग संत कहंत जे अन्त लहा है।
ताको सहै सठ संकट कोटिक काढ़त दंत करंत हहा है॥
जानपनी को गुमान बड़ो तुलसी के विचार गँवार महा है।
जानकी जीवन जान न जान्यो तो जान कहावत जान्यो कहा है॥

किसी व्यक्ति को 'झूठो है' तीन बार कहकर तुलसीदास ने यह प्रकट

---

१. चार वेद, छः दर्शन, नौ व्याकरण, अठारह पुराण।

किया है कि वे कितने झुंझलाये हुए थे और अन्त में उसे गँवार कहकर सन्तोष-लाभ किया था। 'काढ़त दंत करंत हहा हैं' किसी खास व्यक्ति के लिए ही लिखा गया है। हम देखते हैं कि काशी में उनका यह दैनिक संघर्ष था, जो उन्हें सुख से भजन नहीं करने देता था :

तिन्ह ते खर सूकर स्वान भले जड़ता बस ते न कहैं कछु वै।
तुलसी जेहि राम सों नेह नहीं सो सही पसु पूँछ बिखान न द्वै ॥
जननी कत भार मुई दस मास भई किन बाँझ गई किन च्वै।
जरि जाइ सो जीवन जानकीनाथ जियै जग मों तुम्हरो बिन ह्वै ॥

यह छन्द तो खूब खिसियाकर ही लिखा गया है। 'भई किन बाँझ गई किन च्वै' का 'च्वै' तो अश्लीलता की सीमा तक पहुँच गया है और उसने कवि को साधारण कोटि के लोगों में लाकर खड़ा कर दिया है। इससे कवि की तत्कालीन विक्षुब्ध मनोदशा का अनुमान सहज में किया जा सकता है।

इसमें तो शक नहीं, तुलसीदास ने काशी में राम के विरोधियों से काफी मोरचा लिया। इसका परिणाम जो होना चाहिए था, वही हुआ भी। लोग उनके पीछे पड़ गए। तब बहुत दुखी होकर उन्होंने 'विनय-पत्रिका' लिखनी शुरू की। उसमें गणेश की स्तुति के बाद ही शिव की स्तुति है और आठवें ही पद तक पहुँचते-पहुँचते तुलसीदास ने अपनी तत्कालीन शिकायत शिवजी के समक्ष पेश कर ही दी थी :

गाँव बसत बामदेव मैं कबहूँ न निहोरे।
अधिभौतिक बाधा भई ते किंकर तोरे।
बेगि बोलि बलि बरजिये करतूति कठोरे।
तुलसी दलि रूँध्यो चहै सठसाखि सिहोरे ॥

इससे प्रकट होता है कि शिव के किंकरों ने तुलसीदास को कोई शारीरिक कष्ट पहुँचाया था। सम्भवतः उन्हें मारा-पीटा हो। वे शिवजी से प्रार्थना करते थे कि कृपया अपने सेवकों को रोकिये कि वे अपना कठोर कर्म बन्द करें। पर घिघियाते हुए भी वे शिव के किंकरों को 'शठ' कहते ही जाते थे। पता नहीं, शिवजी ने इसे कितना पसन्द किया होगा। ऐसे देवता-पुरुष का जीवन उस समय कैसे संकट में था, इसे तो आज भी स्मरण करके हृदय भर आता है।

तत्कालीन मुनियों की भी तुलसीदास ने अच्छी खबर ली है :

आगम बेद पुरान बखानत मारग कोटिन्ह जाहि न जाने।
जे मुनि ते पुनि आपुहि आपुको ईस कहावत सिद्ध सयाने ॥

धर्म सबै कलिकाल ग्रसे जप जोग विराग लै जीव पराने ।
को करि सोच मरै तुलसी हम जानकीनाथ के हाथ बिकाने ।।

तुलसीदास की बढ़ती हुई कीर्ति विरोधियों को और भी उत्तेजित करती थी और वे उनकी जाति-पाँति के सम्बन्ध में भी उनसे पूछ-ताछ करते और मनचाहा उत्तर न पाकर उनके विषय में अनेक अपमानजनक बातें फैलाते थे। उन्हें सुन-सुनकर परम विरक्त और केवल मरने ही के लिए काशी में आये हुए तुलसीदास भी विक्षुब्ध हो उठते होंगे, इसमें सन्देह ही क्या है ? उन्होंने प्रतिद्वन्द्वियों को जो उत्तर दिया है, उससे उनकी झुँझलाहट पर काफी प्रकाश पड़ता है :

धूत कहौ अवधूत कहौ रजपूत कहौ जोलहा कहौ कोऊ ।
काहू की बेटी सों बेटा न ब्याहव काहू की जाति बिगारि न सोऊ ।।
तुलसी सरनाम गुलाम है राम को जाको रुचै सो कहै कछु ओऊ ।
माँगि कै खैबो मसीत में सोइबो लैवे को एक न दैवे को दोऊ ।।

'क्या मुझे किसी की बेटी से अपना बेटा ब्याहना है ?' यह बात पूर्ण आवेश ही में कही जाती है। मालूम नहीं, लोग उनकी जाति-पाँति के पीछे क्यों इतने पड़े थे; और तुलसीदास भी उसे छिपाते क्यों थे ?

मेरे जाति पाँति न चहौं काहू की जाति-पाँति,
मेरे कोऊ काम को न मैं काहू के काम को ।
लोक परलोक रघुनाथ ही के हाथ सब,
भारी है भरोसो तुलसी के एक नाम को ।।

× × ×

अतिही अयाने उपखानो नहि बूझैं लोग
साह ही को गोत गोत होत है गुलाम को ।
साधु कै असाधु कै भलो कै पोच सोच कहा
का काहू के द्वार परौ जो हौ सो हौं राम को ।।

'साह ही के गोत गोत होत है गुलाम को', इसका अभिप्राय यही जान पड़ता है कि वे किसी को अपनी जाति-पाँति नहीं बताते थे। स्मार्त वैष्णव होने के कारण सब प्रकार के साधुओं से वे भेद-भाव कम रखते थे, इसीसे काशी के शैवों में वे आदर नहीं पाते थे :

कोऊ कहै करत कुसाज दगाबाज बड़ो
कोऊ कहै राम को गुलाम खरो खूब है ।
साधु जानै महा साधु खल जानै महा खल
बानी झूँठी-साँची कोटि उठत हबूब है ।।

चहत न काहू सो न कहत काहू की कछु
सबकी सहत उर अन्तर न ऊब है।
तुलसी को भलो पोच हाथ रघुनाथ ही के
राम की भगति भूमि मेरी मति दूब है॥

इसमें शक नहीं, वे सबकी सहते थे, और न सहते तो करते भी क्या? पर उनके मन में ऊब नहीं थी, यह कहाँ तक सच है? जब कि वे डण्डे का जवाब लाठी से दिये जाते थे कि 'खल जानै महा खल' अर्थात् जो उनको खल जानता था, वह पहले ही से महा खल था। या यदि वह तुलसीदास को 'महा-खल' जानता था, तो स्वयं तो खल था ही।

उन दिनों काशी में राज-प्रवन्ध बहुत शिथिल हो रहा था दिन में डाके पड़ते थे और रात को चोर लगते थे। सम्भवतः तुलसीदास पर यह विपत्ति पड़ चुकी थी, क्योंकि वे शिव से प्रार्थना करते हैं कि कृपा करके मुझे अपने पुर में रहने दीजिये :

वासरि ढासनि के ढका, रजनी चहुँदिसि चोर।
संकर निजपुर राखिये, चितै सुलोचन कोर॥

काशी में गोरख-पंथियों का प्राबल्य उन दिनों बहुत था। वे धर्म-क्षेत्र में अपना अधिकार जमाये हुए थे। सन्त मत वालों का उदय-काल था। उनसे भी तुलसीदास का संघर्ष चलता था :

गोरख जगायो जोग भगति भगायो लोग
निगम नियोग तेसो केलिही छरो सो हैं।
(कवितावली)

साखी सवदी दोहरा, कहि किहिनी उपखान।
भगति निरूपहिं भगत कलि, निंदहिं वेद पुरान॥
× × ×
स्रुति संमत हरिभक्ति पथ, संजुत बिरति विवेक।
तेहि परिहरहिं बिमोहबस, कल्पहि पंथ अनेक॥
× × ×
सुर सदननि तीरथ पुरिन, निपट कुचालि कुसाज।
मनहुँ मवासे मारि कलि, राजत सहित समाज॥
(दोहावली)

मन्दिरों और तीर्थों की दशा तब भी वैसी थी, जैसी आज है। गोंड राजा थे। यवन सम्राट् थे। यवन लोग मूर्तियों के धोखे सिल और लोढ़े तक को

फोड़ डालते थे। केवल दंड ही न्याय का स्वरूप रह गया था :

गौंड गँवार नृपाल महि, यमन महा महिपाल।
साम न दाम न भेद कलि, केवल दंड कराल॥

× × ×

फोरहिं सिल लोढ़ा सदन, लागे अढ़ुक पहार।
कायर कूर कपूत कलि, घर घर सहस डहार[1]॥

काशी की तत्कालीन दशा

काशी में वर्णाश्रम-धर्म का आदर नहीं रह गया था। अधर्म के भय से उनमें भगदड़-सी मच गई थी; बुरी वासनाओं ने कर्म और उपासना को नष्ट कर दिया था; ज्ञान की बातों और वैरागियों जैसे वेश ने जगत् का विवेक हर लिया था; गोरखनाथ ने जोग क्या जगाया, लोगों के हृदय से भक्ति ही भगा दी थी; वेदों और पुराणों के मार्ग को छोड़कर लोग करोड़ों कुमार्गो पर चल रहे थे; राज-दरबार बड़ा छली हो गया था। न चारों वर्णो का भेद रह गया था, न आश्रम-धर्म ही शेष था; और संसार को दुःख, दोष और दरिद्रता ने दबा लिया था :

बरन धरम गयो आस्रम निवास तज्यो,
त्रासन चकित सो परावनो परो सो है।
करम उपासना कुवासना विनास्यो ज्ञान
बचन विराग वेस जगत् हरो सो है॥
गोरख जगायो जोग भगति भगायो लोग
निगम नियोग ते सो कलिही छरो सो है।
काय मन बचन सुभाय तुलसी है जाहि,
रामनाम को भरोसो ताहि को भरोसो है॥

× × ×

वेद पुरान बिहाइ सुपंथ कुमारग कोटि कुचाल चली है।
काल कराल नृपाल कृपालन राज-समाज बड़ोई छली है॥
वर्न विभाग न आस्रम धर्म दुनी दुख दोष दरिद्र दली है।
स्वारथ को परमारथ को कलि राम को नाम प्रताप बली है॥

धर्म की तो यह दशा थी; धन की दशा इससे भी भयानक थी। पेट की ज्वाला में मजूर, किसान, व्यवसायी और भिखमंगे सभी जल रहे थे :

---

१. डहार (डहर)=रास्ता, पन्थ।

किसबी किसान कुल बनिक भिखारी भाट,
　　　　चाकर चपल नर चोर चार चेटकी।
पेट को पढ़त गुन गढ़त चढ़त गिरि,
　　　　अटत गहन वन अहन अखेट की॥
ऊँच नीचे करम धरम अधरम करि,
　　　　पेट ही को पचत बेंचत बेटा बेटकी।
तुलसी बुझाइ एक राम घनस्याम ही तें,
　　　　आगि बड़वागि तें बड़ी है आगि पेट की॥

× × ×

समय ऐसा बुरा आ गया था कि न तो किसान को खेती का काम मिलता था, न भिक्षुक को भीख मिलती थी। न व्यापारी के लिए व्यापार था, न नौकर के लिए नौकरी। जीविका-हीन होकर लोग चिन्ता-ग्रस्त थे और एक-दूसरे से पूछ रहे थे कि कहाँ जायँ और क्या करें :

खेती न किसान को भिखारी को न भीख बलि,
　　　　बनिक को बनिज न चाकर को चाकरी।
जीविका-विहीन लोग सीद्यमान सोच बस,
　　　　कहैं एक एकन सों कहाँ जाई, का करी॥

दुष्ट स्वभाव के लोग पूरे स्वच्छन्द हो रहे थे। वे नीचों का आदर करते और सत्पुरुषों को कष्ट पहुँचाते थे। वे स्वयं ऐसे दरिद्र थे कि चने चबाकर हाथ चाटते थे, पर हरिश्चन्द्र और दधीचि को गाली देते थे। स्वयं तो वे महा-पापी होते थे, पर विष्णु और शिव का भी मजाक उड़ाते थे। स्वयं भाग्यहीन होते हुए भी भाग्यवानों को फटकारते थे :

बबुर बहेरे को बनाय बाग लाइयत
　　　　रूँधिबे को सोई सुरतरु काटियतु है।
गारी देत नीच हरिचन्द हू दधीचि हूँ को
　　　　आपने चना चबाइ हाथ चाटियतु है।
आप महापातकी हँसत हरिहरहू को
　　　　आपु हैं अभागी भूरि भागी डाटियतु हैं॥

काशी में कलियुग की विकरालता देखकर तुलसीदास बहुत व्यथित हुए। उन्होंने शिव से जोरदार शब्दों में प्रार्थना की :

गौरीनाथ भोलानाथ भवत[1] भवानीनाथ
　　　　विश्वनाथपुर फिरी आन कलिकाल की।

संकर से नर गिरिजा सी नारी कासी वासी
वेद कही सही ससिसेखर कृपाल की ॥
छमुख गनेश तें महेस के पियारे लोग
विकल विलोकियत नगरी विहाल की ।
पुरी सुरवेलि केलि काटत किरात कलि
निठुर निहारिये उघारि डीठि भाल की ॥

× × ×

ठाकुर महेस ठकुराइनि उमा सी जहाँ
लोक वेदहू विदित महिमा ठहर की ।
भट रुद्रगन भूतगन पति सेनापति
कलिकाल की कुचाल काहू तौ न हरकी ॥
वीसी विस्वनाथ की विषाद बड़ो वारानसी
बूझिये न ऐसी गति संकर सहर की ।
कैसे कहै तुलसी वृषासुर के वरदानि
बानि जानि सुधा तजि पियति जहर की ॥

काशी में महामारी

उन्हीं दिनों काशी में महामारी का भी प्रकोप हुआ था। यद्यपि उसका कोई ठीक सन्-संवत् नहीं मिलता, पर तुलसीदास के वर्णनों में महामारी के प्रकोप की पूरी चर्चा है। यह महामारी जहाँगीर के राजत्व-काल (सं० १६७३ से १६८१) में प्रकट हुई थी। हिन्दुस्तान का कोई भी हिस्सा इस बीमारी से नहीं बचा था। 'वाक़यात जहाँगीरी' और 'इक़बालनामा जहाँगीरी' में इसका विस्तृत वर्णन है।

आगरा में यह बीमारी सं० १६७३ में प्रकट हुई और शीघ्र ही आसपास के गांवों और जिलों में फैल गई। तुलसीदास लिखते हैं कि जब मीन राशि पर शनैश्चर था, उस समय काशी में महामारी का प्रकोप जोरों पर था। अतएव अब तो यही माना पड़ेगा कि यह रोग आगरा से पहले काशी में प्रकट हुआ था।

आगरा की महामारी का वर्णन सुप्रसिद्ध जैन कवि बनारसीदास ने अपने 'अर्द्ध कथानक' में इस प्रकार किया है :

इस ही समै ईति विस्तरी। परी आगरे पहिली मरी ॥
जहां तहां सब भागे लोग। परगट भया गांठ का रोग ॥
निकसै गांठि मरै छिन माहि। काहू की बसाय कछु नाहि ॥

चूहे मरें वैद्य मरि जाहिं। भय सो लोग अन्न नहिं खाहिं.॥

बनारसीदास जौनपुर के निवासी थे। उनका जन्म सं० १६४३ में हुआ था। आगरा की महामारी 'अर्द्ध कथानक' के अनुसार सं० १६७३ में पड़ी थी। जहाँगीर के इतिहास-लेखक भी यही समय मानते हैं।

तुलसीदास ने 'कवितावली' में बड़े ही मार्मिक शब्दों में काशी की महामारी का वर्णन किया है और उसे हटाने के लिए देवताओं की स्तुति भी की है। उन्होंने पार्वती से प्रार्थना की :

रचत बिरञ्चि, हरि पालत, हरत हर,
तेरे ही प्रसाद जग अग जग पालिके।
तोहि में बिकास बिस्व, तोहि में बिलास सब,
तोहि में समात मातु भूमिधर बालिके॥
दीजै अवलंब जगदंब न बिलंब कीजै,
करुना तरङ्गिनी कृपातरङ्ग मालिके।
रोष महामारी परितोष, महतारी! दुनी,
देखिये दुखारी मुनि मानस-मरालिके॥

(कवितावली)

× × ×

निपट बसेरे अघ औगुन घनेरे नर
नारिऊ अनेरे जगदंब चेरी चेरे हैं।
दारिदी दुखारी देखि भूसुर भिखारी भीरु,
लोभ मोह काम कोह कलिमल घेरे हैं॥
लोकरीति राखी, राम साखी, बामदेव जान
जन की बिनति मानि मातु कही 'मेरे' हैं।
महामारी महेशानि महिमा की खानि मोद,
मंगल की रासि, दास कासी-बासी तेरे हैं॥

(कवितावली)

फिर उन्होंने रामचन्द्र से विनती की और हनुमानजी को भी प्रोत्साहित किया :

संकर सहर सर नरनारि बारिचर
बिकल सकल महामारी माँजा भई है।
उछरत उतरात हहरात मरि जात
भभरि भगत जल थल मीचुमई है॥

देवन दयालु महिपाल न कृपाल चित
बारानसी बाढ़ति अनीति नित नई है।
पाहि रघुराज, पाहि कपिराज रामदूत
रामहू की बिगरी तुहीं सुधारि लई है॥

× × ×

देवता निहोरे महामारिन्ह सों कर जोरे
भोरानाथ जानि भोरे आपनी सी ठई है।
करुनानिधान हनुमान बीर बलवान
जस रासि जहाँ तहाँ तैंही लूटि लई है॥

(कवितावली)

जब कि देवता ने उनकी न सुनी, तब अन्त में तुलसीदास ने अपने राम की शरण ली :

बिरची बिरंचि की बसति बिस्वनाथ की जो
प्रानहूँ ते प्यारी पुरी केशव कृपाल की।
ज्योतिरूप लिंगमई अगनित लिंगमई
मोक्ष बितरनि बिदरनि जग जाल की॥

× × ×

हाहा करै तुलसी दयानिधान राम ऐसी
कासी की कदर्थना कराल कलिकाल की॥

स्तुति-प्रार्थनाओं का कुछ भी वांछित परिणाम न पाकर तुलसीदास ने फिर भी प्रार्थना नहीं छोड़ी। उन्होंने कहा—चारों आश्रम और वर्ण कलियुग के वश में होकर विकल हो रहे हैं। शिवजी क्रुद्ध हैं, यह महामारी ही से जाना जाता है। मालिक नाराज हो, तो दुनिया तो दिन-दिन दरिद्र ही होती जायगी। स्त्री-पुरुष आर्त्त होकर पुकार रहे हैं, कोई सुनता ही नहीं। जान पड़ता है, कुछ देवताओं ने मिलकर जादू कर दिया है :

आश्रम बरन कलि बिबस बिकल भय
निज निज मरजाद मोटरी-सी डार दी।
संकर सरोस महामारि हीं ते जानियत
साहिब सरोप दुनी दिन दिन दारिदी॥
नारि नर आरत पुकारत सुनै न कोऊ
काहू देवतनि मिलि मोटी मूठि मार दी।

अन्त में रामचन्द्र ने प्रार्थना पर कान देकर अपनी करुणा को संकेत कर

दिया और महामारी चली गई :

तुलसी सभीत पाल सुमरे कृपालु राम
समय सुकरुना सराहि सनकार दी।
(कवितावली)

पर यह बीमारी काशी में कितने समय तक रही, इसका उल्लेख उनके किसी छन्द में नहीं मिलता।

तुलसीदास की पहली बीमारी

महामारी के दिनों में तुलसीदास भी बीमार हुए थे। उन्होंने वामदेव से अपने शरीर को नीरोग करने के लिए प्रार्थना की थी :

चेरो राम राय को सुजस सुनि तेरो हर
पाइ तर आइ रह्यों सुरसरि तीर हौं।
वामदेव राम को सुभाव सील जानि जिय
नातो नेह जानियत रघुवीर भीर हौं॥
अविभूत वंदन विषय होत भूतनाथ
तुलसी विकल पाहि पचत कुपीर हौं।
मारिये तो अनायास कासीवास खास फल
ज्याइये तौ कृपा करि निरुज सरीर हौं॥
(कवितावली)

पर कष्ट अधिक बढ़ता ही गया। तब अधिक व्यथित होकर उन्होंने फिर शिव की प्रार्थना की :

जीवे की न लालसा दयालु महादेव मोहि
मालूम है तोहि मरिबेई को रहतु हौं।
× × ×
रोग भयो भूत सों कुसूत भयो तुलसी को
भूतनाथ पाहि पदपंकज गहतु हौं।
ज्याइये तौ जानकीरमन जन जानि जिय
मारियै तो माँगी मीचु सूधियै कहतु हौं॥
(कवितावली)

जिस समय यह पीड़ा हुई थी, वह वर्षा-काल था। घटा घिरी थी, पानी बरस रहा था :

घेरि लियो रोगनि कुलोगनि कुजोगनि ज्यों
बासर जलद घनघटा धुकि धाई है।
(कवितावली)

जिस समय यह छन्द लिख रहे थे, उस समय पानी बरस रहा था।

बरसत बारि पीर जारिये जवासे जस
रोष विन दोष धूममूल मलिनाई है।
(कवितावली)

यह बीमारी उन्हें कब तक रही, इसका पता नहीं चलता, पर इस बीमारी से तुलसीदास मरते-मरते बचे, रोगों ने उन्हें खा ही डाला होता, यदि हनुमान जी ने जबरदस्ती उन्हें बचा न लिया होता :

खायो हुतो तुलसी कुरोग राढ़ राकसनि
केसरी किसोर राखे वीर बरिआई है।

दूसरी बार की बीमारी

पहली बार की बीमारी में तुलसीदास को कई रोगों ने घेर लिया था और उनके विश्वास के अनुसार हनुमानजी की कृपा से वे उनसे बच गए थे। पर दूसरी बार की बीमारी पहले-पहल बाहु-मूल में प्रकट हुई। उन्होंने रामचन्द्रजी से प्रार्थना की कि मेरी बाँह की पीड़ा दूर कीजिये, मैं आर्त्त होकर पुकार रहा हूँ; किसी तरह बचा लीजिये, मैं लूला ही होकर दरबार में पड़ा रहूँगा :

बाँह की वेदन बाँहपगार पुकारत आरत आनँद भूलो।
श्रीरघुबीर निवारिये पीर रहौं दरबार परो लटि लूलो॥

पर वे समझ न सके कि उनकी पीड़ा का मूल कारण क्या था :

काल की करालता करम कठिनाई की धौं
पाप के प्रभाव की सुभाय बाय बावरे।

उनकी उसी बाँह में रात-दिन असह्य पीड़ा रहती थी, जिसे कभी हनुमान-ने पकड़ा थी :

वेदन कुभाँति सो सही न जाति रातिदिन
सोई बाँह गही जो गही समीर डाबरे॥

बाँह की पीड़ा बढ़ते-बढ़ते सारे शरीर में व्याप्त हो गई :

पाँय पीर, पेट पीर, बाहु पीर, मुँह पीर
जरजर सकल सरीर पीरमई है।
देवभूत पितर करम खल काल ग्रह
मोहि पर दवरि दमानक सी दई है॥

तुलसीदास ने सब देवताओं से प्रार्थनाएँ कीं, पर जब किसी ने उनकी न सुनी, तब उन्होंने अपनी ही भर्त्सना की :

बालपने सूधे मन राम सनमुख भयो
राम नाम लेत माँगि खात टूक-टाक हौं ।
पर्‍यो लोकरीति में पुनीत प्रीति राम राय
मोहबस बैठो तोरि तरकि तराक हौं ।।
खोटे खोटे आचरन आचरत अपनायो
अंजनीकुमार सोध्यो रामपानि पाक हौं ।
तुलसी गुसाईं भयो भोंड़े दिन भूलि गयो
ताको फल पावत निदान परिपाक हौं ।।

पहले वे भोजन-वस्त्र-विहीन और दुःख-सागर में निमग्न रहते थे। उनकी दुर्बलता और दीनता देखकर लोग हाय-हाय करते थे। रामचन्द्र ने उन्हें सनाथ किया; पर जब सम्मान बढ़ा, तब तुलसीदास को घमंड हो आया। वे समझते थे कि उसी घमंड का यह फल था, जो सारे शरीर में फोड़े के रूप में निकल आया था :

असन वसन हीन, विषम विषाद लीन
देखि दीन दूबरो करै न हाय-हाय को ?
तुलसी अनाथ सों सनाथ रघुनाथ कियो
दियो फल सील सिंधु आपने सुभाय को ।।
नीच यहि बीच पति पाइ भरुआइगो
विहाय प्रभु भजन वचन मन काय को ।
तातें तनु पेखियत घोर बरतोर मिस
फूटि-फूटि निकसत लोन राम राय को ।।

सारे शरीर में पीड़ा हो जाने के बाद सारे शरीर में फोड़े भी निकल आए। उनकी वेदना से व्यथित होकर उन्होंने सब देवताओं की फिर स्तुतियाँ कीं; पर किसी ने उनकी न सुनी :

जीवौं जग जानकी जीवन को कहाय जन
मरिबे को वारानसी वारि सुरसरि को ।
तुलसी के दुहूँ हाथ मोदक हैं ऐसे ठाउँ
जाके जिये मुये सोच करिहैं न लरिको ।।
मोको झूठो साँचो लोग राम को कहत सब
मेरे मन मान है न हर को न हरि को ।
भारी पीर दुसह सरीर तें बिहाल होत
सोऊ रघुबीर बिनु सकै दूरि करि को ।।

पीड़ा बढ़ती ही गई और अन्त में वे फिर सीतापति, भोलानाथ और कपिनाथ की प्रार्थना में निमग्न हुए :

सीतापति साहेब सहाय हनुमान नित
हित उपदेश को महेस मानो गुर कै।

× × ×

व्याधि भूति जनित उपाधि काहू खल की
समाधि कीजै तुलसी को जानि जन फुर कै।
कपिनाथ रघुनाथ भोलानाथ भूतनाथ
रोगसिंधु क्यों न डारियत गाय खुर कै॥

जान पड़ता है, तुलसीदास को इस बात का शक था कि उनकी पीड़ा किसी खल द्वारा की हुई उपाधि से सम्बन्ध रखती है।

तभी तो वे जानना चाहते थे कि उनकी वह व्याधि भूत-जनित थी, या किसी खल की उपाधि-जनित ? अब क्या यह सम्भव नहीं हो सकता कि उन्हें किसी ने विष दिया हो ?

ये हनुमान, राम और शंकर पर अन्त तक विश्वास रखे रहे; पर उनमें किसी ने उनकी प्रार्थना का कोई उत्तर नहीं दिया। पीड़ा की वृद्धि के साथ देवताओं पर से उनका विश्वास उठने-सा भी लगा था। हनुमानजी से उन्होंने कहा :

आपने ही पाप तें त्रिताप तें कि साप तें,
बढ़ी है बाहुवेदन कही न सहि जाति है।
औषधि अनेक जन्त्र-मन्त्र टोटकादि किये,
बादि भये देवता मनाये अधिकाति है।
चेरो तेरो तुलसी 'तू मेरो' कह्यो रामदूत,
ढील तेरी बीर मोंहि पीर ते पिराति है।
(कवितावली)

अन्तिम चरण में तुलसीदास ने कैसी व्याकुलता व्यक्त की है ! पर हनुमानजी ने फिर भी कान नहीं दिया। एक लम्बी आयु व्यतीत कर लेने पर तब तुलसीदास को देवताओं की शक्ति का पता चला कि 'बादि भये देवता मनाये अधिकाति है।'

अन्त में उन्होंने यह लिखकर कि 'जैसा बोया था, वैसा काटेंगे' क़लम रख दी :

कहौं हनुमान सों सुजान रामराय सों,
कृपानिधान संकर सों सावधान सुनिये।
हरष विषाद राग रोष गुन दोषमई,
बिरची बिरंचि सब देखियतु दुनिये॥
माया जीव काल के करम के सुभाय के,
करैया राम वेद कहैं साँची मन गुनिये।
तुमतें कहा न होय, हाहा सों बुझैये मोहिं,
हौंहूँ रहौं मौनही, बयो सो जनि लुनिये॥
(कवितावली)

यही लिखकर वे मौन हो गए। पता नहीं, इसी रोग से उनका देहावसान हुआ, या अन्य किसी कारण से। पर चमत्कारों की चर्चा में मूड़ मारने वाले लोगों को यहाँ तो इस बात पर विचार कर लेना चाहिए कि जो तुलसीदास मुर्दे को जिन्दा कर सकते थे, वे अपने निजी रोग के निवारण में कितने असमर्थ थे।

भुज-मूल की व्यथा की चर्चा उन्होंने दोहों में भी की थी। ऐसे तीन दोहे दोहावली में संगृहीत हैं:

तुलसी तनु सर सुख सजल, भुज रुज गज बरजोर।
दलत दयानिधि देखिये, कपि केसरी किसोर॥
भुज तरु कोटर रोग अहि, बरबस कियो प्रबेस।
बिहँगराज वाहन तुरत, काढ़िय मिटइ कलेस॥
बाहु बिटप सुख बिहँग थलु, लगी कुपीर कुआगि।
राम कृपा जल सींचिये, बेगि दीन हित लागि॥

तुलसीदास का शरीर-सम्बल

तुलसीदास का शरीर सुन्दर था। इसे वे कई स्थानों पर स्वीकार करते हैं:

दियो सुकुल जनम सरीर सुन्दर
(विनय-पत्रिका)

भलि भारत भूमि भले कुल जन्म
समाज सरीर भलो लहि कै।
(कवितावली)

वृद्धावस्था में तुलसीदास के सिर पर बाल नहीं रह गए थे:

ऊँचो मन ऊँची रुचि भाग नीचो निपट ही
लोक रीति लायक न लंगर लबारु है।
स्वारथ अगम परमारथ की कहा चली
पेट की कठिन जग जीव को जवारु है॥
चाकरी न आकरी न खेती न वनिज भीख
जानत न कूर कछु किसब कबारु है।
तुलसी की बाजी राखी राम ही के नाम नतु
भेंट पितरन कों न मूड़हू में बारु है।
(कवितावली)

३

जन-श्रुति-सञ्चित और कल्पना-प्रसूत जीवनी

पहले तुलसीदास के ग्रन्थों से उनकी जो कुछ जीवनी निकल सकी है उसे तो हमने निकाल लिया है, पर उतने से तो उनकी जीवनी बिलकुल अधूरी रह जाती है। अतएव विवश होकर हमें जनश्रुति और कल्पना का सहारा लेना ही पड़ेगा।

इस सम्बन्ध में सबसे बड़ा आधार हमें तुलसीदास के समकालीन और बाद के कवियों और लेखकों के उन ग्रन्थों से प्राप्त होता है, जिनमें तुलसीदास की चर्चा की गई है। उनमें जो ग्रन्थ इस समय उपलब्ध हैं, वे ये हैं--

१—भक्तमाल (नाभादासजी)

२—दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता (गोकुलनाथजी)

३—भक्तरस-बोधिनी—भक्तमाल की टीका (प्रियादासजी)

४—भक्त-कल्पद्रुम (राजा प्रतापसिंह)

५—भक्तमाल (महाराजा विश्वनाथसिंह)

६—राम-रसिकावली (महाराजा रघुराजसिंह)

७—शिवसिंह-सरोज (शिवसिंह सेंगर)

८—गोस्वामी तुलसीदास का जीवन-चरित (रानी कमलकुँवरिजी)

९—नोट्स ऑन तुलसीदास (सर जार्ज ग्रियर्सन)

१०—गोस्वामी तुलसीदास का जीवन-चरित (बैजनाथदास)

११—तुलसी-चरित (रघुवरदास)

१२—मूल गोसाईं-चरित (बेणीमाधवदास)

भक्तमाल

भक्तमाल की रचना सं० १६४२ के बाद नाभादासजी ने की थी। इसमें १९५ छप्पय, आदि, मध्य और अन्त के मिलाकर कुल १७ दोहे और १ कुण्डलिया है। नाभादासजी तुलसीदास के समकालीन थे। उन्होंने तुलसीदास के लिए वर्तमान काल की क्रिया का प्रयोग किया है। पर उनका वर्णन इतना

संक्षिप्त है कि उससे हम केवल इतनी ही जानकारी प्राप्त कर सकते हैं कि तुलसीदास उनके समय में विद्यमान थे। तुलसीदास के सम्बन्ध में 'भक्तमाल' में केवल ये ही पंक्तियाँ मिलती हैं :

कलि कुटिल जीव निस्तार हित वालमीकि तुलसी भयो।
त्रेता काव्य निबंध करी सतकोटि रमायन।
इक अक्षर उच्चरे ब्रह्महत्यादि परायन।
अब भक्तन सुखदेन बहुरि वपु धरि (लीला) विस्तारी।
रामचरन रसमत्त रहत अहनिसि व्रतधारी।
संसार अपार के पार के पार को सुगम रुप नौका लियो।
कलि कुटिल जीव निस्तार हित बालमीकि तुलसी भयो॥

दो सौ बावन वैष्णव की वार्ता

यह पुस्तक गोस्वामी गोकुलनाथजी की लिखी हुई है, जो श्री वल्लभाचार्यजी के पौत्र थे। श्री वल्लभाचार्यजी, प्रियादास के कथनानुसार, सं० १५७७ में हुए थे। गोकुलनाथजी का जन्म १६०८ में हुआ था। वे १६९८ तक जीवित रहे अतएव वे तुलसीदास के समकालीन थे। अपनी वार्ता में नन्ददास का वर्णन करते हुए उन्होंने तुलसीदास की भी चर्चा की है। हम उसे यहाँ ज्यों-की-त्यों उद्धृत करते हैं :

"सो वे नन्ददास पूर्व रहते, सो वे दोय भाई हते। सो बड़े भाई तुलसीदास हते और छोटे भाई नन्ददास हते, सो वे नन्ददास पढ़े बहुत हते।

नन्ददास तुलसीदास के छोटे भाई हते। सो विनकूँ नाच तमासा देखवे को तया गान सुनवे का शौक बहुत हतो। सो वा देश में सूँ एक संग द्वारका जात हतो। जब विननें तुलसीदास सूँ पूछी, तब तुलसीदासजी श्रीरामचन्द्रजी के अनन्य भक्त हते। जासूँ विननें द्वारका जायवे की नाहीं कही। सो मथुरा सूधे गए। मथुरा में वा संग कूँ बहुत दिन लगे सो नन्ददास संग कूँ छोड़कर चल दीने।

× × ×

सो तब कितनेक दिन में वह संग काशी में आन पहुँच्यो, तब नन्ददास के बड़े भाई तुलसीदास हते, सो तिनने सुनी, जो यह संग श्री मथुराजी को आयो है। तब तुलसीदास ने वा संग में आय के पूछ्यो। जो वहाँ श्री मथुराजी श्रीगोकुल में नन्ददास करि के एक ब्राह्मण यहाँ सो गयो है, सो पहले वहाँ सुन्यो हतो, सो काहू ने देख्यो होय, तो कही। तब एक वैष्णव ने तुलसीदास सों

कही, जो एक सनौड़िया ब्राह्मण है, सो ताको नाम नन्ददास है, सो वह पढ़्यो बहुत है, सो वद नन्ददास तो श्रीगुराईजी को सेवक भयो है।

सो नन्ददासजी के बड़े भाई तुलसीदासजी काशी में रहते हुते। सो विनने सुन्यो नन्ददासजी श्री गुसाईंजी के सेवक भये हैं। जब तुलसीदासजी के मन में ये आई के नन्ददासजी ने पतिव्रता धर्म छोड़ दियो है आपने तो श्री रामचन्द्रजी पती हुते। सो तुलसीदासजी ने ये विचार के नन्ददासजी कुँ पत्र लिख्यो। जो तुम पतिव्रता धर्म छोड़ के क्यों तुमने कृष्ण-उपासना करी। ये पत्र जब नन्द-दासजी ने बाँच के ये उत्तर लिख्यो। जो श्री रामचन्द्रजी तो एक पत्नीव्रत में हैं सो दूसरी पत्नी कुँ कैसे सँभार सकेंगे। एक पत्नी हुँ वरोवर सँभार न सके। सो रावण हर ले गयो और श्रीकृष्ण तो अनन्त अबलान के स्वामी हैं और जिनकी पत्नी भये पीछे कोई प्रकार को भय रहे नहीं है।

ये पत्र जब नन्ददासजी को लिख्यो तब तुलसीदास कुँ मिल्यो। तब तुलसीदास ने बाँच के विचार कियो के नन्ददास जी को मन वहाँ लग गयो है। सो वे अब आवेंगे नहीं। सो उनकी टेक हमसों अधिकी है। हम तो अयुध्या छोड़ के काशी में रहे हैं। और नन्ददासजी तो व्रज छोड़ के कहीं जाय नहीं है। उनकी टेक हमारी टेक सूँ बड़ी है।

सो एक दिन नन्ददासजी के मन में आई, जो जैसे तुलसीदासजी ने रामायण भाषा करी है, सो हमहूँ श्रीमद्भागवत भाषा करें। ये बात ब्राह्मण लोगन ने सुनी तब सब ब्राह्मण मिलकें श्री गुसाईंजी के पास गये। सो ब्राह्मणों ने विनती करी। जो श्रीमद्भागवत भाषा होयगी तो हमारी आजीविका जाती रहेगी। तब श्री गुसाईंजी ने नन्ददासजी सुँ आग्या करी। जो तुम श्रीमद्-भागवत भाषा मत करो और ब्राह्मणन के क्लेश में मत परो। ब्रह्म-क्लेश आछो नहीं है और कीर्तन करकें व्रज लीला गाओ।

सो नन्ददासजी के बड़े भाई तुलसीदास हते। सो काशीजी सें नन्ददासजी कूँ मिलवे के लिए व्रज में आये। सो मथुरा में आयके श्री जमुनाजी के दर्शन करे। पीछे नन्ददासजी की खबर काढ़ कें श्री गिरिराजजी गये उहां तुलसी-दासजी नन्ददासजी कुँ कही के तुम हमारे संग चलो, गाम रुचे तो अयोध्या में रहो, पुरी रुचे तो काशी में रहो, पर्वत रुचे तो चित्रकूट में रहो, वन रुचे तो दण्डकाराय में रहो। ऐसे बड़े-बड़े धाम श्रीरामचन्द्रजी ने पवित्र करे हैं। तब नन्ददासजी ने उत्तर देवे कुँ ये पद गायो :

> जो गिरि रुचे तो बसो गोवर्धन गाम रुचे तो बसो नंदगाम।
> नगर रुचे तो बसो श्री मधुपुरी सोभासागर अति अभिराम॥

सरिता रुचे तो बसो श्री जमुना-तट सकल मनोरथ पूरण काम ।
नंददास कानन रुचे तो बसौं भूमि वृन्दावन धाम ॥

ये पद सुनके तुलसीदास चुप रहे । जब नन्ददासजी श्रीनाथजी के दर्शन करिवे कू गये तब तुलसीदास हूँ उनके पीछे-पीछे गये । जब श्री गोवर्धननाथ जी के दर्शन करे तब तुलसीदासजी ने माथो नमायो नहीं । तब नन्ददासजी जान गये जो ये श्रीरामचन्द्रजी बिना और दूसरे कू नहीं नमे हैं । जब श्री नन्ददासजी नें मन में विचार कीनों यहां और गोकुल में इनकू श्री रामचन्द्रजी के दर्शन कराऊँ तब ये श्रीकृष्ण के प्रभाव को जानेंगे । जब नन्ददासजी ने श्रीगोवर्धननाथजी सों विनती करी सो दोहा :

आज की सोभा कहा कहुँ, भले विराजो नाथ ।
तुलसी मस्तक तब नमें, धनुष बाण लेओ हाथ ॥

जब श्री गोवर्धननाथजी ने श्रीरामचन्द्रजी को रूप धरके तुलसीदासजी कु दर्शन दिये । तब तुलसीदासजी ने श्री गोवर्धननाथजी कु साष्टांग दंडवत करी ।"

नन्ददासजी के सम्बन्ध में 'भक्तमाल' में नाभादासजी यह छप्पय लिखते हैं :

लीला पद रसरीति ग्रन्थ रचना में नागर ।
सरस उक्ति जुत जुक्ति भक्ति रसगान उजागर ॥
प्रचुर पयध लौं सुजस रामपुर ग्राम-निवासी ।
सकल सुकुल संवलित भक्ति पद रेनु उपासी ॥
चन्द्रहास अग्रज सुहृद परम प्रेम पै मै पगे ।
श्री नंददास आनंदनिधि रसिक सुप्रभु हित रँग मगे ॥

यदि तुलसीदास नन्ददास के बड़े भाई मान लिये जायें, जैसा 'दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता' में लिखा है; तो उपरोक्त छप्पय के अनुसार वे भी रामपुर गांव के निवासी और शुक्ल ब्राह्मण ठहरते हैं और उनके एक तीसरे भाई चन्द्रहास भी कम महत्त्व के नहीं ठहरते, क्योंकि नाभाजी ने नन्ददासजी की एक विशेषता यह भी बताई है कि वे चन्द्रहास के बड़े भाई थे ।

भक्तिरस बोधिनी

('भक्तमाल' की टीका)

प्रियादास ने अपने गुरु के आदेशानुसार सं० १७६९ में भक्त-माल की टीका लिखी, उसमें सब मिलाकर ६३४ कवित्त हैं । टीका और मूल

दोनों मिलाकर उसमें ३७४६ पंक्तियाँ हैं। यद्यपि प्रियादास उसे टीका कहते हैं, पर वास्तव में वह टीका नहीं, मूल का स्वेच्छापूर्वक विस्तार है। प्रियादास अपनी उस टीका के विषय में लिखते हैं :

संवत् प्रसिद्ध दस सात सत उनहत्तर
फालगुन मास वदी सप्तमी बिताइ कै।
नारायनदास सुखरासि भक्तमाल लैके
प्रियादास दास उर बसौ रहौ छाइ कै॥

× × ×

नाभाजू को अभिलाष पूरन लै कियो मैं तो

× × ×

ताही समय नाभाजू ने आज्ञा दई लई धारि
टीका विस्तारि भक्तमाल की सुनाइए।

इस 'टीका' में प्रियादास ने तुलसीदास के सम्बन्ध की सुनी-सुनाई बातें पद्यबद्ध कर दी हैं। उससे केवल इतना ही जाना जा सकता है कि १७६९ में तुलसीदास के विषय में कितनी और कैसी किम्वदन्तियाँ जनता में फैली हुई थीं। यद्यपि आज की अपेक्षा सवा दो सौ वर्ष पहले की बातें अधिक मूल्य अवश्य रखती हैं, पर फिर भी इतिहास की कसौटी पर हमें उनका मूल्य आँकना ही पड़ेगा।

प्रियादास के कवित्त, जो तुलसीदास के सम्बन्ध के हैं, यहाँ दिये जाते हैं:

"निसा सो सनेह विन पूछे पिता गेह गई
भूलि सुधि देह भजे वाही ठौर आए हैं।
वधू अति लाज भई, रिस सों निकस गई—
'प्रीति राम नई तन हाड़ चाम छाए हैं'॥
सुनी जग वात मानो ह्वै गयो प्रभात वह
पाछे पछिताय तजि काशीपुर धाए हैं।
कियो तहाँ वास प्रभु सेवा लै प्रकास कीनो
लीनों दृढ़ भाव नेम रूप के तिसाए हैं॥५००॥
शौच जल शेष पाइ भूत हू विशेष कोऊ
बोल्यो सुख मानि हनुमानजू बताए हैं।
रामायन कथा सो रसायन है कानन को
आवत प्रथम, पाछे जात, घृणा छाए हैं॥'

जाइ पहिचानि संग चले उर आनि आए
बन मध्य जानि धाइ पाइ लपटाए हैं।
करें सीतकार, कही 'सकोगे न टारि मैं तो
जाने रस सार' रूप धरयो जैसे गाए हैं ॥५०१॥
'माँगि लीजे वर' कही—'दीजै राम भूप रूप
अतिही अनूप नित नैन अभिलाखिये।'
कियो लै संकेत वाहि दिन ही सों लाग्यो हेत,
आई सोई समै चित चेत कवि चाखिये ॥
आये रघुनाथ साथ लछुमन चढ़े घोड़े
पर रंग बोरे हरे कैसे मन राखिये।
पाछे हनुमान आये, बोले 'देखे प्रान प्यारे' ?
'नेकु न निहारे मैं तो' 'भले फेरि' भाखिए ॥५०२॥
हत्या करि विप्र एक तीरथ करन आयो
कहै मुख 'राम' हत्या टारिये हत्यारे को।
सुनि अभिराम नाम धाम में बुलाइ लियो,
दियो लै प्रसाद कियो सुद्ध गायो प्यारे को ॥
भई द्विज सभा, कहि बोलिकै पठायो आप
'कैसे गयो पाप ? संग लै कै जैए न्यारे को !'
'पोथी तुम बाँचो हिए भाव नहीं साँचो अजू,
तातें मति काँची दूर ना करै अँध्यारे को' ॥५०३॥
देखी पोथी बाँच नाम महिमा हू कही साँच
ए पै हत्या करै कैसे तरै कहि दीजिये।
आवै जो प्रतीति कही 'याकै हाथ जेवैं जब
शिव जू के बैल तब पंगति में लीजिये' ॥
थार में प्रसाद दियो चले जहाँ पान कियो
बोले आप नाम के प्रसाद मति भीजिये।
जैसी तुम जानी तैसी कैसे कै बखानो अहो
सुनि कै प्रसन्न पायो जै-जै धुनि रीझिए ॥५०४॥
आए निसि चोर चोरी करन हरन धन
देखे श्यामघन हाथ चाप सर लिये हैं।
जब जब आवैं बान साध डरपावैं ए तो
अति मँडरावैं ए पै बलि दूरि किये हैं ॥

भोर आय पूछे 'अजू सांवरो किसोर कौन'
सुनि कर मौन रहे आंसू डारि दिये हैं।
दई सब लुटाइ जानि चौकी राम राइ दई
लई उन्ह शिक्षा सुद्ध भए हिए हैं ॥५०५॥
कियो तनु विप्र त्याग लागी चली संग तिया
दूर ही तें देखि कियो चरन प्रनाम हैं।
बोले यों 'सुहागवती' 'मरयो पति होहुँ सति'
'अब तो निकसि गई जाहु सेवो राम हैं' ॥
बोलि कै कुटंब कही 'जो पै भक्ति करो सही'
गही तब बात जीव दियो अभिराम है।
भए सब साध व्याधि मेटी लै विमुख ताकी
जाकी बास रहे तौन सूझै श्याम धाम है ॥५०६॥
दिल्लीपति बादशाह अहिदी पठाए लैन
ताको सो सुनायो सूनै विप्र ज्यायो जानिए।
देखिबे को चाहैं नीके मुख सो निबाहे आइ
कही बहु विनय गही चले मन आनिए ॥
पहुँचे नृपति पास आदर प्रकास कियो
दियो उच्च आसन लै बोल्यो मृदु बानिए।
दीजै करामाति जग ख्यात सब मात किये,
कही झूठ बात, एक राम पहचानिए ॥५०७॥
देखो 'राम कैसे !' कहि कैद किये किये हिये—
'हूजिए कृपाल हनुमान जू दयाल हो'।
ताही समै फैलि गए कोटि-कोटि कपि नये
नोचैं तन खैंचैं चीर भयो यों बिहाल हो ॥
फोरैं कोट मारैं चोट किये डारैं लोट पोट
लीजै कौन ओट आइ मानों प्रलय काल हो।
भई तब आंखें दुख सागर को चाखे अब
वेई हमैं राखैं भाखें 'वारौं धन माल हो' ॥५०८॥
आइ पाइ लिये तुम दिए हम प्रान आवैं
आप समुझावैं करामाति नैक लीजिए।
लाजि दबि गयो नृप तब राखि लियो कह्यो
भयो घर रामजू को बेगि छाड़ि दीजिए ॥

सुनि तजि दियो और कह्यो लैके कोट नयो
अब हूँ रहै कोऊ वामैं तन छीजिए ।
कासी जाइ वृन्दाबन आइ मिले नाभाजू सों
सुन्यो हो कवित्त निज रीझ मति भीजिए ॥५०९॥
मदन गोपालजू को दरसन करि कही 'सही
राम इष्ट मेरे दृग भाव पागी है' ।
वैसोई सरूप कियो दियो लै दिखाई रूप
मन अनुरूप छवि देख नीकी लागी है ॥
काहू कह्यो कृष्ण अवतारी जू प्रशंस महा
राम अंश सुनि बोले मति अनुरागी है ।
'दशरथ सुत जानों अनूप मानों
ईसता बताई रति कोटि गुनी जागी है' ॥५१०॥

प्रियादास के कवित्तों में ५०१ नं० के कवित्त में हनुमानजी से तुलसीदास की भेंट की जो कथा दी हुई नहीं है, उसकी प्रामाणिकता हमें तुलसीदास के शब्दों में भी मिलती है :

वेदन कुभाँति सो सही न जाति रात-दिन
सोई बाँह गही जो गही समीर डावरे ।

अर्थात् रात-दिन ऐसी भयानक पीड़ा, जो सही नहीं जाती, उसी बाँह में रहती है, जिसे पवन-पुत्र ने पकड़ा था ।

भक्त-कल्पद्रुम, भक्तमाल, रस-रसिकावली

ये तीनों पुस्तकें प्रियादास के आधार पर बनी हैं । अतएव इनका महत्त्व प्रियादास की उक्त टीका के अन्तर्गत ही है ।

शिवसिंह-सरोज

'शिवसिंह-सरोज' के कर्त्ता उन्नाव-निवासी शिवसिंह सेंगर थे । इसमें शिवसिंह के समय तक के हिन्दी-कवियों के साधारण परिचय दिये गए हैं । ऐसे समय में जब कि खोज के साधन बहुत कम थे, शिवसिंह ने प्रशंसनीय परिश्रम से हिन्दी-कवियों का समय, उनके ग्रन्थों के नाम और उनका संक्षिप्त परिचय प्राप्त करके यह संग्रह तैयार किया था । हम उनकी इस सुरुचि ही की प्रशंसा नहीं करते, बल्कि उनकी साहित्य-सेवा को भी बहुत मूल्यवान् समझते हैं । यद्यपि नवीन खोजों के आधार पर 'शिवसिंह-सरोज' की कुछ बातें निराधार प्रमाणित हो रही हैं, पर शिवसिंह के समय तक जो बातें जिस रूप में प्रचलित थीं, उनका संग्रह तो हमें 'सरोज' द्वारा मिल ही रहा है ।

'सरोज' में तुलसीदास के सम्बन्ध में यह मिलता है :

"यह महाराज सरवरिया ब्राह्मण, राजापुर, जिले प्रयाग के रहने वाले और संवत् १५८३ के लगभग उत्पन्न हुए थे। संवत् १६८० में स्वर्गवास हुआ। इनके जीवन-चरित्र की पुस्तक वेणीमाधवदास कवि पसका-ग्रामवासी ने, जो इनके साथ-साथ रहे, बहुत विस्तार पूर्वक लिखी है। उसके देखने से इन महाराज के सब चरित्र प्रकट होते हैं। इस पुस्तक में ऐसी विस्तृत कथा को हम कहाँ तक संक्षेप में वर्णन करें। निदान गोस्वामीजी वड़े महात्मा, रामोपासक, महा योगी सिद्ध हो गए हैं। इनके बनाये ग्रन्थों की ठीक-ठीक संख्या हमको मालूम नहीं हुई। केवल जो ग्रन्थ हमने देखे; अथवा हमारे पुस्तकालय में हैं, उनका जिकर किया जाता है। प्रथम ४९ काण्ड रामायण बनाया है, इस तफ़सील से, १ चौपाई-रामायण ७ काण्ड, २ कवितावली ७ काण्ड, ३ गीतावली ७ काण्ड, ४ छन्दावली ७ काण्ड, ५ बरवै ७ काण्ड, ६ दोहावली ७ काण्ड, ७ कुंडलिया ७ काण्ड। सिवा इन ४९ कांडों के १ सतसई, २ राम-शलाका, ३ संकटमोचन, ४ हनुमत्बाहुक, ५ कृष्ण-गीतावली, ६ जानकी मङ्गल, ७ पार्वती मङ्गल, ८ करखाछन्द, ९ रोला-छन्द, १० भूलना-छन्द इत्यादि और भी ग्रन्थ बनाये हैं। अन्त में विनयपत्रिका महाविचित्र मुक्ति रूप प्रज्ञानन्द-सागर ग्रन्थ बनाया है। चौपाई गोस्वामी महाराज की ऐसी किसी कवि ने नहीं बना पाई, और न 'विनय-पत्रिका' के समान अद्भुत ग्रन्थ आज तक किसी कवि महात्मा ने रचा। इस काल में जो रामायण न होती, तो हम ऐसे मूर्खों का वेड़ा पार न लगता। गोसाईंजी श्री अयोध्याजी, मथुरा-वृन्दावन, कुरुक्षेत्र, प्रयाग, वाराणसी, पुरुषोत्तम पुरी इत्यादि क्षेत्रों में बहुत दिनों तक घूमते रहे हैं। सबसे अधिक श्री अयोध्या, काशी, प्रयाग और उत्तराखंड, वंशीवट जिले सीतापुर इत्यादि में रहे हैं। इनके हाथ की लिखी हुई रामायण, जो राजापुर में थी, खंडित हो गई है। पर मलीहाबाद में आज तक सम्पूर्ण सातों कांड मौजूद हैं। केवल एक पत्रा नहीं है। विस्तार-भय से अधिक हालात हम नहीं लिख सकते। दो दोहे लिखकर इन महाराज का वृत्तान्त समाप्त करते हैं :

कविता कर्ता तीनि हैं, तुलसी केसव, सूर।
कविता खेती इन लुनी, सीला बिनत मजूर ॥ १ ॥
सूर सूर तुलसी ससी, उडुगन केसवदास।
अब के कवि खद्योत सम, जहँ-तहँ करत प्रकास ॥ २ ॥"

'सरोज' के वर्णन से हमें तुलसीदास के जन्म और मृत्यु के संवत् तो मिलते

हैं, पर उनकी सचाई का कोई प्रमाण नहीं मिलता।

गोस्वामी तुलसीदास का जीवन-चरित

यह पुस्तिका श्रीमती रानी कमलकुँवरिदेवजू (रियासत सरीला, जिला हमीरपुर) ने पद्य में बनाई थी। इसकी सं० १९५२ की छपी हुई प्रति मुझे लाला सीताराम (प्रयाग) के पुस्तकालय में देखने को मिली थी। इसमें दोहे और चौपाइयों में तुलसीदास का जीवन-चरित दिया हुआ है और नन्ददास को तुलसीदास का गुरुभाई लिखा है।

इसमें दो-तीन बातें विशेष ध्यान देने की हैं। एक तो यह कि तुलसीदास सनौगिया (सनाढ्य ?) ब्राह्मण थे और दूसरी यह कि वे सुरसरि (गंगाजी) को पार करके ससुराल गये थे। यह बात राजापुर को तुलसीदास का जन्म-स्थान मानने वालों के विरुद्ध पड़ती है; क्योंकि राजापुर में गंगाजी नहीं, जमनाजी हैं। पर इसी में राजापुर को उनका जन्म-स्थान भी लिखा है। इससे दोनों में सत्य क्या है, यह निर्णय करना कठिन हो जाता है। तीसरी यह कि तुलसीदास का जन्म सं० १५८३ में हुआ था, जैसा सरोजकार ने भी लिखा है :

द्विज सनौढ़िया पादन जानो।
राजापुर में जन्म बखानो।
पंद्रा सै तैरासी, जन्म भयो सुभ जान।
सोरा सै अस्सी वरस, हो गए अन्तरधान॥

× ×

वनिता से अति प्रेम लगायो।
नैहर गई सोच उर छायो।
सुरसरि पार गये घबराई।
एक मुरदा की नाव बनाई।

नोट्स ऑन तुलसीदास

हिन्दी के सुप्रसिद्ध विद्वान् सर जार्ज ग्रियर्सन ने 'इंडियन एंटीक्वेरी' में, सन् १८९३ में, तुलसीदास पर एक लेख प्रकाशित कराया था, जिसमें उस समय तक प्राप्त तुलसीदास के जीवन-सम्बन्धी घटनाओं पर प्रकाश डाला गया था। पीछे उक्त लेख अलग भी पुस्तकाकार प्रकाशित हुआ। उसके पश्चात् हिन्दी में तुलसीदास-सम्बन्धी जितने इतिहास-ग्रन्थ लिखे गए, सबका आधार वही है।

तुलसीदास के अन्य अंग्रेज विद्वानों ने भी, जिनमें एफ० एम० ग्राउस और

रेवरेंड एड्विन ग्रीव्स मुख्य हैं, ग्रियर्सन साहब ही का समर्थन किया है। ग्राउस साहब ने पहले-पहल सन् १८७६ में 'रामचरितमानस' के एक अंश का अंग्रेजी अनुवाद प्रकाशित कराया था। अब उनका सम्पूर्ण मानस का अनुवाद पुस्तकाकार छपा हुआ मिलता है। उसके प्रारम्भ में एक बहुत विचारपूर्ण भूमिका लिखकर उन्होंने तुलसीदास पर अपना पूर्ण अधिकार प्रमाणित किया है। ग्रीव्स साहब ने सन् १८९९ की 'नागरी प्रचारिणी-पत्रिका' में तुलसीदास का जीवन-चरित लिखा है। उसमें भी गियर्सन साहब की खोज का समर्थन किया गया है।

विस्तार-भय से यहाँ हम उनके समूचे लेख देने में असमर्थ हैं।

गोस्वामी तुलसीदास का जीवन-चरित

यह जीवन-चरित 'रामचरितमानस' के सुप्रसिद्ध टीकाकार बैजनाथदास कुरमी की रचना है। इसमें बैजनाथदास ने अपने समय तक की प्रचलित तुलसीदास के जीवन-सम्बन्धी कथाओं को संग्रह करके उन्हें पद्यबद्ध कर दिया है। यह उनकी 'रामचरितमानस' की टीका के साथ सन् १८९० ई० में नवल-किशोर प्रेस, लखनऊ से प्रकाशित हुआ है। महात्मा रामचरणदास की 'राम-चरितमानस' की टीका के साथ भी यही जोड़ा हुआ है।

घटनाओं की प्रामाणिकता का प्रश्न उठाये बिना केवल कविता की दृष्टि से मैं यह कह सकता हूँ कि इसकी कविता रघुबरदास के 'तुलसी-चरित' और बेणीमाधव के 'मूल गोसाईं-चरित' से कहीं अधिक सरस और सुबोध है। यहाँ तीनों के अलग-अलग उदाहरण दिये जाते हैं :

तुलसी-चरित—

मोर व्याह है प्रथम जो भयऊ। हस्तप्रास भार्गव गृह ठयऊ।
भई स्वर्गवासी दोउ नारी। कुलगुरु तुलसी कहेउ व्रतधारी।
तृतिय व्याह कञ्चनपुर माँही। सोइ तिय वच विदेस अवगाही।
अहो नाथ तिन्ह कीन्ह खोटाई। मात भ्रात परिवार छोटाई।
कुलगुरु कथन भई सब साँची। सुख धन गिरा अवर सब काँची।

मूल गोसाईं-चरित—

घरि पाँच इक बार चढ़ै मुनिआ। निज सास के पाँय गही चुनिया।
सब हाल हवाल बताय चली। सुनि सास कही बहु कीन्ह भली।
घर माँहि कलोर को दूध पिआ। बिन माय को है सिसु लेसि जिआ।

× × ×

बालक दसा निहारि, गौरा माई जग जननि।
द्विजतिय रूप सँवारि, नितहिं पवा जावहिं असन॥

गोस्वामी तुलसीदास का जीवन-चरित—

कुंडलिया

राना की सुतवधू इक, कीरति जग अभिराम।
परम भागवत भक्ति दृढ़, मीराबाई नाम॥
मीराबाई नाम विषय-रस परस घटायो।
सकल कामनाहीन चित्त हरि चरनन लायो॥
लायो चरनन चित्त साधु-सेवा प्रन ठाना।
लखि निज लज्जा भंग बहुत बरजै तेहि राना॥

अरिल्ल

कौन सुनै केहि बैन प्राण हरि पद बसै।
विष नहीं चढ़ै सरीर भुजङ्गम जो डसै।

'तुलसी-चरित' और 'मूल गोसाईं-चरित' से बैजनाथदास-रचित जीवन-चरित की कविता अधिक शुद्ध और सरस होने पर भी उसका ऐतिहासिक मूल्य बहुत ही कम है। उसमें केवल तुलसीदास के चमत्कारों का वर्णन है, जो साधारण जनता में अन्ध-विश्वास बढ़ाने के लिए ही अधिक उपयोगी है। जैसे चौरासी और दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता में 'श्रीगुसाईंजी महाप्रभून' के दैवी चमत्कार बटोरे गए हैं, वैसे ही इसमें तुलसीदास के अलौकिक कार्यों की कथाएँ भक्तों के लिए सुलभ कर दी गई हैं।

तुलसी-चरित

प्रयाग से 'मर्यादा' नाम की एक पत्रिका मासिक रूप में निकला करती थी। उसकी ज्येष्ठ, १९६९ की संख्या में श्रीयुक्त इन्द्रदेवनारायण ने अपने एक लेख में तुलसी-चरित की सूचना सर्व-साधारण को दी थी। उसकी अविकल लिपि यहाँ दी जाती है :

"गोस्वामीजी का जीवन-चरित उनके शिष्य महानुभाव महात्मा रघुवर-दासजी ने लिखा है। इस ग्रन्थ का नाम 'तुलसी-चरित' है। यह बड़ा ही वृहत् ग्रन्थ है। इसके मुख्य चार खण्ड हैं—(१) अवध, (२) काशी, (३) नर्मदा और (४) मथुरा; इनमें भी अनेक उपखंड हैं। इस ग्रन्थ की छन्द-संख्या इस प्रकार लिखी हुई है—

यह ग्रन्थ महाभारत से कम नहीं है। इसमें गोस्वामीजी के जीवन-चरित-

विषयक नित्य-प्रति के मुख्य-मुख्य वृत्तान्त लिखे हुए हैं। इसकी कविता अत्यन्त मधुर, सरल और मनोरंजक है। यह कहने में अत्युक्ति न होगी कि गोस्वामीजी के प्रिय शिष्य महात्मा रघुबरदासजी-विरचित इस आदरणीय ग्रन्थ की कविता श्री 'रामचरितमानस' के टक्कर की है और यह 'तुलसी-चरित' बड़े महत्त्व का ग्रन्थ है। इससे प्राचीन समय की सभी बातों का विशेष परिज्ञान होता है। इस माननीय बृहत् ग्रन्थ के 'अवध-खण्ड' में लिखा है कि जब श्री गोस्वामीजी घर से विरक्त होकर निकले, तो रास्ते में रघुनाथ नामक एक पंडित से भेंट हुई और गोस्वामीजी ने उनसे अपना सब वृत्तान्त कहा—

गोस्वामीजी का वचन

चौपाई

काल अतीत यमुन तरनी के। रोदन करत चलेहुँ मुख फीके ॥
हिय विराग तिथि अपमित वचना। कंठ मोह बैठो निज रचना ॥
खींचत त्याग विराग बटोही। मोह गेह दिसि कर सत सोही ॥
भिरे जुगल वल वरनि न जाहीं। स्पंदन वपू खेत वन माहीं ॥
तिनिहूँ दिशा अपथ महि काटी। आठ कोस मिसिरन की पाटी ॥
पहुँचि ग्राम तट सुतरु रसाला। वैठेहुँ देखि भूमि सुविसाला ॥
पंडित एक नाम रघुनाथा। सकल शास्त्रपाठी गुण गाथा ॥
पूजा करत डरत मैं जाई। दंड प्रनाम कीन्ह सकुचाई ॥
सो मोहि कर चेष्टा सनमाना। वैठि गयउँ महितल भय माना ॥
बुध पूजा करि मोहि बुलावा। गृह वृतांत पूछब मन भावा ॥

× × ×

जुवा और शुचि वदनि विचारी। जनु विधि निज कर आपु सँवारी ॥
तुम विसोक आतुर गति धारी। धर्मशील नहिं चित्त विकारी ॥
देखत तुम्हहिं दूरि लगि प्रानी। अद्भुत सकल परस्पर मानी ॥
तात मात तिय भ्रात तुम्हारे। किमि न तात तुम्ह प्रान पियारे ॥
कुटुम परोस मित्र कोउ नाहीं। किधौं मूढ़ पुर वास सदाहीं ॥
सन्यपात पकरे सव ग्रामा। चले भागि तुम तजि वह ठामा ॥
तव यात्रा विदेश कर जानी। विदरि हृदय किमि मरे अयानी ॥
चित्त वृत्ति तुव दुख मह ताता। सुनत न जगत व्यक्त सव वाता ॥
मोते अधिक कहत सब लोगा। अजहुँ जुरे देखत तरु योगा ॥
कहाँ तात ससुरारि तुम्हारी। तुम्हहिं धाय नहिं गहे अनारी ॥
जाति पाँति गृह ग्राम तुम्हारा। पिता पीठि का नाम अचारा ॥

दोहा—कहहु तात दस कोस लगि, विप्रन को व्यवहार।
मैं जानत भलि भाँति सब, सत अरु असत विचार॥
चले अश्रु गदगद हृदय, सात्विक भयो महान।
भुवि नख रेख लख्यौं करन, मैं जिमि जड़ अज्ञान॥

चौपाई

दयाशील बुधवर रघुराई। तुरत लीन्ह मोहि हृदय लगाई॥
अश्रु पोंछि बहु तोष देवाई। बिसे बीस सुत मम समुदाई॥
लखौं चिह्न मिश्रन सम तोरा। बिसुचि मंजु मम गोत्र किशोरा॥
जनि रोवसि प्रिय बाल मतीशा। मेटहिं सकल दुसह दुख ईशा॥
धीरज धरि मैं कथन विचारा। पुनि बुध कीन्ह विविध सतकारा॥
परशुराम परपिता हमारे। राजापुर सुख भवन सुधारे॥
प्रथम तीर्थ यात्रा महँ आये। चित्रकूट लखि अति सुख पाये॥
कोटि तीर्थ आदिक मुनिवासा। फिरे सकल प्रमुदित गत आसा॥
वीर मरुतसुत आस्रम आई। रहे रैनि तहँ अति सुख पाई॥
परशुराम सोये सुख पाई। तहँ मारुतसुत स्वप्न दिखाई॥
वसहु जाय राजापुर ग्रामा। उत्तर भाग सुभूमि ललामा॥
तुम्हरे वौध पीठिका एका। तप समूह मुनि जन्म विवेका॥
सम्पति तीरथ भ्रमे अनेका। जानि चरित अदभुत गहि टेका॥
दंपति रहे पक्ष एक तहवाँ। गये कामदा शृङ्ग सु जहवाँ॥
नाना चमतकार तिन्ह पाई। सीतापुर नृप के ढिग आई॥
राजापुर निवास हित भाषा। कहे चरित कुछ गुप्त न राखा॥
तरिवनपुर तेहि की नृपधानी। मिश्र परशुरामहिं नृप आनी॥

दोहा—अति महान विद्वान लखि, पठन शास्त्र पट जासु।
बहु सन्माने भूप तहँ, कहि द्विज मूल निवासु॥
सरयू के उत्तर वसत, मञ्जु देश सरवार।
राज मँझवली जानिये, कसया ग्राम उदार॥
राजधानि ते जानिए, कोश विंश त्रय भूप।
जन्मभूमि मम और पुनि, प्रगट्यो वौध स्वरूप॥

चौपाई

वौध स्वरूप पेंड ते भारी। उपल रूप महि दीन बलारी॥
जैनाभास चल्यो मत भारी। रक्षा जीव पूर्ण परिचारी॥
हेम सुकुल तेहि कुल के पंडित। क्षत्री धर्म सकल गुण मंडित॥

मैं पुनि गाना मिश्र कहावा। गणपति भाग यज्ञ महँ पावा ॥
मम बिनु महावंश नहिं कोई। मैं पुनि बिन सन्तान जो सोई ॥
तिरसठि अब्द देह मम राजा। तिमिसम पत्नि जानि मति भ्राजा ॥
खचित स्वप्नवत लखि मरलोका। तीरथ करन चलेहुँ तजि सोका ॥
चित्रकूट प्रभु आज्ञा पावा। प्रगट स्वप्न बहु विधि दरसावा ॥
भूप मानि मैं चलेहुँ रजाई। राजापुर निवास की ताई ॥
निर्धन बसव राजपुर जाई। वृक्ष कलिन्दि तीर सचु पाई ॥
नगर गेह सुख मिलै कदापी। बसव न होंहि जहाँ परितापी ॥
अति आदर करि भूप बसावा। वाममार्ग पथ शुद्ध चलावा ॥
स्वाद त्यागि शिव शक्ति उपासी। जिनके प्रकट शम्भु गिरिवासी ॥
परशुराम काशी तन त्यागे। राम मंत्र अति प्रिय अनुरागे ॥
शंभु कर्ण गत दीन सुनाई। चढ़ि विमान सुरधाम सिधाई ॥
तिनके शंकर मिश्र उदारा। लघु पंडित प्रसिद्ध संसारा ॥

दोहा—परशुरामजू भूप को, दान भूमि नहिं लीन।
शिष्य मारवाड़ी अमित, धन गृह दीन्ह प्रवीन ॥
वचन सिद्धि शंकर मिसिर, नृपति भूमि बहु दीन।
भूप रानि अरु राज नर, भए शिष्य मति लीन ॥
शंकर प्रथम विवाह ते, वसु सुत करि उत्पन्न।
द्वै कन्या द्वै सुत सुबुध, निसि दिन ज्ञान प्रसन्न ॥

चौपाई

ज़ोपित मृतक कीन अनु ब्याहा। ताते मोरि साखि बुधनाहा ॥
तिनके सन्त मिश्र द्वै भ्राता। रुद्रनाथ एक नाम जो ख्याता ॥
सोउ लघु बुध शिष्यन्ह महँ जाई। लाय द्रव्य पुनि भूमि कमाई ॥
रुद्रनाथ के सुत भे चारी। प्रथम पुत्र को नाम मुरारी ॥
सो मम पिता सुनिय बुध भ्राता। मैं पुनि चारि सहोदर भ्राता ॥
ज्येष्ठ भ्रात मम गणपति नामा। ताते लघु महेस गुण धामा ॥
कर्मकांड पंडित पुनि दोऊ। अति कनिष्ठ मंगल कहि सोऊ ॥
तुलसी तुलाराम मम नामा। तुला अन्न धरि तौलि स्वधामा ॥
तुलसिराम कुल गुरू हमारे। जन्मपत्र मम देखि विचारे ॥
हस्त प्रास पंडित मतिधारी। कह्यो बाल होइहिं व्रतधारी ॥
धन विद्या तप होय महाना। तेजरासि बालक मतिमाना ॥
भरतखंड एहि सम एहि काला। नहिं महान कोउ परमति शाला ॥

करिहिं खचित नृपगन गुरुवाई। बचन सिद्धि खलु रहहिं सदाई॥
अति सुन्दर सरूप सित देहा। बुध मंगल भाग्यस्थल गेहा॥
ताते यह विदेह सम जाई। अति महान पदवी पुनि पाई॥
पंचम केतु रुद्र गृह राहू। जतन सहस्र वंश नहिं लाहू॥
दोहा—राज योग दोउ सुख सु एहि, होहिं अनेक प्रकार।
अब्दै दया मुनीस को, लियो जन्म वर बार॥

चौपाई

प्रेमहि तुलसि नाम मम राखी। तुलारोह तिय कहि अभिलाषी॥
मातु भगिनि लघु रही कुमारी। कीन ब्याह सुन्दरी विचारी॥
चारि भ्रात द्वै भगिनि हमारे। पिता मातु मम सहित निसारे॥
भ्रात पुत्र कन्या मिलि नाथा। षोडस मनुज रहे एक साथा॥

+ + +

बानी विद्या भगिनि हमारी। धर्म शील उत्तम गुण धारी॥

+ + +

दोहा—अति उत्तम कुल भगिनि सब, ब्याही अति कुसलात।
हस्त प्रास पंडितन्ह गृह, ब्याहे सब मम भ्रात॥

चौपाई

मोर ब्याह द्वै प्रथम जो भएऊ। हस्त प्रास भार्गव गृह ठएऊ॥
भई स्वर्गवासी दोउ नारी। कुलगुरु तुलसि कहेउ व्रतधारी॥
तृतिय ब्याह कंचनपुर माही। सोइ तिय वच विदेश अवगाही॥
अहो नाथ तिन्ह कीन्ह खोटाई। मात भ्रात परिवार छोटाई॥
कुलगुरु कथन भई सब साँची। सुख धन गिरा अवर सबकाँची॥
सुनहु नाथ कंचनपुर ग्रामा। उपाध्याय लछिमन अस नामा॥
तिनकी सुता बुद्धिमति एका। धर्मशील गुनपुञ्ज विवेका॥
कथा पुरान श्रवन बलभारी। अति कन्या सुन्दरि मति धारी॥
दोहा—मोह विप्र बहु द्रव्य ले, पितु मिलि करि उत्साह।
यदपि मातु पितु सो विमुख, भयो तृतिय मम ब्याह॥

× × × ×

चौपाई

निज विवाह प्रथमहिं करि जहवाँ। तीन सहस मुद्रा लिय तहवाँ॥
पट् सहस्र लै मोहि विवाहे। उपाध्याय कुल पावन चाहे॥
ऊपर लिखे हुए पदों का सारांश यह है कि सरयू नदी के उत्तर-भागस्थ

सरवार देश में मझौली से तेईस कोस पर कसैयाँ ग्राम में गोस्वामी के प्रपिता मह परशुराम मिश्र का जन्म-स्थान था और वहीं के वे निवासी थे। एक बार वे तीर्थ-यात्रा के लिए घर से निकले और भ्रमण करते हुए चित्रकूट में पहुँचे। वहाँ हनुमानजी ने स्वप्न में आदेश दिया कि तुम राजापुर में निवास करो, तुम्हारी चौथी पीढ़ी में एक तपोनिधि मुनि का जन्म होगा। इस आदेश को पाकर परशुराम मिश्र सीतापुर में उस प्रांत के राजा के यहाँ गये और उन्होंने हनुमानजी की आज्ञा को यथातथ्य राजा से कहकर राजापुर में निवास करने की इच्छा प्रकट की। राजा इनको अत्यन्त श्रेष्ठ विद्वान् जानकर अपने साथ अपनी राजधानी तीखनपुर में ले आये और बहुत सम्मान पूर्वक उन्हें राजापुर में निवास कराया। उनके तिरसठ वर्ष की अवस्था तक कोई संतान नहीं हुई; इससे वे बहुत खिन्न होकर तीर्थ-यात्रा को गये, तो पुनः चित्रकूट में स्वप्न हुआ और वे राजापुर लौट आए। उस समय राजा उनसे मिलने आया। तदनन्तर उन्होंने राजापुर में शिव-भक्ति के उपासकों की आचरण-भ्रष्टता से दुःखित हो राजापुर में रहने की अनिच्छा प्रकट की; परन्तु राजा ने उनके मत के अनुयायी होकर बड़े सम्मान पूर्वक उनको रखा और भूमिदान दिया; परन्तु उन्होंने ग्रहण नहीं किया। उनके शिष्यों में मारवाड़ी बहुत थे, उन्हीं लोगों के द्वारा इनको धन, गृह और भूमि का लाभ हुआ। अंतकाल में काशी जाकर इन्होंने शरीर-त्याग किया। ये गाना के मिश्र थे और यज्ञ में गणेशजी का भाग पाते थे।

इनके पुत्र शङ्कर मिश्र हुए जिनको वाक्सिद्धि प्राप्त थी। राजा और रानी तथा अन्यान्य राज्यवर्ग इनके शिष्य हुए और राजा से इन्हें बहुत भूमि मिली। इन्होंने दो विवाह किये। प्रथम से आठ पुत्र और दो कन्याएँ हुईं; दूसरे विवाह से दो पुत्र हुए—(१) संत मिश्र (२) रुद्रनाथ मिश्र। रुद्रनाथ मिश्र के चार पुत्र हुए। सबसे बड़े मुरारी मिश्र थे। इन्हीं महाभाग्यशाली महापुरुष के पुत्र गोस्वामीजी हुए।

गोस्वामीजी चार भाई थे—(१) गणपति, (२) महेश, (३) तुलाराम, (४) मङ्गल।

यही तुलाराम तत्त्वाचार्यवर्य भक्तचूड़ामणि गोस्वामीजी हैं। इनके कुल-गुरु तुलसीराम ने इनका नाम तुलाराम रखा था। गोस्वामीजी के दो बहनें भी थीं। एक का नाम वाणी और दूसरी का विद्या था।

गोस्वामीजी के तीन विवाह हुए थे। प्रथम स्त्री के मरने पर दूसरा विवाह हुआ और दूसरी के मरने पर तीसरा। यह तीसरा ब्याह कंचनपुर के लक्ष्मण

उपाध्याय की पुत्री बुद्धिमती से हुआ। इस विवाह में इनके पिता ने छः हजार मुद्रा ली थीं। इसी स्त्री के उपदेश से गोस्वामीजी विरक्त हुए थे।" (मर्यादा भाग ४, अङ्क १)

इस ग्रन्थ की प्रामाणिकता के विषय में हम और अधिक न कहकर तुलसीदास के सुप्रसिद्ध जीवनी-लेखक श्रीयुक्त शिवनन्दनसहाय का एक लेख-खण्ड यहाँ उद्धृत करते हैं, जो श्रीश्यामसुन्दरदास और वडथ्वाल-लिखित 'गोस्वामी तुलसीदास' के १९वें पृष्ठ पर प्रकाशित हुआ है। उससे इस ग्रन्थ की मौलिकता और उपयोगिता पर अच्छा प्रकाश पड़ता है—

"हमें ज्ञात हुआ है कि केसरिया (चंपारन)-निवासी बाबू इन्द्रदेव-नारायण को गोसाईंजी के किसी चेले की, एक लाख दोहे-चौपाइयों में लिखी हुई, गोसाईंजी की जीवनी प्राप्त हुई है। सुनते हैं, गोसाईंजी ने पहले उसके प्रचार न होने का शाप दिया था; किंतु लोगों के अनुनय-विनय से शाप-मोचन का समय सं० १९६७ निर्धारित कर दिया। तब उसकी रक्षा का भार उसी प्रेत को सौंपा गया जिसने गुसाईंजी को श्रीहनुमानजी से मिलने का उपाय बताकर श्रीरामचन्द्रजी के दर्शन का उपाय बताया था। वह पुस्तक भूटान के किसी ब्राह्मण के घर पड़ी रही। एक मुन्शीजी उसके बालकों के शिक्षक थे। बालकों से उस पुस्तक का पता पाकर उन्होंने उसकी पूरी नकल कर डाली। इस गुरुतर अपराध से क्रोधित हो वह ब्राह्मण उनके वध के निमित्त उद्यत हुआ तो मुन्शी जी वहाँ से चंपत हो गए। वही पुस्तक किसी प्रकार अलवर पहुँची और फिर पूर्वोक्त बाबू साहब के हाथ लगी। क्या हम अपने स्वजातीय इन मुन्शीजी की चतुराई और बहादुरी की प्रशंसा न करेंगे? उन्होंने सारी पुस्तक नकल कर ली, तब तक ब्राह्मण देवता के कानों तक खबर न पहुँची, और जब भागे तो अपने बोरिए-बस्ते के साथ उस बृहत्काय ग्रन्थ को भी लेते हुए। इसके साथ ही क्या अपने दूसरे भाई को यह अश्रुतपूर्व और अलभ्य पुस्तक हस्तगत करने पर बधाई न देनी चाहिए? पर प्रेत ने उसकी कैसे रक्षा की और वह उस ब्राह्मण के घर कैसे पहुँची? यह कुछ हमारे संवाददाता ने हमें नहीं बताया। जो हो, जिस प्रेत की बदौलत सब-कुछ हुआ, उसके साथ गोसाईंजी ने यथोचित प्रत्युपकार नहीं किया। वनखंडी तथा केशवदास के समान उसके उद्धार का उद्योग तो भला करते, उलटे उसके माथे ३०० वर्ष तक अपनी जीवनी की रक्षा का भार डाल दिया!"

मूल गोसाईं-चरित

शिवसिंह सेंगर ने अपने 'सरोज' में बाबा बेनीमाधवदास-रचित तुलसीदास

के एक जीवन-चरित की सूचना दी है। शिवसिंह ने तुलसीदास का जन्म सं० १५८३ में होना लिखा है और मूल गोसाईं-चरित में, जो बेनीमाधवदास के 'चरित' का संक्षिप्त संस्करण कहा जाता है, जन्म-संवत् यह लिखा मिलता है:

पंद्रह सै चौवन विषै, कालिन्दी के तीर।
स्रावन सुक्ला सत्तमी, तुलसी धरेउ सरीर॥

शिवसिंह ने स्वयं उक्त चरित को देखा था या नहीं, इस विषय में मुझे संदेह है। देखा होता तो कम-से-कम तुलसीदास के जन्म-संवत् में दोनों ग्रन्थ-कारों में मतभेद न होता। यदि शिवसिंह की यह बात मान भी ली जाय कि उन्होंने बेनीमाधवदास का गोसाईं-चरित देखा था, तो यह भी मान लेना ही चाहिए कि उन्होंने उसे पढ़ा नहीं था। पढ़ा होता तो वे संवत् ही की भूल से न बचते, बल्कि अपने 'सरोज' में वे बेनीमाधवदास का परिचय और उनके कुछ छन्द भी देते, जैसा उन्होंने अन्य कवियों के लिए किया है।

शिवसिंह ने 'सरोज' में एक ऐसी पुस्तक का हवाला दिया, जो अब अप्राप्य है। उस हवाले का परिणाम यह हुआ कि उसी नाम की पुस्तक प्राचीन कागज पर लिखकर या लिखवाकर चतुर आदमियों को तुलसीदास के प्रेमियों के सम्मुख उपस्थित करने का अवसर मिल गया। प्राचीन कागज मिलना कठिन नहीं। जितनी प्राचीन हस्तलिखित पुस्तकें हैं, प्रायः सबके अन्त में कुछ पत्रे सादे लगे मिलते हैं, जो पुस्तक की समाप्ति पर बच जाते होंगे। उन पत्रों को लेकर कोई व्यक्ति चाहे, तो तुलसीदास या कालिदास के नाम से उन पर एक नई पुस्तक लिखकर या लिखवाकर प्रस्तुत कर सकता है और यदि उसको इस बात का भी सहारा मिल जाय कि उस नाम की पुस्तक कभी थी और अब नहीं मिल रही है, तब तो उसके पौ बारह हैं।

'मूल गोसाईं-चरित' को मैं इसी तरह की एक नव-निर्मित पुस्तक मानता हूँ। मैंने उसे ध्यान से पढ़ा है। उसके एक-एक शब्द और मुहावरे पर विचार किया है और तब मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि उसकी आयु अभी बहुत थोड़ी है।

पचास-साठ वर्ष पहले से ग्रियर्सन साहब और ग्राउस और ग्रीव्स साहबान भी तुलसीदास के जीवन-चरित की खोज में थे, पर उन्हें कोई लिखित प्रमाण नहीं प्राप्त हुआ था। अब जब कि साहित्यिक खोज की कद्र बढ़ रही है, कालेजों और युनिवर्सिटियों में हिन्दी के प्राचीन कवियों को स्थान दिया जा रहा है, तब अप्राप्य पुस्तकों का एकाएक प्रादुर्भाव अवश्य ही चतुर व्यक्तियों

के लिए रोचक विषय हो गया है।

सन् १६२५ में उन्नाव के एक वकील पंडित रामकिशोर शुक्ल, बी० ए०, ने स्वसम्पादित 'रामचरितमानस' के प्रारम्भ में बाबा वेनीमाधवदास-कृत 'मूल गोसाईं-चरित' लगाकर नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ से प्रकाशित कराया है। उसमें वे लिखते हैं—

"काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा के विद्वान् सम्पादकों ने 'श्रीरामचरितमानस' का शुद्ध संस्करण सम्पादित करते समय 'गोस्वामीजी के जीवन-चरित की उपलब्धि' पर विचार करते हुए लिखा है :

'सबसे प्रामाणिक वृत्तान्त बताने वाला' ग्रन्थ, वेणीमाधवदास-कृत 'गोसाईं-चरित' है, जिसका उल्लेख बाबू शिवसिंह सेंगर ने 'शिवसिंह-सरोज' में किया है। परन्तु खेद का विषय है कि न तो अब वह ग्रन्थ ही कहीं मिलता है और न शिवसिंह-सरोजकार ने उसका संक्षिप्त वृत्तान्त ही अपने ग्रन्थ में लिखा है। वेणीमाधवदास कवि पसका ग्राम के निवासी थे और गोसाईंजी के साथ सदा रहते थे।'

ऊपर जिस प्रामाणिक ग्रन्थ का उल्लेख हुआ है, उसका अन्तिम अध्याय, सौभाग्य से, भगवत् की असीम कृपा से, हमें प्राप्त हो गया है। इस अध्याय का नाम 'मूल गोसाईं-चरित' है। इसमें बाबा वेणीमाधवदासजी ने नित्य पाठ करने के अभिप्राय से, संक्षेप से तुलसीदास के सम्पूर्ण चरित्र का उल्लेख कर दिया है।"

उक्त 'चरित' कैसे प्राप्त हुआ ? कहाँ से प्राप्त हुआ ? यह रहस्य बताने की आवश्यकता शुक्लजी ने नहीं समझी। यद्यपि ऐसी प्रामाणिक पुस्तक के लिए उसकी प्राप्ति का पूरा विवरण देना बहुत ही आवश्यक था। प्रसन्नता की बात है कि शुक्लजी का यह भार श्रीयुक्त श्यामसुन्दरदास और बडथ्वाल-जैसे विद्वानों ने अपने ऊपर ले लिया। उन्होंने 'मूल गोसाईं-चरित' के आधार पर 'गोस्वामी तुलसीदास' नाम की एक भारी भरकम पुस्तक की रचना की है, जो हिन्दुस्तानी एकेडेमी, प्रयाग से सन् १६३१ में प्रकाशित हुई थी। उक्त सम्पादकद्वय 'गोस्वामी तुलसीदास' के पृष्ठ २० और २१ पर 'मूल गोसाईं-चरित' की असली प्रति का हाल इस प्रकार लिखते हैं—

"पंडित रामकिशोर शुक्ल को वेणीमाधवदास की प्रति कनक-भवन अयोध्या के महात्मा बालकराम विनायकजी से प्राप्त हुई थी। महात्माजी की कृपा से उनकी प्रति को देखने का हमें भी सौभाग्य मिला है। जिस प्रति से यह प्रति लिखी गई थी वह मौजा मरुव, पोस्ट ओबरा, जिला गया के पंडित

रामाधारी के पास है। पांडेयजी ने लिखा है कि यह प्रति उनके पिता को गोरखपुर में किसी से प्राप्त हुई थी। तब से वह उनके यहाँ है और नित्य-प्रति उसका पाठ होता है। पांडेयजी इस प्रति को पूजा में रखते हैं। इससे वह बाहर तो नहीं जा सकती; परन्तु यदि कोई उसे वहाँ जाकर देखना और जाँचना चाहे तो ऐसा कर सकता है।

जाँच कराने से ज्ञात हुआ है कि यह प्रति पुराने देशी कागज पर देव-नागरी अक्षरों में लिखी है। इसमें ६।।" × ५।।" के आकार के ५४ पृष्ठ हैं। प्रत्येक पृष्ठ में १२ पंक्तियाँ है।"

इतना विवरण मिलने पर भी यह जानना अभी शेष ही है कि उक्त महात्मा-जी को वह प्रति कैसे प्राप्त हुई? क्या वे गया गये थे? और स्वयं उन्होंने उसकी नकल की थी ? वह पुस्तक तो पूजा में रहती है, कहीं बाहर जा नहीं सकती, फिर वह कनक-भवन अयोध्या तक कैसे पहुँची ? असली प्रति भी तो अभी किसी ने नहीं देखी है। केवल पत्र द्वारा उसके पत्रों की लम्बाई-चौड़ाई मँगा ली गई है।

खैर; हम एक बार यह मान ही लेते हैं कि उक्त 'मूल गोसाईं-चरित' बाबा वेणीमाधवदास ही के रचे हुए ग्रन्थ की नकल है। अब आइये, हम प्रस्तुत पुस्तक की प्रामाणिकता को तर्क की कसौटी पर तो कसकर देखें।

मेरे पास 'मूल गोसाईं-चरित' गीता प्रेस गोरखपुर का छपा हुआ है। उसमें डबल क्राउन आकार के कुल ३६ पृष्ठ हैं। उसके प्रारम्भ में ये दो दोहे हैं:

संतन कहेउ बुझाय, मूल-चरित पुनि भापिये।
अति संछेप सोहाय, कहौं सुनिय नित पाठ हित ।।
चरित गोसाइँ उदार, वरनि सकै नहिं सहस फनि।
हौं मति मन्द गँवार, किमि वरनौं तुलसी सुजस ।।

अंत में यह दोहा है :

सोरह सै सत्तासि सित, नवमी कातिक मास।
विरच्यो यहि निज पाठ हित, वेनीमाधवदास ।।

इसके आगे लेखक का यह वक्तव्य है :

इति श्री वेणीमाधवदास-कृत मूल गोसाईं-चरित समाप्त।

श्रीगूगण्डिल्यगोत्रोत्पन्नपंक्तिपावनत्रिपाठीरामरक्षमणिरामदासेन तदात्मजेन च लिखितम्। मिति विजयादशमी संवत् १८४८ भृगुवासरे।

इससे यह तो प्रकट ही है कि वर्तमान पुस्तक 'मूल गोसाईं-चरित' की नकल

है, जो संवत् १८४८ में की गई थी।

उक्त विद्वान् सम्पादकद्वय ने पृष्ठ २१ पर यह भी लिखा है कि "मूल गोसाईं-चरित से इस बात का संकेत मिलता है, कि गोसाईंजी से वेणी-माधवदास की पहली भेंट संवत् १६०९ और १६१६ के बीच में हुई थी। संभवतः इसी समय वे उनके शिष्य भी हुए हों। × × जिस व्यक्ति का अपने चरितनायक से ६४-७० वर्ष का दीर्घकालीन संपर्क रहा हो, उसके लिखे जीवन-चरित की प्रामाणिकता के विषय में संदेह के लिए बहुत कम अवकाश हो सकता है। यदि यह मूल चरित प्रामाणिक न हो तो, आश्चर्य की बात होगी।"

पर 'मूल-चरित' को अच्छी तरह पढ़ने पर यदि वह प्रामाणिक माना जाय, तो वास्तव में यही आश्चर्य की बात होगी। मैंने मूल चरित को कई बार पढ़ा, मुझे तो कहीं यह आभास नहीं मिला कि तुलसीदास से वेनीमाधवदास की भेंट सम्वत् १६०९ और १६१६ के बीच (में ?) हुई थी। और यह कैसे विदित हुआ कि वे शिष्य भी हुए और शिष्य होने के बाद लगातार ६४ या ७० वर्षो तक साथ भी रहे। ऐसी लचर कल्पनाओं पर इतिहास लिखना ही सबसे बड़े आश्चर्य की बात है।

'मूल गोसाईं-चरित' में वर्णित घटनाओं पर विचार करने के पहले हम उसकी भाषा-सम्पत्ति पर विचार कर लेना चाहते हैं। जिस व्यक्ति ने 'मूल गोसाईं-चरित' की रचना की, भाषा पर तो उसका कुछ भी अधिकार नहीं जान पड़ता। उसमें शब्दों को तो ऐसे बेढंगे तौर पर तोड़ा-मरोड़ा गया है कि 'चरित' के रचयिता की असमर्थता पर दया आती है। रचयिता को न छन्द का ज्ञान था, न व्याकरण का; और न वह तुक ही मिला सकता था। जो व्यक्ति तुलसीदास-जैसे महाकवि के साथ सत्तर वर्षो तक रहता हुआ माना जाय, फिर भी वह चन्दन के वन में एरंड ही बना रहे, तो उसके कथन का प्रमाण ही क्या होगा ?

काव्य-रचना तो तुलसीदास का विषय नहीं था, उसका लाभ तो 'मूल गोसाईं-चरित' के रचयिता को सहज ही में प्राप्त हो सकता था। पर उसे न लेकर वह तुलसीदास की डायरी लिखा करता था, यह कहां तक विश्वसनीय माना जायगा ? हिन्दू साधुओं में कभी डायरी लिखने-लिखवाने की चाल सुनी नहीं गई, फिर बाबा वेनीमाधवदास को यह प्रवृत्ति कैसे हुई।

सन्-सम्वत् तथा दिनों और तिथियों का ठीक उतरना कोई कठिन बात नहीं है। तुलसीदास से भी दो-चार सौ वर्षो पहले की तिथियां और दिन किसी

सम्वत् के साथ ठीक-ठीक जाने जा सकते हैं। और उनकी एक सूची बनाकर किसी सम्वत् के साथ ठीक तिथि और दिन मिलाकर कोई कल्पित कथा पिरो दी जा सकती है।

इस पर इस प्रश्न का हम स्वागत कर सकते हैं कि तब तो कोई भी ग्रन्थ प्रामाणिक नहीं माना जा सकता। इसके उत्तर में हमारा निवेदन है कि तुलसीदास ने 'कवितावली' में रुद्रबीसी और मीन के शनैश्चर का जिक्र किया है, हम उसे सत्य ही समझते हैं, क्योंकि तुलसीदास ने उसे कहा है। किसी ग्रन्थ की प्रामाणिकता उसके रचयिता की योग्यता पर निर्भर होती है, न कि इस बात पर कि वह किसके साथ कै वर्षों तक रहा।

इसमें से बहुतों को मालूम है कि सन् १९३१ में महात्मा गाँधी और सम्राट् से मुलाक़ात हुई थी। मुलाक़ात दस-पन्द्रह मिनटों से अधिक देर तक नहीं हुई थी और उनमें जो बातें हुई थीं, वे भी गिनी-चुनी थीं। पर वे बातें मालूम कितनों को हैं? महात्मा गाँधी के निरन्तर सहवास में रहने वाले भी कितने ही व्यक्ति ऐसे हैं, जो यह नहीं जानते कि क्या-क्या बातें हुईं और ठीक कै मिनटों तक हुईं? पर यदि कल्पना-निपुण तुकबन्द को उक्त मिलन पर कुछ लिखने को दे दिया जाय, तो वह एक लम्बी-सी गाँधी-गीता तैयार कर देगा और फिर गाँधी जी के बाद सौ-दो सौ वर्षों में वही प्रामाणिक माना जाने लगेगा। तब भक्त लोग इस बात का प्रसंग ही न उठने देंगे कि मुलाक़ात कै मिनटों में समाप्त हुई थी, उतनी देर में गाँधी-गीता कही या सुनी जा सकती है, या नहीं?

ठीक यही दशा 'मूल गोसाईं-चरित' के रचयिता की है। एक साधारण तुकबन्द ने ग़ैर जिम्मेदारी के साथ, जो कुछ उसके मग़ज़ में से निकला, या निकलवाया गया, बे-सिर-पैर के पद्यों में निकालकर रख दिया है। हमें उसका कहाँ तक विश्वास करना चाहिए?

'मूल गोसाईं-चरित' की भाषा मुझे तीन सौ वर्ष की पुरानी नहीं मालूम होती। कुछ उदाहरण लीजिए:

> एक दासि कढ़ी तेहि अवसर में।
> कहि देव बुलाहट है घर में॥

हमें इस 'बुलाहट' के 'हट' को देखकर सन्देह हुआ था। क्योंकि 'हट' प्रत्यय-युक्त शब्द जैसे घबराहट, मुसकराहट, चिल्लाहट आदि बहुत प्राचीन नहीं हैं। कम-से-कम मुझे किसी प्राचीन कवि की कविता में अभी तक 'हट' प्रत्यय-युक्त शब्द नहीं मिले। हिन्दू-विश्वविद्यालय के हिन्दी-अध्यापक आचार्य

रामचन्द्र शुक्ल को मैंने पत्र लिखकर और फिर मिलकर भी पूछा। वे भी 'हट' की प्राचीनता नहीं प्रमाणित कर सके।

२१ वें पृष्ठ पर एक छन्द है—

पोथी पाठ समाप्त कैके धरे, सिवलिंग ढिग रात में।
मूरख पंडित सिद्ध तापस जुरे, जब पट खुलेउ प्रात में॥
देखिन तिरपित दृष्टि से सबजने, कीन्ही सही संकरं।
दिव्यापर सो लिख्यो पढ़े धुनि सुने, सत्यं सिवं सुन्दरं॥

इस 'सत्यं सिवं सुन्दरं' ने तो मूल-चरित के रचयिता को अँधेरे में से खींचकर उजाले में लाकर खड़ा कर दिया है। 'सत्यं सिवं सुन्दरं' यद्यपि संस्कृत का वाक्य है, पर अभी थोड़े दिनों से हिन्दी वालों में इसने प्रवेश पाया है। हिन्दी के किसी प्राचीन कवि ने इसका उपयोग नहीं किया था। तुलसीदास ही ने नहीं किया तो उनके एक साधारण पढ़े-लिखे चेले की क्या विसात थी, जो इस वाक्य तक पहुँचा ?

ऊपर शार्दूल-विक्रीड़ित छन्द की छीछालेदर आप देख चुके, अब जरा अन्य छंदों के कुछ और नमूने लीजिये :

सुत जन्म बधाव लग्यो बजने। सजन छजने रजने गजने॥
× × ×
घरि पाँचइ बार चढ़े मुनिया। निज सास के पाँय गही चुनिया॥
× × ×
चरनारि हती तहँ सो परपी। जब माय खवाय ललाट रपी॥
× × ×
जिन जोह जसूस पै आइ जकै। परिचय द्विज नारिन पाइ थकै॥
× × ×
सुठि घाट मनोहर पंच पगा। गंगिया कर कौतुक केलि भगा॥
× × ×
पुनि चारु कुँवरि वरदान दियो। जिन संत सुसेवा लियो रु कियो॥
× × ×
वृन्दावन के हरिबंस हितू। प्रियदास नवल निज सिष्य भृतू॥
× × ×
कवि केसवदास बड़े रसिया। घनस्याम सुकुल नभ के बसिया॥
× × ×
पहुँचे लखनैपुर मोद भरे। अरु धेनुमती तट पै उतरे॥

कहुँ दीनन को प्रतिपाल करैं। कहुँ साधुन के मन मोद भरैं॥
कहुँ लखनलाल को चरित वचै। कहुँ प्रेम मगन ह्वै आपु नचैं॥
कहुँ रामायन कलगान सचैं। उत्साह कोलाहल भूरि मचैं॥

× × ×

निमिसार को विप्र सुधर्म रता। वनखंडि सुनाम विमोह गता।

ये छंद आप ही वतला रहे हैं कि इनके रचयिता की शब्द-सम्पत्ति और काव्य-कला कैसी थी, और महाकवि तुलसीदास का वह कैसा शिष्य था?

अब आइये, 'मूल गोसाईं-चरित' के ऐतिहासिक तथ्यों पर विचार करें।

पृष्ठ २ पर तुलसीदास का जन्म-काल इस प्रकार दिया हुआ है:

पंद्रह सै चौवन विषै, कालिन्दी के तीर।
स्रावन सुक्ला सत्तिमी, तुलसी धरेउ सरीर॥

इसके अनुसार संवत् १६३१ में जब तुलसीदास ने 'रामचरितमानस' लिखना प्रारम्भ किया, तब उनकी आयु ७७ वर्षों की थी। यदि 'रामचरित-मानस' का रचना-काल सं० १६३१ उसमें न दिया होता, तो हमें तुलसीदास का जन्म १५५४ ही नहीं, दस-पाँच वर्ष और भी पहले मान लेने में शायद आपत्ति न होती। क्योंकि संयमी पुरुषों का सौ-सवा सौ वर्षों तक जीवित रहना असंभव नहीं है। पर ७७ वर्ष की आयु में 'रामचरितमानस'-जैसे महा-काव्य का प्रारम्भ करना असम्भव-सा दिखता है। जिस राम-कथा को तुलसी-दास ने बालपन से लेकर युवावस्था तक गुरु-मुख से कई बार सुना था, उसे वे ७७ वर्षों तक मन में लिये बैठे रहे, यह बात कवि-स्वभाव के अनुकूल नहीं जान पड़ती। अतएव यह जन्म-संवत् सत्य नहीं जान पड़ता।

'मूल-गोसाईं चरित' में, संवत् १६०९ में, जब तुलसीदास चित्रकूट में थे, हितहरिवंशजी के सम्बन्ध में यह उल्लेख है:

वृन्दावन ते हरिवंस हितू। प्रियदास नवल निज सिष्य भृतू।

× × ×

जमुनाष्टक राधा सुधानिधिजू। अरु राधिकातन्त्र महाविधिजू॥
अरु पाति दई हित हाथ लिखी। सोरह सै नव जन्माष्टमि की॥
तेहि माँहि लिखी विनती बहुरी। सोइ बात मुखागर सो कहु री॥
रजनी महरास की आवत जू। चित चोर सदय ललचावत जू॥
रसिकै रस मों तन त्याग चहौ। मोहि आसिष देइअ कुन्ज लहौं॥
मुनि विनती मुनिनाथ, एवमस्तु इति भाषेउ।
तनु तजि भये सनाथ, नित्य निकुंज प्रवेस करि॥

हितहरिवंश का जन्म वैसाख वदी ११, सं० १५३० में हुआ था । संवत् १६०६ में वे ७६ वर्ष की आयु के थे। ऊपर के वर्णन से मालूम होता है कि इसी आयु में उन्होंने तुलसीदास से आज्ञा लेकर शरीर-त्याग किया। पहले तो यही विचाराधीन है कि उन्होंने तुलसीदास का आशीर्वाद लेकर महारास के दिन नित्य-निकुञ्ज में इस लोक की लीला समाप्त करने का विचार क्यों किया ? हित जी तो अनन्य राधावल्लभीय सम्प्रदाय के संस्थापक थे । अन्त समय में वे अपने इष्टदेव का ध्यान न करके वृन्दावन से कई सौ मील दूर बैठे हुए तुलसीदास से आशीर्वाद लेकर शरीर छोड़ने को उत्सुक क्यों हुए ? और उन्होंने सं० १६०६ में शरीर छोड़ा भी तो नहीं। संवत् १६२२ तक उनके जीवित रहने का प्रमाण मिलता है । अपने 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' में पंडित रामचन्द्र शुक्ल लिखते हैं—'ओरछा-नरेश महाराज मधुकरशाह के राजगुरु श्री हरिराम व्यास जी १६२२ वि० के लगभग आपके शिष्य हुए थे, (पृष्ठ १७७) ।' हाँ, मिश्रबन्धुओं ने अपने 'विनोद' में अवश्य लिखा है कि 'स्वामी हितहरिवंश जी की जीवन-यात्रा प्रायः ७६ वर्ष की अवस्था में समाप्त हुई ।' जो ठीक सं० १६०६ में पड़ती है। तो क्या 'मूल गोसाईं-चरित' में 'विनोद' की आत्मा बोल रही है ?

'मूल गोसाईं-चरित' के पृष्ठ १५ पर सूरदास के सम्बन्ध में यह उल्लेख है :

सोरह सै सोरह लगै, कामद गिरि ढिग बास ।
सुचि एकांत प्रदेस महँ, आये सूर सुदास ॥
पठये गोकुलनाथजी, कृष्ण रंग महँ बोरि ।
दृग फेरत चित चातुरी, लीन्ह गोसाईं छोरि ॥

× × ×

कवि सूर दिखायउ सागर को । सुचि प्रेम-कथा नटनागर को ।

× × ×

दिन सात रहे सतसंग पगै । पदकंज गहे जब जान लगै ॥

इससे प्रकट है कि सूरदास संवत् १६१६ में तुलसीदास से मिलने के लिए चित्रकूट आये थे और उन्होंने उन्हें अपना 'सूरसागर' दिखलाया भी था। अभी तक सूरदास का समय १५४० से १६२० तक माना जाता है । यह आश्चर्य की बात है कि 'मूल गोसाईं-चरित' के रचयिता ने व्रजभाषा के कट्टर कृष्णोपासक कवियों को उनकी आयु के अन्तिम दिनों में दौड़ा-दौड़ाकर सैकड़ों मील दूर लाकर तुलसीदास के चरणों पर गिराया है। माना तो यह जाता है कि सूरदास अन्तिम दम तक व्रजमण्डल से नहीं टले। और ८ वर्ष के गोकुल-

नाथ जी ने ७६ वर्ष के वृद्ध सूरदास को 'कृष्ण रंग में वोरि' तुलसीदास के पास भेजा, यह तो और भी असंगत जँचता है।

वह गोस्वामी विट्ठलनाथ जी का समय था, न कि गोकुलनाथ जी का। विट्ठलनाथ जी का जन्म सं० १५७२ में और अन्त सं० १६४३ में हुआ, और गोकुलनाथ जी का जन्म और मरण सं० १६०८ और १६६० में माना जाता है।

'मूल गोसाईं-चरित' के उसी पृष्ठ पर मीराबाई के सम्बन्ध में यह छपा हुआ मिलता है :

तब आयो मेवाड़ तें, विप्र नाम सुखपाल।
मीराबाई-पत्रिका, लायो प्रेम प्रवाल॥

इससे यह अर्थ निकलता है कि सं० १६१६ में मीराबाई ने तुलसीदास के पास सुखपाल ब्राह्मण के हाथ पत्र भेजा था। मीराबाई का विवाह सं० १५७३ में हुआ था और राजपूताने के ऐतिहासिकों ने यह निश्चयपूर्वक निर्णय कर दिया है कि मीराबाई का देहान्त सं० १६०३ में हुआ था, तब उनका सं० १६१६ में तुलसीदास को पत्र लिखना कैसे सम्भव हो सकता है ?

'मूल गोसाईं-चरित' के पृष्ठ २० पर यह छपा हुआ मिलता है :

स्वामी नंद सुलाल को सिष्य पुनी। तिसु नाम दयाल सुदास गुनी।
लिपि कै सोइ पोथि स्वठाम गयो। गुरु के ढिग जाय सुनाय दयो।
जमुना तट पै तय बत्सर लौं। रसखानहिं जाइ सुनावत भो।

इससे ज्ञात होता है रसखान ने लगातार तीन वर्षों तक यमुना-तट पर किसी दयालदास से 'मानस' सुना। पर रसखान की जीवनी से यह विदित है कि वे सं० १६४० के आस-पास गोस्वामी विट्ठलनाथ के शिष्य हुए थे। शिष्य होने के पहले वे एक साहूकार के लड़के पर आशिक थे और उसके साथ-साथ घूमा करते थे। सं० १६७१ में उन्होंने 'प्रेम वाटिका' की रचना की थी। सं० १६३४ से १६३७ तक वे 'मानस' के प्रेमी रहे होंगे या अपने माशूक के ? यह विचार करने की बात है। उस समय तो वे यौवन के उन्माद में ग्रस्त थे। और उनका प्रेम-परिवर्तन पहले-पहल कृष्ण के लिए हुआ, न कि राम के लिए। अतएव 'मूल गोसाईं-चरित' के रचयिता की यह बात भी असत्य जान पड़ती है :

कवि केसवदास बड़े रसिया। घनस्याम सुकुल नभ के बसिया॥
कवि जानि के दरसन हेतु गये। रहि बाहर सूचन भेजि दिये॥
सुनि कै जु गोसाईं कहै इतनो। कवि प्राकृत केसव आवन दो॥

फिरिगे झट केसव सों सुनि कै। निज तुच्छता आपुइ ते गनि कै॥
जब सेवक टेरेउ गे कहि कै। हौं भेंटिहौं काल्हि विनय गहि कै॥

× × ×

रचि राम सुचन्द्रिका रातहि में। जुरे केसवजू असि घाटहि में॥
सतसंग जमी रसरंग मची। दोउ प्राकृत दिव्य विभूति खची॥

× × ×

सो०—उड़छे केसवदास, प्रेत हतौ घेरेउ मुनिहिं।
उधरे तिनहिं प्रयास, चढ़ि बिमान स्वरगहि गयौ॥

इस उद्धरण से मालूम होता है कि केशवदास ने एक रात में 'रामचन्द्रिका' रच डाली थी। यह घटना 'मूल गोसाईं-चरित' के अनुसार सं० १६४३ के आस-पास की है। पर केशवदास तो स्वयं अपनी 'रामचन्द्रिका' की रचना का यह समय देते हैं :

दो०—सोरह सै अट्ठावनै, कातिक सुदि बुधवार।
रामचंद्र की चंद्रिका, तब लीन्हों अवतार॥

अतएव बेनीमाधवदास का कथन तो बिलकुल ही असत्य है। और सोरठे में जो केशवदास के प्रेतोद्धार की कथा है, वह भी भ्रमात्मक है। बेनीमाधवदास के कथनानुसार यह घटना सं० १६५० के लगभग की है। पर केशवदास ने तो सं० १६५८ में 'कविप्रिया' और 'रामचन्द्रिका' १६६४ में 'वीरसिंह देवचरित' १६६७ में 'विज्ञान गीता' और १६६९ में 'जहाँगीर-जस-चन्द्रिका' की रचना की थी। वे प्रेत हुए होंगे, तो सं० १६६९ के बाद ही कभी हुए होंगे।

'मूल गोसाईं-चरित' के अनुसार सं० १६५१ के आस-पास तुलसीदास 'दिल्लीपति' से मिले थे :

तहँ ते पँचये दिन मुनी, पहुँचे दिल्ली जाय।
खबरि पाय तुरतहिं नृपति, लिय दरबार बुलाय॥
दिल्लीपति बिनती करी, दिखरावहु करमात।
मुकरि गये बंदी किये, कीन्हे कपि उतपात॥
बेगम को पट फारेऊ, नगन भईं सब बाम।
हाहाकार मच्यो महल, पटको नृपहिं धड़ाम॥

पर यह 'दिल्लीपति' कौन था ? इतिहास से प्रकट है कि अकबर ने सं० १६६२ तक राज्य किया था। बेनीमाधवदास के कथनानुसार यदि तुलसीदास की भेंट दिल्लीपति (अकबर) से हुई होती, तो उसका उल्लेख अवश्य 'आईने अकबरी' में होता। पर आश्चर्य की बात है कि अबुलफ़ज़ल ने 'आईने अकबरी'

में अकबर से तुलसीदास के मिलने की कौन कहे, उस समय तुलसीदास की विद्यमानता का भी कहीं उल्लेख नहीं किया है। अतएव यह प्रसंग भी वेनी-माधवदास की कपोल-कल्पना जान पड़ता है।

वेनीमाधवदास ने सं० १६७० में काशी में जहाँगीर का आना लिखा है :

जहाँगीर आयो तहाँ, सत्तर सम्वत् बीत।
धन धरती दीबो चहै, गहे न मुनि विपरीत॥

पर जहाँगीर के इतिहास में प्रामाणिकता के साथ यह विदित है कि सन् १६१३ (सं० १६७०) में वह आगरा में था और उसने खुर्रम को मेवाड़-विजय के लिए भेजा था, और उसी सन् में मेवाड़ के राणा अमरसिंह ने उसकी अधीनता स्वीकार की थी। जहाँगीर सं० १६६९ से १६७३ तक दक्षिण और राजपूताने ही के युद्धों में लगा रहा। वह इस अवसर में पूर्व की ओर तो आया ही नहीं। ६ मार्च, सन् १६१७ में उसने दक्षिण पर चढ़ाई की थी।

इस प्रकार 'मूल गोसाईं-चरित' हमें भ्रमपूर्ण और असत्य बातों से भरा मिलता है। हम उसे तुलसीदास के जीवन-चरित के लिए बिलकुल ही विश्वास के योग्य नहीं मानते। वह किसी अनधिकारी व्यक्ति का लिखा हुआ जान पड़ता है। सम्भव है, उसका उत्पत्ति-स्थान कनक-भवन (अयोध्या) ही हो।

४

जीवनी का मूल आधार

तुलसीदास के जीवन-चरित से सम्बन्ध रखने वाले जितने प्राचीन प्रमाण उपलब्ध हैं, प्राय: वे सब ऊपर आ गए हैं। तुलसीदास के इधर के चरित-लेखकों में कोई ऐसा नहीं दिखाई पड़ता, जो ग्रियर्सन साहब की सीमा को पार करके आया हो। हम तो देख रहे हैं कि गत पचास वर्षों से ग्रियर्सन साहब ही तुलसीदास के चरित-लेखकों का मार्ग-प्रदर्शन कर रहे हैं। अतएव उन सब चरित-लेखकों को ग्रियर्सन साहब ही के अन्तर्गत समझना होगा।

तुलसीदास के जीवन-चरित-सम्बन्धी दो पद्य-पुस्तकों—'तुलसी-चरित' और 'मूल गोसाई-चरित' की समीक्षा ऊपर कुछ विस्तार के साथ की जा चुकी है। यद्यपि उनमें संवत्, तिथियाँ, दिन और प्रसिद्ध पुरुषों और स्थानों के नाम सभी कुछ हैं; पर उनमें वह सत्य नहीं निकला, जिसे इतिहास चाहता है। इससे हमें उनसे कुछ प्रकाश पाने की आशा त्याग ही देनी पड़ी।

अब अतीत के अन्धकार में हमें कोई प्रकाश की रेखा दिखाई पड़ती है, तो वह है, 'दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता'। मुझे आश्चर्य है कि तुलसीदास के चरित-लेखकों ने अब तक 'वार्ता' की ऐसी उपेक्षा की। इसे हम उनकी विचार-परतन्त्रता के सिवा और क्या कहें? ग्रियर्सन साहब ने अपनी खोज के अनुसार जो कुछ निर्धारित कर दिया था, उसका समर्थन ही बाद के चरित-लेखकों का धर्म-सा हो गया है। यदि किसी को कभी 'वार्ता' की पीड़ा कुछ उठी, तो उसने यह कहकर उसे टाल दिया कि वह सत्य नहीं है। उसमें के तुलसीदास कोई और होंगे। पर ये तो टाल-मटोल की बातें हैं। ऐसी मनोवृत्ति के साथ कोई जीवन-चरित या इतिहास लिखा जायगा, तो सत्य-निर्णय की जिज्ञासा तो बनी ही रहेगी।

तुलसीदास के जन्म-स्थान की खोज

तुलसीदास के जितने जीवन-चरित अब तक प्रकाशित हो चुके हैं, करीब-करीब सबके पढ़ने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ है। किसी ने राजापुर (बांदा) को, किसी ने तारी को, किसी ने हाजीपुर (चित्रकूट) को और किसी ने

हस्तिनापुर को तुलसीदास का जन्म-स्थान माना है। पर किसी ने इस शंका का समाधान नहीं किया कि तुलसीदास जब बहुत बालक और 'अति अचेत' थे, तब वे सूकरखेत कैसे पहुँच गए? यदि यह भी मान लिया जाय कि वे मँगते के लड़के थे; घर से भीख माँगते हुए उधर निकल गए होंगे, तो इस प्रश्न का हल हो जाना तो और भी कठिन हो जायगा कि काशी और प्रयाग-जैसे निकट-वर्ती शहरों की अपेक्षा सूकर खेत में उनके लिए कौन सा विशेष आकर्षण था? सूकर खेत तो मँगतों का कोई खास अड्डा नहीं; और सो भी राजापुर या तारी-जैसे गाँव वालों के लिए, जो शायद सूकर खेत का नाम भी नहीं सुने होंगे।

बहुत दिनों से मेरे मन में इस बात की शंका उठ रही थी कि संभव है, तुलसीदास का जन्म-स्थान सूकरखेत ही हो। इससे वहाँ चलकर पता लगाना चाहिए। संयोग से कुछ वर्ष पहले टीकमगढ़ से 'बुन्देल-वैभव' नाम की एक पुस्तक प्रकाशित हुई। उसमें भी तुलसीदास के जन्म-स्थान को 'वार्ता' के आधार पर प्रमाणित करने का प्रयत्न किया गया देखकर मेरी धारणा को और भी प्रोत्साहन मिला और मैं तुलसीदास की जीवनी की खोज में शीघ्र प्रवृत्त हुआ।

अक्तूबर, १९३५ के पहले सप्ताह में मैं खोज के लिए घर से निकल ही पड़ा। भिन्न-भिन्न स्थानों में होता हुआ ता० २० अक्तूबर को मैं सोरों पहुँचा।

सोरों जाकर मुझे निश्चय हो गया है कि तुलसीदास का जन्म-स्थान सोरों ही है। वहीं उन्होंने पहले-पहल बाल्यावस्था में गुरु-मुख से राम-कथा सुनी थी। सोरों में मैं कई विद्वानों से मिला, जिनमें विद्वद्वर पंडित गंगावल्लभ पांडेय, व्याकरणाचार्य, काव्यतीर्थ, न्यायशास्त्री, वैद्यराज, प्रिंसिपल मेहता-संस्कृत-विद्यालय और पंडित गोविन्दवल्लभ शास्त्री मुख्य हैं। सबने तुलसीदास का जन्म-स्थान सोरों ही बताया। मैंने राह चलते हुए साधारण व्यक्तियों से भी पूछ-ताछ की, जिनमें हिन्दू और मुसलमान दोनों थे, सबने ऊपर ही की बात का समर्थन किया। ऐसा उन्होंने इस लोभ से नहीं किया कि तुलसीदास-जैसे अमर कवि का जन्म-स्थान होने से उनके सोरों की महिमा बढ़ जायगी; इस रहस्य को तो वे बेचारे समझते भी नहीं; बल्कि वहाँ तो आम तौर से यह बात सबको विदित है कि यह तुलसीदास का घर है, यह उनकी ससुराल है और यहाँ से वे गंगा पार करके सावन की रात में ससुराल गये थे।

मुझे सोरों के योगमार्ग मुहल्ले में वह स्थान दिखलाया गया, जहाँ तुलसीदास का घर था। वह इस समय एक कसाई के अधिकार में है। और कसाई ने उसके चारों ओर नये कमरे बनवाकर उसे भीतर कर लिया है।

फिर भी कर्णमूल रोग पर लेप करने के लिए उस मकान की मिट्टी लेने को लोग जाते ही आते रहते हैं।

जान पड़ता है, तुलसीदास का घर शुरू ही से कसाइयों के मुहल्ले में पड़ गया था। वहाँ इस प्रकार के कई दोहे सुनने को मिले और एक तो मुझे पहले ही से याद भी था; पर मैं 'गलकटियों' को काम, क्रोध आदि समझता रहा। सोरों जाने पर यह रहस्य खुला कि वे 'गलकटिये' वास्तव में कसाई थे। दोहा यह है :

तुलसी तेरी झोंपड़ी, गलकटियों के पास।
जौन करै सोई भरै, तू कत होत उदास॥

तुलसीदास के गुरु नरसिंहजी

सोरों में तुलसीदास के विद्या-गुरु नरसिंहजी नाम के एक विद्वान् थे। वहाँ उनका एक मन्दिर भी है। वह 'नरसिंहजी का मन्दिर' के नाम से प्रसिद्ध है। मैंने उसे देखा; उसके बाहरी दालान को छोड़कर भीतर का असली मन्दिर बहुत पुराना है, इसमें सन्देह नहीं। कहा जाता है, पहले उस मन्दिर में हनुमानजी की मूर्ति थी; क्योंकि नरसिंहजी हनुमानजी के उपासक थे; पर कुछ वर्ष हुए, उनके किसी कुटुम्बी ने हनुमानजी की मूर्ति वहाँ से निकालकर बाहर एक ताक में जड़ दी और उस स्थान पर पीतल की एक मूर्ति रख दी है, जो किसी अन्य देवता की है। मन्दिर के सामने अहाते के कोने पर बरगद का एक वृक्ष है, जो तुलसीदास के समय के किसी बड़े वट-वृक्ष की जटा से उत्पन्न हुआ कहा जाता है। मन्दिर के सामने जो रास्ता है, उसके एक कोने पर एक प्राचीन कुआ है, जो नरसिंहजी का कुआ कहलाता है। तुलसीदास ने 'कृपासिंधु नर रूप हरि' में इन्हीं नरसिंह की ओर संकेत किया है।

तुलसीदास की ससुराल

सोरों के पास ही एक फर्लाङ्ग की दूरी पर बदरिया नाम का एक छोटा-सा गाँव है, जिसमें तुलसीदास की ससुराल थी। ससुराल वाला मकान, जो मुझे दिखाया गया, अब एक मन्दिर के रूप में है। सोरों और बदरिया के बीच में किसी समय गंगाजी की एक धारा बहती थी। सरकार ने गंगा की मुख्य धारा के पास नहर के लिए बाँध बँधवा दिया, इससे सोरों आने वाली धारा का मुख बन्द हो गया; पर अब भी कई फर्लाङ्ग लम्बा, नदी के आकार का एक तालाब वहाँ पर विद्यमान है, जो बरसात में दोनों ओर गंगाजी से जुड़ जाया करता है। अब भी उसमें काफ़ी जल है। अब तो उस तालाब पर पुल बन गया है, पर तुलसीदास के समय में सम्भव है, नाव ही से सोरों और

बदरिया के बीच आवागमन होता रहा हो। वहाँ जाने पर यह बात तत्काल ध्यान में आती है कि तुलसीदास गंगा की इसी धारा को पार करके अपनी ससुराल गए होंगे।

सोरों का ऐतिहासिक महत्त्व

सोरों, जिसका शुद्ध नाम शूकर क्षेत्र है, एटा जिले में एक कस्बा और तीर्थ-स्थान है। यह अत्यन्त प्राचीन स्थान है। नवीं सदी में वहाँ सोलङ्की वंश का सोमदत्त नाम का एक बड़ा प्रतापी राजा राज करता था। उसके चिह्न वहाँ अब तक मिलते हैं। सोरों के आस-पास कुछ टीले है, जिनके अन्दर पत्थर के पुराने मकान ढके पड़े हैं। खोदने पर समूचे-के-समूचे मकान मिलते हैं। एक टीले पर एक मकान अभी तक खड़ा है। मैंने उसे अन्दर जाकर देखा। उसके खम्भों पर बारहवीं और तेरहवीं सदी के अनेक शिला-लेख है।

एक शूकर क्षेत्र गोंडा जिले में सरयू और घाघरा के संगम पर है; कुछ चरित-लेखक उसी को तुलसीदास के गुरु का स्थान मानते हैं; पर प्राचीन शूकर क्षेत्र सोरों ही है, क्योंकि वही गंगा-तट पर है।

सोरों में सनाढ्य ब्राह्मणों ही की बस्ती अधिक है। पर सनाढ्य वहाँ के मूल निवासी नहीं है, सब बाहर से आकर वहाँ बस गए हैं। वे अब तक अपने मूल स्थान का नाम अपने नाम के साथ रखते आ रहे है। जैसे बड़े गाँव से आने वाले बड़गैयाँ, लखनपुर से लखनपुरिया और राजोर से राजोरिया इत्यादि।

तुलसीदास के समय में सोरों में गोसाइयों के मठ बहुत थे। वे सब शैव थे। केवल नरसिंहजी वैष्णव थे। सनाढ्यों में ब्राह्मण भी सिंह शब्द अपने नाम के साथ लगाते है। जैसे, हिन्दी वालों के सुपरिचित पण्डित अयोध्यासिंह उपाध्याय सनाढ्य थे। कहा जाता है कि नरसिंहजी स्मार्त वैष्णव थे और अच्छे विद्वान् थे।

सोरों में तुलसीदास के एक कुटुम्बी पंडित मुरारी शुक्ल हैं, जो इस समय मेहता लाइब्रेरी के लाइब्रेरियन है।

अन्य प्रमाण

मैं समझता हूँ, तुलसीदास का जन्म-स्थान सोरों प्रमाणित करने के लिए ये प्रमाण कमज़ोर नहीं हैं। इनके सिवा तुलसीदास के ग्रन्थों में भी हम सोरों की झलक पा सकते हैं।

तुलसीदास ने 'कवितावली', 'गीतावली', 'दोहावली' और 'विनय-पत्रिका' में बहुत से ऐसे शब्दों और मुहावरों का प्रयोग किया है, जो सोरों में आम तौर

से प्रचलित हैं, पर राजापुर और तारी में वे उस अर्थ में प्रचलित नहीं हैं। जैसे :

तायो -

स्रवन नयन मन मग लगे सब थलपति तायो।

(विनय-पत्रिका)

'तायो' का अर्थ है, जांचा। यह सोरों में अब भी बोल-चाल में आता है। पर राजापुर में तोपने, ढँकने या गरम करने के अर्थ में व्यवहृत होता है।

ओर को—

हौं तो बिगरायल ओर को।

(विनय-पत्रिका)

'ओर को' का अर्थ सोरों में है, अन्त का। पर राजापुर और उसके आस-पास 'ओर' का अर्थ है, 'आदि'। जैसे, ओर-छोर।

चकडोरि—

खेलत अवध खोरि, गोली भँवरा चकडोरि।

(गीतावली)

ब्रज और उसके आस-पास के जिलों में भौंरा और चकडोरी खेलने का रिवाज बहुत है। लड़के बाजी लगाकर यह खेल खेलते हैं। पर अयोध्या, बनारस और राजापुर में इस खेल का प्रचार शायद ही है। सोरों में इसका बड़ा प्रचार है। इससे तो और भी प्रमाणित होता है कि तुलसीदास का जन्म ऐसे स्थान में हुआ था, जहाँ भौंरा और चकडोरी खेलने का बड़ा रिवाज था।

सोरों में प्रचलित एक और शब्द भी तुलसीदास को सोरों ही का प्रमाणित करता है। वह है, 'कुटिल कीट' :

तनु जनेउ कुटिल कीट ज्यों तज्यो मातु पिताहू।

सोरों में केकड़े की जाति का एक कीट होता है, जिसे वहाँ लोग कुटीला कहते हैं। उसकी यह विशेषता है कि वह माँ के पेट को फाड़कर निकलता है। उसके जन्म लेते ही उसकी माँ मर जाती है। ठीक ऐसी घटना तुलसीदास के सम्बन्ध में भी हुई जान पड़ती है। उनके जन्म के समय ही उनकी माता का देहान्त हो गया होगा।

तुलसीदास की कविता का अनुशीलन सोरों में बैठकर करने से ऐसे और बहुत से शब्द उसमें मिलेंगे, जो तुलसीदास को सोरों ही का बतायेंगे।

तुलसीदास ने व्रजभाषा और अवधी-मिश्रित भाषा में सफलता के साथ

रचना की है, यह भी उनके व्रज और अवध की सरहद पर होने का प्रबल प्रमाण है :

तुलसीदास का एक अन्य प्रयोग भी हमारा ध्यान सोरों की ओर खींचता है :

स्वारथ के साथिन्ह तज्यो तिजरा को सो टोटक औचट उलटि न हेरो।

(विनय-पत्रिका)

अर्थात् स्वार्थ के साथियों ने तिजरा के टोटके की तरह मुझे छोड़ दिया, उन्होंने एक बार लौटकर देखा भी नहीं।

'विनय-पत्रिका' के टीकाकारों ने तिजरा का अर्थ तिजारी (ज्वर) किया है। पर सोरों में तिजरा पसली चलने के रोग को कहते है। इस रोग में आटे का एक पुतला बनाकर, चौराहे पर डालकर, लोग चले जाते है और फिरकर उसे नहीं देखते।

सोरों व्रज, राजपूताना, पंजाब, काठियावाड़ और गुजरात-निवासियों का मुख्य तीर्थ-स्थान है। उन प्रान्तों के लोग गङ्गाजी में अपने मृतकों की अस्थियाँ डालने के लिए सोरों में लाते हैं। वहाँ हर साल एक बड़ा मेला लगता है, जिसमें उपर्युक्त प्रान्तों ही के लोग अधिक संख्या में एकत्र होते हैं। इससे सोरों की बोल-चाल में उपर्युक्त प्रान्तों के बहुत-से शब्द स्वभावतः भर गए हैं। तुलसीदास के काव्यों में उन शब्दों का हम ऐसा स्वाभाविक प्रयोग पाते है, जैसे वे तुलसीदास के अत्यन्त परिचित शब्द थे, और उन्होंने जान-बूझकर अपनी बहुज्ञता दिखलाने के लिए उन्हें वहाँ नहीं बैठा दिया था। उदाहरण लीजिये :

माय जायो—

तोसे माय जायो को।

(विनय-पत्रिका)

'तेरे-जैसा माँ से उत्पन्न और कौन है ?'

यह शब्द व्रज और मारवाड़ में आम तौर से प्रचलित है। पर राजापुर में यह इसी रूप में नहीं बोला जाता।

मींजो—

मींजो गुरु पीठ।

(विनय-पत्रिका)

'गुरु ने पीठ पर हाथ फेरा।'

मींजो का अर्थ हाथ फेरना सोरों और उसके आस-पास ही प्रचलित है,

अवध या राजापुर में नहीं।

मैन—

मैन के दसन कुलिस के मोदक।

(श्रीकृष्ण-गीतावली)

मैन (मैण) मारवाड़ी बोली में मोम को कहते हैं।

मोखे—

नयन बीस मन्दिर के मोखे।

(गीतावली)

'बीस नेत्र घर के झरोखे (गवाक्ष) की तरह'। मोखा शब्द मारवाड़ में व्यवहृत होता है।

माठ—

पिघले हैं आँच माठ मानो घिय के।

(गीतावली)

माठ मारवाड़ी शब्द है और घड़े के अर्थ में व्यवहृत होता है।

मौंगी—

मौंगी रहि समुझि प्रेमपथ न्यारो।

(गीतावली)

मौंगी का अर्थ है चुप। यह ठेठ गुजराती शब्द है।

मूकी—

मन मानि गलानि कुबानि न मूकी।

मूकी शब्द ठेठ गुजराती है और छोड़ने के अर्थ में प्रयुक्त होता है।

बियो—

कहाँ रघुबीर सो बीर बियो है।

(कवितावली)

बियो गुजराती बीजा शब्द का अपभ्रंश है, जिसका अर्थ है, दूसरा।

म्हाको—

मन्दमति कंत सुन मन्त म्हाको।

(कवितावली)

म्हाको मारवाड़ी शब्द है, जिसका अर्थ है, मेरा या मुझको।

दारू—

काल तोपची तुपक महि, दारू अनय कराल।

(दोहावली)

दारू मारवाड़ी में बारूद को कहते हैं।

नारि, नार—

जियत न नाई नारि, चातक घन तजि दूसरहि।

(दोहावली)

नाड़ शब्द मारवाड़ी है, जिसका अर्थ है, गरदन। नार या नारि नाड़ का अपभ्रंश है।

इसी प्रकार के और भी बहुत से शब्द आये हैं, जो सोरों और उसके पश्चिमी प्रांतों के हैं। इन शब्दों को तुलसीदास ने जान-बूझकर पूर्वी हिन्दी में रख लिया है, इसका कोई कारण नहीं जान पड़ता। बल्कि यह अधिक युक्ति-संगत जान पड़ता है कि ये उनके घरू शब्द थे, जो उनकी विचार-धारा में आप-से-आप निकल पड़े थे।

तुलसीदास ने अपनी कविता में अरबी-फारसी के शब्दों का भी मनमाना प्रयोग किया है। यह भी उनके पश्चिम-प्रान्त-निवासी होने का प्रमाण माना जा सकता है। सोरों और उसके आस-पास के जिलों में मुसलमानों की बस्तियाँ बहुत हैं। इसी से अरबी-आरसी के जितने शब्द पश्चिमी हिन्दी में मिलते हैं, उतने पूर्वी हिन्दी में नहीं। तुलसीदास तत्कालीन राज-भाषा जानते थे और अरबी-फारसी के बहुत से शब्द उनके घर में ऐसा घर कर गए थे कि उनके प्रयोग में उनको कुछ भी हिचकिचाहट नहीं थी। जैसे :

लागती साँग विभीषण ही पर सीपर आप भये हैं।

(गीतावली)

'सीपर' फारसी का 'सिपर' है, जिसका अर्थ है, ढाल। यह तो स्पष्ट ही है कि 'ही पर' (हृदय पर) का अनुप्रास मिलाने के लिए ही 'सीपर' आया है। पर आया है कितनी आसानी से, यह ध्यान देने की बात है। तुलसीदास न म्लेच्छों के हिमायती थे, न म्लेच्छ भाषा के प्रेमी। यदि 'सीपर' शब्द उनकी बोल-चाल में आम तौर से प्रचलित न होता, तो फारसी-कोष में से निकालकर वे इस शब्द को राम के साथ प्रयोग करने की चेष्टा हरगिज न करते।

एक शब्द और लीजिये :

भई आस सिथिल जगन्निवास दील की।

× × ×

में विभीषन की कछु न सबील की।

(कवितावली)

दिल (दील) और सबील शब्दों को देखिये, किस स्वाभाविक प्रवाह में

जड़ दिये गए हैं। राम के मुख से तुलसीदास-जैसे वैष्णव साधु का यह कहलाना कि 'मैंने विभीषण की कुछ सबील (प्रबन्ध) नहीं की', साधारण महत्त्व नहीं रखता। यदि 'सबील' और 'दिल' उनकी रोजमर्रा की बोल-चाल के शब्द न होते, तो मेरा विश्वास है, वे कम-से-कम राम के मुख में तो उन्हें न जाने देते।

अब एक मुहावरा लीजिये :

वालिस वासी अवध को बूझिये न खाको।

(विनय-पत्रिका)

यह मुहावरा न संस्कृत का है, न हिन्दी का, यह तो साफ-साफ फारसी का है।

'रामचरितमानस' में तो अरबी, फारसी शब्दों का एक तांता-सा लगा हुआ है। जहान, गरीब नेवाज़, बख़शीश, रुख, गरदन, ख्वार, शोर, गुमान, हवाले आदि शब्दों का प्रयोग इस बात का द्योतक है कि वे पश्चिमी प्रान्त के निवासी थे, जहाँ अरबी-फारसी के शब्द हिन्दुओं के घरों में निधड़क चलते थे। उनके साथ छुआछूत का विचार नहीं रखा जाता था। तुलसीदास की कविता में अरबी-फारसी के कितने शब्द आए हैं, इस पर हम अलग विचार करेंगे। यहाँ केवल संकेत-मात्र कर दिया है।

अपने अनुमान को अधिक सबल करने के लिए यहाँ विरोधी पक्ष की इस बात पर भी हमें विचार कर लेना चाहिए कि तुलसीदास ने पूर्वी प्रान्तों में प्रचलित बहुत से घरेलू शब्दों और प्रथाओं का जिक्र भी तो किया है, फिर उन्हें पूर्वी ही प्रान्त में उत्पन्न हुआ क्यों न मान लें। यह प्रश्न उपेक्षणीय नहीं है। पर यह तो स्पष्ट है कि उन्होंने पूर्वी हिन्दी में 'रामचरितमानस' लिखा। वे जीवन के अन्त समय तक रहे भी इसी तरफ। अतएव इधर के घरेलू शब्द उनकी भाषा में आ गए, यह आश्चर्य की बात नहीं। पर अरबी-फारसी के शब्द उन्होंने पूर्वी हिन्दी से नहीं चुने, यह हम सन्देह-रहित होकर कह सकते हैं। क्योंकि यदि अरबी-फारसी के शब्द उसकी मातृभाषा द्वारा उनको न मिले होते तो वे कदापि म्लेच्छ शब्दों को देवताओं के पवित्र मुख में रखने की धृष्टता न करते। आजकल हिन्दी के कवि, जो भक्त नहीं हैं, बहुत अंशों में उच्छृङ्खल हो हैं, अपनी रचना में अरबी-फारसी के शब्दों को रखने में भड़कते हैं। तुलसीदास तो भक्त थे और हिन्दू-संस्कृति के प्रबल समर्थक भी। अरबी-फारसी के शब्दों से उनकी भड़क साधारण न होती।

अब हम 'दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता' की ओर फिर मुड़ते हैं। 'वार्ता'

में तुलसीदास को नन्ददास का बड़ा भाई बताया गया है और नन्ददास को सनौड़िया ब्राह्मण। सनौड़िया सनाढ्य ही का अपभ्रंश हो सकता है। क्योंकि ब्राह्मणों की कोई जाति उक्त शब्द के निकट नहीं पहुँचती। अतएव तुलसीदास को भी सनाढ्य मानना पड़ेगा। 'वार्ता' में नन्ददास रामपुर ग्राम के निवासी माने गए हैं। रामपुर सोरों के निकट एक गाँव था। नन्ददास के पिता का जन्म उसी गाँव में हुआ था। वे किसी कारणवश वहाँ से उठकर सोरों के योगमार्ग मुहल्ले में आबाद हो गए थे।

तुलसीदास के जो चरित-लेखक राजापुर या तारी को तुलसीदास का जन्म-स्थान मानते हैं, उनको ऊपर के वर्णन पर एक बार विचार कर लेना चाहिए। अब भी राजापुर और उसके आस-पास के गाँवों में बहुत से वृद्ध ऐसे मिलते हैं, जो राजापुर को तुलसीदास का जन्म-स्थान नहीं मानते। वे कहते हैं कि तुलसीदास कुछ दिनों तक वहाँ आकर रहे थे। किसी विशेष स्थान पर जाकर कुछ दिनों तक रहना और वहीं जन्म-स्थान होना दोनों भिन्न बातें हैं। जनश्रुति यह भी है कि तुलसीदास गङ्गा पार करके ससुराल गये थे। राजापुर में गङ्गा नहीं है, जमुना है। और एक यह भी दलील विचारणीय है कि राजापुर से विरक्त होकर निकले हुए तुलसीदास फिर उसी गाँव में कैसे आकर रहे थे ? सोरों के पक्ष में यह बात अधिक जोरदार मालूम होती है कि सच्चे त्यागी की तरह एक बार सोरों छोड़ने के बाद तुलसीदास फिर वहाँ लौटकर नहीं गये। अतएव वह अवश्य ही उनका जन्म-स्थान रहा होगा।

काष्ठजिह्वा स्वामी तुलसीदास को, 'तुलसी परासर गोत दूबे पतिऔजा के' लिखा है। 'भक्त-कल्पद्रुम' में राजा प्रतापसिंह ने उनको कान्यकुब्ज ब्राह्मण लिखा है; ठाकुर शिवसिंह, पंडित रामगुलाम द्विवेदी, पंडित सुधाकर द्विवेदी और ग्रियर्सन साहब ने उनको सरयूपारीण ब्राह्मण लिखा है; पर ये सब सुनी-सुनाई बातों के आधार पर अवलम्बित हैं। 'वार्ता' की रचना उस समय की है, जब तुलसीदास जीवित थे, और उसमें नंददास से तुलसीदास की भेंट का वर्णन एक प्रत्यक्षदर्शी की तरह किया गया है। उसे मिथ्या क्या इसलिए मानना चाहिए कि तुलसीदास कान्यकुब्ज या सरवरियों की मंडली से निकल जायँगे और सनाढ्य हो जायेंगे ?

यहाँ हमें 'वार्ता' की प्रामाणिकता पर थोड़ा और विचार कर लेना है। 'वार्ता' के गोकुलनाथजी द्वारा रचित होने के विरुद्ध एक यह दलील दी जाती है कि उसमें गोकुलनाथजी का भी हाल लिखा गया है। इससे उसे किसी अन्य

ने गोकुलनाथजी के बहुत पीछे लिखा होगा। पर गोकुलनाथजी भी तो एक गद्दी-धर थे; एक प्रमुख वैष्णव और दो सौ बावन शिष्यों में थे; 'वार्ता' में उनका वर्णन तो आना ही चाहिए था। क्या एक वैष्णव-भक्त की हैसियत से अपना वर्णन वे स्वयं नहीं लिख सकते थे? और क्या यह संभावना नहीं है कि शिष्टाचारवश अपना अंश उन्होंने स्वयं न लिखकर किसी अन्य से अपने सामने ही लिखा दिया हो? 'मिश्र-बंधु-विनोद' में मिश्र-बंधुओं ने अपना वर्णन स्वयं लिखा है। ऐसा ही गोकुलनाथजी भी तो कर सकते थे।

एक प्रश्न यह भी उठाया जाता है कि 'वार्ता' में 'सनौढ़िया ब्राह्मण' वाला वाक्य नहीं है। पर अब किसी खास संस्करण में न हो तो यह कैसे स्वीकार कर लिया जाय कि वह किसी भी संस्करण में न होगा। 'रास-पंचाध्यायी' की भूमिका में स्व० बाबू राधाकृष्णदास ने नन्ददास का जो परिचय 'दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता' से लेकर उसका हिन्दी-अनुवाद करके दिया है, उसका पहला वाक्य यह है:

'नन्ददास सनौढ़िया ब्राह्मण तुलसीदास के छोटे भाई पूर्व देश के रहने वाले थे।'

इससे यह तो निश्चित ही है कि 'वार्ता' की जो प्रति स्व० बाबू राधाकृष्णदासजी के सामने थी, उसमें यह वाक्य था। मैंने एक गुजराती सज्जन द्वारा सम्पादित और बम्बई से प्रकाशित 'वार्ता' की एक ऐसी प्रति भी देखी है; जिसमें नन्ददास की वार्ता ही नहीं है। पर भूमिका में उसके सम्पादक ने लिख दिया है कि उन्होंने कुछ वार्ताएँ, जो उन्हें अनावश्यक जान पड़ीं, निकाल दी हैं। अतएव 'वार्ता' की जो प्राचीन-से-प्राचीन हस्तलिखित प्रति श्रीनाथद्वारा में और श्रीगट्टूलालजी के पुस्तकालय (बम्बई) में है, उसे ही प्रमाण मानना चाहिए।

अन्त में मैं निश्चित रूप से सोरों को, जिसका प्राचीन नाम शूकर क्षेत्र या बाराह क्षेत्र है और जो इस समय एटा जिले में एक कस्बा और तीर्थ-स्थान है, तुलसीदास का जन्म-स्थान स्वीकार करता हूँ। साथ ही यह भी कि वे सनाढ्य ब्राह्मण थे और शुक्ल थे। सनाढ्यों में शुक्ल, तिवारी आदि सभी आस्पद होते हैं।

अब यहाँ दो प्रश्न और उठ खड़े होते हैं।

१—क्या तुलसीदास नंददास के सगे भाई थे? यदि थे, तो पहले प्रमाणित किया जा चुका है कि तुलसीदास की माता का तो उनके जन्मते ही देहान्त हो गया था, तब नन्ददास और चन्द्रहास किससे पैदा हुए थे?

२—तुलसीदास के 'ब्याह न बरेखी जाति पाँति न चहत हौं' का क्या अभिप्राय है ? वे अपनी जाति-पाँति छिपाते क्यों थे ?

इन प्रश्नों पर हमें गम्भीरता से विचार करना होगा। खेद है, यहाँ हमें अनुमान ही से काम लेना पड़ेगा। 'वार्ता' में सगा भाई होना नहीं लिखा है। चचेरा भाई भी भाई ही कहलाता है। संभव है, तुलसीदास नन्ददास के चचेरे भाई हों। दोनों के पिता पहले ही अलग हो चुके हों। तुलसीदास के माता-पिता सोरों में पहले ही आकर बस गए हों और नन्ददास के माता-पिता रामपुर ही में रहते रहे हों। जब बचपन में तुलसीदास अनाथ होकर घर-घर टुकड़े माँगकर जीवन चला रहे थे, तब उनको नरसिंहजी ने स्वजाति का बालक समझकर पाला-पोसा और पढ़ाया-लिखाया। पीछे तुलसीदास विवाह करके गृहस्थ बने, तब नन्ददास के पिता भी सपरिवार ही सोरों में आ बसे होंगे।

'वार्ता' से मालूम होता है—

नंददास बड़े रसिया और गाने-बजाने के बड़े शौकीन थे। उन्होंने तुलसीदास से द्वारिका चलने को कहा। तुलसीदास नहीं गये; तब नंददास अकेले चले गये। पर फिर वे नहीं लौटे। मथुरा पहुँचकर वे एक क्षत्रिय की सुन्दरी बहू पर आसक्त हो गए। उसके पीछे वे ऐसे पड़े कि क्षत्रिय अपने परिवार-सहित चुपके से घर छोड़कर भाग निकला और गोकुल पहुँचा। नंददास उस बहू को एक बार देखे बिना अन्न-जल ही न ग्रहण करते थे। वे भी खोज लगाते हुए गोकुल पहुँचे। वहाँ गोसाई बिट्ठलनाथ जी से उनका साक्षात्कार हुआ। उनके उपदेश से उन्होंने उक्त बहू का पिंड छोड़ा।

गोसाईं जी के दरबार में रात-दिन रस की वर्षा होती रहती थी। अतएव नंददास वहीं रम गए और फिर घर नहीं लौटे। गोसाईं जी की एक सेविका रूपमंजरी से उन्होंने मित्रता भी जोड़ ली थी। उसके नाम पर उन्होंने 'रूप-मंजरी' नामक एक पुस्तक भी रची है।

सोरों में यह प्रसिद्ध है कि नंददास एक बार कुछ धन कमाकर लौटे थे और उन्होंने रामपुर को हस्तगत किया और उसका नाम बदलकर श्यामपुर कर दिया। सोरों के निकटवर्ती गाँवों में 'नंददास सुकुल कियो रामपुरसे श्यामपुर' की कहावत अब तक प्रचलित है।

नंददास के गृह त्यागने के बाद तुलसीदास ने गृह त्यागा था। इसका संकेत 'वार्ता' में भी मिलता है।

मेरा अनुमान है कि तुलसीदास नंददास के चचेरे भाई थे।

दूसरे प्रश्न के उत्तर में भी अनुमान ही से काम लेना पड़ेगा। यदि तुलसीदास कान्यकुब्ज या सरवरिया ब्राह्मण होते, तो उनको जाति बताने में कोई खटका ही नहीं था। क्योंकि इन नामों से काशी के लोग परिचित थे। वे थे सनाढ्य। पूर्वी प्रान्तों में सनाढ्यों की बस्ती आजकल भी कम है। पहले तो बिलकुल ही न रही होगी। सनाढ्यों में विद्वानों की संख्या अब भी बहुत कम है। इससे काशी के लोग विश्वास ही न करते होंगे कि सनाढ्य भी कोई ब्राह्मण होते हैं।

तुलसीदास को वे अब्राह्मण, रजपूत, धूत, अवधूत आदि कहकर चिढ़ाया करते थे। उसी पर झुँझलाकर तुलसीदास कहते थे—मुझे ब्याह-बरेखी तो करना नहीं है; किसी की बेटी से बेटा ब्याहना नहीं है, न किसी की जाति बिगाड़नी है। फिर मेरी जाति-पाँति के पीछे क्यों पड़े हो? यह उनका तत्सामयिक उत्तर था। इससे यह अर्थ नहीं निकलता कि उनका विवाह ही नहीं हुआ था और न उनकी कोई जाति-पाँति थी।

सनाढ्यों में खान-पान का वैसा बन्धन भी नहीं होता, जैसा कान्यकुब्जों या सरवरियों में होता है। और लड़कपन में तुलसीदास सब जातियों के टुकड़े खा भी चुके थे। वे कभी मसजिद में भी सो चुके थे; इससे उनके हृदय से खान-पान और जाति-पाँति की भावना उड़ ही गई थी। काशी वालों-जैसे खान-पान-सम्बन्धी आचार-विचार उनके न रहे होंगे। पर लोगों के ताने और आक्षेप सुनकर वे कुढ़ते अवश्य थे।

यहीं पर यह बात भी हमें हल कर लेनी चाहिए कि तुलसीदास ने 'कवितावली' में जो यह लिखा है :

जायो कुल मंगन बधावनो बजायो
सुनि पाप परिताप भयो जननी जनक को।

इसका अभिप्राय क्या है? इसमें आये हुए 'पाप' शब्द से कुछ लोग तर्क करते हैं कि संभवतः वे पाप की संतान थे। यद्यपि यह बात एक साधारण बुद्धि वाला भी समझ सकता है कि पाप की संतान को जन्म देने का लांछन केवल माता पर लग सकता है, पिता तो इस विषय में प्रायः अनभिज्ञ ही रहता है। अतएव उसे परिताप क्यों होगा? मंगन कुल में जन्म लेने की बात पर तो यह अनुमान किया जा सकता है कि वे भिक्षुक ब्राह्मण के कुल में जन्मे थे। पर उनके जन्म से उनके माता-पिता को पाप और परिताप क्यों हुआ? कुछ चरित-लेखकों ने इस पर यह विचार दौड़ाया है कि वे अभुक्त मूल में पैदा हुए थे, इससे उनके माता-पिता को दुःख हुआ और वे यह भी कहते हैं कि

इस कारण से माता-पिता ने उन्हें छोड़ दिया। पहले तो अभी यही निश्चित नहीं कि वे १५८३ में उत्पन्न हुए थे, या १५८९ में ? वे चाहे जब पैदा हों, हर वक्त अभुक्त मूल ही उनके मत्थे क्यों पड़ेगा ? और यदि मान भी लिया जाय कि वे अभुक्त मूल में पैदा हुए थे, तो उनको छोड़ देने का क्या कारण था ? जो ज्योतिषी अभुक्त मूल बतायगा, वह उसका प्रायश्चित्त भी तो बतायगा। अभुक्त मूल में तो कितने ही बच्चे पैदा होते रहते हैं, पर उनमें से कोई छोड़ नहीं दिया जाता। इससे अभुक्त मूल वाली कल्पना तो निस्सार ही जान पड़ती है।

तुलसीदास के उक्त कथन का अभिप्राय मैं यह समझता हूँ कि तुलसीदास का जन्म लेना उनकी माता के लिए पाप-स्वरूप हुआ, क्योंकि यह उनके जन्मते ही मर गई। और स्त्री के वियोग तथा मातृहीन एक नवजात शिशु की प्राप्ति से उनके पिता को परिताप हुआ।

तुलसीदास का स्वभाव

कवि के स्वभाव का बहुत-कुछ प्रतिबिम्ब उसकी कृति में आ जाता है। तुलसीदास स्वभाव ही से कवि थे। जहाँ वे एक सूक्ष्मदर्शी, अनुभवी, विद्वान्, भक्त, निरभिमान और विनीत थे, वहाँ बड़े विनोद-प्रिय भी जान पड़ते हैं। इस कोटि के महापुरुषों में विनोद की ऐसी मात्रा बहुत कम पाई जाती है, जैसी तुलसीदास में थी। साधु-महात्मा प्रायः गम्भीर और उदासीन से रहते हैं, पर तुलसीदास को हम कभी हास-परिहास में पिछड़ा हुआ नहीं पाते। राम को छोड़कर उन्होंने शेष सब देवताओं के रूप-रंग, रहन-सहन का मज़ाक उड़ाया है। और 'बरवै रामायण' में तो उन्होंने राम को भी नहीं छोड़ा। उनके सांवले रूप की चुटकी उन्होंने ले ही ली :

गरब करहु रघुनन्दन जनि मन माँह।
देखहु आपनि मूरति सिय कै छाँह॥

ऋषि-मुनियों के प्रति उनमें काफी श्रद्धा होने पर भी उनके सम्बन्ध में उन्होंने एक ऐसा छंद लिखा है, जिसे पढ़कर उनके विनोदी स्वभाव पर मुग्ध हो जाना पड़ता है। राम के वन आने का समाचार सुनकर वनवासी लोग बहुत सुखी हुए थे। उनमें विंध्य के वासी तपस्वी मुनि भी थे। पर उनकी प्रसन्नता का कारण क्या था ? वे इसलिए प्रसन्न नहीं हुए थे कि राम बड़े सुन्दर हैं, उनको आँख भरकर देखेंगे या वे राक्षसों को मारकर उन्हें निर्विघ्न करेंगे; बल्कि इसलिए कि राम के चरण लगने से पर्वत की सब शिलाएँ चन्द्रमुखी स्त्रियाँ हो जायँगी। वे बेचारे स्त्री-रहित थे ही, राम के आगमन से उनका यह

कष्ट दूर हो जायगा :

विन्ध्य के वासी उदासी तपोव्रतधारी महा बिनु नारि दुखारे।
गौतम तीय तरी तुलसी सो कथा सुनि भे मुनिवृन्द सुखारे॥
ह्वैहें सिला सब चन्द्रमुखी परसे पद मंजुल कंज तिहारे।
कीन्हीं भली रघुनायकजू करुना करि कानन को पगु धारे॥

अहल्या का उद्धार राम के चरण-स्पर्श से हुआ था। जब वह शिला से स्त्री हो गई, तब गौतम उसे लेकर जाने लगे। तुलसीदास से इस अवसर पर मज़ाक किये बिना रहा न गया। कह ही तो डाला :

गौतम सिधारे गृह गौनो सो लिवाइ कै।

'गौनो सो लिवाइ के' पढ़ते ही देहाती दृश्य सामने आ जाता है।

शिव के पारषदों के रूप-रंग बेढंगे तो थे ही, देवताओं में भी कुछ मूर्तियाँ ऐसी थीं, जिनको देखकर कौतूहल हो सकता था। जान पड़ता है, तुलसीदास बहुत समय से उनकी ताक में थे। अन्त में राम के विवाह के अवसर पर उन्होंने उनको एक साथ ही पकड़ लिया और उनकी शक्ल-सूरत को लेकर खासा विनोद किया।

ब्रह्मा के चार मुँह में आठ आँखें थीं। राम के विवाह के अवसर पर वे आठों आंखों से राम के रूप-रस का पान कर रहे थे। पर उनका जी ललचा रहा था कि और अधिक आंखें क्यों न हुईं :

निरखि राम छवि विधि हरखाने।
आठै नयन जानि पछिताने॥

स्वामि कार्तिक भी मौजूद थे। उनके छः मुख और बारह आँखें थीं। वे इसलिए प्रसन्न थे कि ब्रह्मा से ड्योढ़ा आनंद वे ले रहे थे। तुलसीदास की दृष्टि उन पर भी पड़ी :

सुरसेनप उर बहुत उछाहू।
विधि ते डेवढ़ सुलोचन लाहू॥

पास ही इन्द्र था। गौतम के शाप से पहले उसे हज़ार भग प्राप्त हुए थे, फिर उन्हीं स्थानों पर उसे नेत्र मिल गए थे। पहले तो अपने कलंक से वह बहुत लज्जित रहा करता था, पर उस दिन वह गौतम के शाप को अपने लिए बड़ा ही सुखदायक समझ रहा था :

रामहि चितव सुरेस सुजाना।
गौतम सापु परम हित जाना॥

अन्य देवता खड़े-खड़े ईर्ष्या से देख रहे थे और मन-ही-मन कह रहे थे

कि आज इन्द्र के समान कोई नहीं :

देव सकल सुरपतिहिं सिहाहीं।
आजु पुरन्दर सम कोउ नाहीं ॥

विनोदी स्वभाव होने के अतिरिक्त तुलसीदास बड़े निर्भीक भी थे। सच्ची बात कहने में कभी वे संकोच नहीं करते थे। देवताओं से तो उनकी खास चिढ़-सी जान पड़ती है। उन्होंने उनके लिए कठोर-से-कठोर शब्द व्यवहृत किये हैं। अयोध्या-कांड में एक जगह उन्होंने लिखा है :

विघन मनावहिं देव कुचाली।

रावण के मर जाने पर देवता राम के पास खुशामद करने आए, तब तुलसीदास ने एक ही वाक्य में उनके स्वरूप का सारा भंडाफोड़ कर दिया :

आये देव परम स्वारथी।
बात करहिं जनु परमारथी ॥

सुग्रीव और विभीषण ने यद्यपि राम की शरण ली थी, और तुलसीदास ने स्थान-स्थान पर उनकी भक्ति की प्रशंसा भी की है, पर वे दोनों भ्रातृ-द्रोही थे, उनके इस अपराध को तुलसीदास ने क्षमा नहीं किया। राम ने जब अयोध्या में आकर भरत से विभीषण और सुग्रीव की सराहना की, तब भरत उन्हें राम के समान प्रिय जानकर उठकर मिले। पर राम और भरत का प्रेम देखकर दोनों भ्रातृ-द्रोही मन-ही-मन व्यथित हो उठे थे, यह तुलसीदास से छिपा न रहा :

राम सराहे, भरत उठि, मिले राम सम जानि।
तदपि विभीषन कीसपति, तुलसी गरत गलानि ॥

(दोहावली)

जहां हम तुलसीदास के स्वभाव को साधु पुरुषों के अनेक सद्गुणों से भूषित पाते हैं, वहां उसमें हमें सहिष्णुता की भी काफी मात्रा विद्यमान मिलती है। 'रामचरितमानस' के प्रारम्भ में तुलसीदास ने दुष्टों की जो स्तुति की है, उसमें उनकी अपार मनोव्यथा सजीव हो उठी है। 'कवितावली' और 'विनय-पत्रिका' में भी बहुत से ऐसे छन्द मिलते हैं, जिनसे यह निष्कर्ष निकल सकता है कि राम-कथा के साथ-साथ किसी या किन्हीं के साथ उनका रोज़ का रगड़ा भी चल रहा था :

मारग मारि महीसुर मारि कुमारग कोटिक कै धन लीयो।
संकर कोप सों पाप को दाम परीच्छित जाहिगो जारि कै हीयो।

कासी में कंटक जेते भये ते गे पाइ अघाइ कै आपनो कीयो।
आजु कि कालिह परीं कि नरीं जड़ जाहिंगे चाटि दिवारी को दीयो ।।
(कवितावली)

यह छन्द अवश्य ही किसी व्यक्ति विशेष को लक्ष्य करके लिखा गया है।

काशी में तुलसीदास के हृदय को अनेक आँधियों और तूफानों का सामना करना पड़ता था, फिर भी वे राम के प्रेम में हिमालय के समान अचल रहते थे। जो आत्मानन्दी न होगा, सहिष्णुता जिसे सिद्ध न होगी, वह वैसी गम्भीर भावपूर्ण कविता नहीं रच सकता, जैसी तुलसीदास ने अपने अन्तिम दिनों में 'विनय-पत्रिका' और 'कवितावली' में रची हैं। वे छन्द अपने रचयिता के हृदय की विशालता और उसकी एकान्त चिन्ता के अनोखे साक्षी हैं।

तुलसीदास का व्यक्तित्व

पहले मेरा अनुमान था कि 'रामचरितमानस' के कारण तुलसीदास की महिमा बढ़ी होगी। पर उनके ग्रन्थों का अच्छी तरह अनुशीलन करने के उपरान्त में इस निर्णय पर पहुँचा हूँ कि 'रामचरितमानस' रचने के पहले ही वे अपने व्यक्तित्व की विशेषता से बहुत सम्मान प्राप्त कर चुके थे। 'रामचरित-मानस' केवल उनके सम्मान को बढ़ाने मे सहायक हुआ है, निर्माण में नहीं। 'मानस' में वे स्वयं लिखते हैं :

नाम राम को कलपतरु, कलि कल्यान निवास।
जो सुमिरत भये भाँग तें, तुलसी तुलसीदास ।।

इससे विदित होता है कि 'रामचरितमानस' की रचना के पहले तुलसीदास 'भाँग से तुलसी' बन चुके थे।

इसी भाव की दो पंक्तियाँ वे 'बरवै रामायण' में भी लिखते हैं :

केहि गिनती महँ गिनती जस बन घास।
राम जपत भये तुलसी तुलसीदास ।।

इसमें तो सन्देह नहीं है कि तुलसीदास ने संस्कृत-साहित्य का गम्भीर अनुशीलन किया था। वे वेद, उपनिषद्, दर्शन और पुराणों ही के पंडित नहीं थे, नाटक, छन्दःशास्त्र, काव्य, इतिहास, ज्योतिष और अंकगणित के भी वे अच्छे ज्ञाता थे। मेरा तो विश्वास है कि वे अपने समय की राज-भाषा फ़ारसी से भी परिचित थे। उनकी कविता में अरबी-फ़ारसी के शब्दों का बाहुल्य ही इसका प्रमाण है। अनुपम विद्वत्ता के साथ-साथ उनकी अद्भुत कवित्व-शक्ति ने सोने में सुगन्ध का रूप धारण कर लिया था। राम नाम के प्रभाव से विद्वत्ता और भी चमक उठी थी। 'रामचरितमानस' में जितने प्रकार के

मनोभावों का चित्रण उन्होंने किया है, वे सब केवल कवि-कल्पना नहीं हैं, उनमें बहुत से उनके अनुभूत भी हैं। गुणों और दोषों से भरे हुए एक विस्तृत जगत् का अच्छा अनुभव प्राप्त करने के पश्चात् ही वे 'मानस' की रचना में प्रवृत्त हुए थे। उनकी प्रसिद्धि में चाहे उनके अलौकिक चमत्कार अथवा चमत्कारों की रचना करके उनका प्रचार करने वाले उनके चतुर श्रद्धालु ही कारण क्यों न हुए हों, पर यह निस्सन्देह कहा जा सकता है कि वे स्वयं एक चमत्कारी पुरुष थे और उनका व्यक्तित्व दैवी चमत्कारों से नहीं, स्वतन्त्र रूप से सम्मान का पात्र था।

तुलसीदास का जन्म-संवत्

तुलसीदास के जन्म-संवत् का यदि कहीं कोई लिखित प्रमाण है, तो वह शिवसिंह सेंगर के 'सरोज' में है। शिवसिंह ने तुलसीदास का जन्म सं० १५८३ में माना है। सुनी-सुनाई बातों के आधार पर या तुक भिड़ाकर कि कितने दिनों में उन्होंने विद्या पढ़ी होगी, कितने दिनों तक वे गृहस्थी में रहे होंगे और कम-से-कम किस आयु में उन्होंने 'रामचरितमानस' लिखना प्रारम्भ किया होगा, तुलसीदास का जन्म-संवत् स्थिर करना एक दिमाग़ी कसरत है। शिवसिंह सेंगर ने आज से ७०–८० वर्ष पहले जो-कुछ सुना था, उसे तो आज की अपेक्षा सत्य के कुछ अधिक निकट ही मानना होगा। पर पंडित रामगुलाम द्विवेदी, पं० सुधाकर द्विवेदी और ग्रियर्सन साहब तुलसीदास का जन्म-सं० १५८९ मानते हैं। मैं भी यही माने लेता हूँ। सं० १५८३ और १५८९ में केवल छः ही वर्षों का अन्तर है।

'मानस-मयङ्क' के रचयिता पंडित शिवलाल पाठक ने तुलसीदास का जन्म-सं० १५५४ माना है :

मन ऊपर सर जानिये, सर पर दीन्हें एक।
तुलसी प्रकटे रामवत, राम जनम की टेक॥

इसे सच मानने से यह संभव नहीं मालूम होता कि तुलसीदास ने ७७ वर्ष की आयु में 'रामचरितमानस' प्रारम्भ किया था।

तुलसीदास की गुरु-परम्परा

'रामचरितमानस' के प्रारम्भ में तुलसीदास ने जो गुरु-वन्दना की है, उसमें आये हुए 'कृपासिंधु नर रूप हरि' ने उनके चरित्र-लेखकों को बड़े विचार में डाल दिया है। 'नर हरि' के लिए कोई नरहर्यानन्द या नरहरिदास खोज निकाले गए हैं, जो श्रीरामानन्दजी के बारह शिष्यों में कहे जाते हैं। प्रमाण के लिए ग्रियर्सन साहब को पटना में मिली हुई वैष्णव-सम्प्रदाय की एक सूची

पेश की जाती है, जो इस प्रकार है :

१ श्रीमन्नारायण ।
२ श्रीलक्ष्मी ।
३ श्रीधर मुनि ।
४ श्रीसेनापति मुनि ।
५ श्रीकारिसूनु मुनि ।
६ श्रीसैन्यनाथ मुनि ।
७ श्रीनाथ मुनि ।
८ श्रीपुण्डरीक ।
९ श्रीराम मिश्र ।
१० श्रीपारांकुश ।
११ श्रीयामुनाचार्य ।
१२ श्रीरामानुज स्वामी ।
१३ श्रीशठकोपाचार्य ।
१४ श्रीकूरेशाचार्य ।
१५ श्रीलोकाचार्य ।
१६ श्रीपराशराचार्य ।
१७ श्रीवाकाचार्य ।
१८ श्रीलोकाचार्य ।
१९ श्रीदेवाधिपाचार्य ।
२० श्रीसैलेशाचार्य ।
२१ श्रीपुरुषोत्तमाचार्य ।
२२ श्रीगंगाधरानन्द ।
२३ श्रीरामेश्वरानन्द ।
२४ श्रीद्वारानन्द ।
२५ श्रीदेवानन्द ।
२६ श्रीशामानन्द ।
२७ श्रीश्रुतानन्द ।
२८ श्रीनित्यानन्द ।
२९ श्रीपूर्णानन्द ।
३० श्रीहर्यानन्द ।
३१ श्रीश्रयानन्द ।
३२ श्रीहरिवर्यानन्द ।
३३ श्रीराघवानन्द ।
३४ श्रीरामानन्द ।
३५ श्रीसुरसुरानन्द ।
३६ श्रीमाधवानन्द ।
३७ श्रीगरीवानन्द ।
३८ श्रीलक्ष्मीदासजी ।
३९ श्रीगोपालदासजी ।
४० श्रीनरहरिदासजी ।

४१ श्रीतुलसीदासजी ।

पर तुलसीदास के ग्रन्थों को ध्यानपूर्वक पढ़ने के उपरान्त यही धारणा दृढ़ होती है कि वे एक स्मार्त वैष्णव थे, श्रीरामानुज या रामानन्द के सम्प्रदाय के शिष्य नहीं थे। यदि वे किसी रामानन्दी साधु के शिष्य होते,तो 'रामचरित-मानस' के प्रारम्भ में वे पहले-पहल वाणी और विनायक की स्तुति न करते। वे कहीं-न-कहीं स्वामी रामानुज या रामानन्द की प्रार्थना अवश्य करते।

इसके सिवा वे स्मार्तों ही की रामनवमी भी मनाते थे। 'मानस' का प्रारम्भ उन्होंने सम्वत् १६३१ में मधुमास की नवमी को किया था, जो सोमवार को पड़ी थी। ज्योतिष की गणना से यह नवमी बुधवार को पड़ती

है। पर स्मार्तों और वैष्णवों की रामनवमियों में अन्तर होता है। स्मार्तो की रामनवमी उस दिन मानी जाती है, जिस दिन मध्याह्न में भी नवमी की तिथि रहती है। किन्तु वैष्णव उस नवमी को ठीक मानते हैं, जो मध्याह्न के पूर्व ही समाप्त हुई रहती है। इस नियम के अनुसार वैष्णवों की रामनवमी १६३१ में बुधवार को पड़ी थी। तुलसीदास रामानन्दी वैष्णव होते, तो कभी मंगलवार को रामनवमी न मानते।

वास्तव में तुलसीदास के शिक्षा और दीक्षा दोनों के गुरु सोरों-निवासी नरसिंहजी थे, जो स्मार्त वैष्णव थे। उनका स्थान अब भी सोरों में है और वहाँ उनके वंशज भी विद्यमान हैं, जो चौधरी कहलाते हैं।

तुलसीदास की लिपि

तुलसीदास कैसे अक्षर लिखते थे ? यह जानने की उत्कंठा प्रत्येक साक्षर व्यक्ति में होनी स्वाभाविक है। पर अभी तक एक भी ऐसा लेख कहीं नहीं मिला, जो निश्चित रूप से तुलसीदास के हाथ का लिखा हुआ कहा जा सके। अब तक राजापुर वाले 'रामचरितमानस' के अयोध्या-कांड को लोग तुलसीदास के हाथ का लिखा हुआ मानते थे। पर जाँच करने पर यह बात गलत प्रमाणित हुई है। इस सम्बन्ध में हमने अलग अपने विचार प्रमाण-सहित लिखे हैं। वहाँ देखिये।

दूसरा एक पंचनामा है, जिस पर तुलसीदास के हाथ की लिखी हुई छः पंक्तियाँ कही जाती हैं। यह पंचनामा तुलसीदास के एक मित्र टोडरमल के पुत्र और पौत्र के बीच जायदाद के बँटवारे के लिए लिखा गया था। टोडरमल और तुलसीदास की मित्रता का वर्णन दन्तकथाओं में दिया गया है। इससे यहाँ उसके दुहराने की आवश्यकता नहीं है। इस पंचनामे के विषय में श्री श्यामसुन्दरदास और बड़थ्वाल लिखते हैं :

"यह पंचनामा ग्यारह पीढ़ी तक टोडरमल के वंश में रहा। ११वीं पीढ़ी में पृथ्वीपालसिंह ने इसे काशिराज को दे दिया। अब भी यह काशिराज के यहाँ अच्छी तरह सुरक्षित है।"

मैंने स्वयं असली पंचनामे को नहीं देखा है। उसका छपा हुआ फोटो ही हमें प्राप्त है, जिसके साथ उसमें वर्णित विषय की नकल यहाँ दी जाती है :

पंचनामे की प्रतिलिपि

श्री जानकीवल्लभो विजयते

द्विश्शरं नाभिसंधत्ते द्विस्स्थापयति नाश्रितान् ॥
द्विर्ददाति न चार्थिभ्यो रामो द्विर्नैव भाषते ॥ १ ॥

तुलसी जान्यो दशरथहि धरमु न सत्य समान ॥
रामु तजो जेहि लागि बिनु राम परिहरे प्रान ॥ १ ॥
धर्म्मो जयति नाधर्म्मस्सत्यं जयति नानृतम् ॥
क्षमा जयति न क्रोधो विष्णुर्जयति नासुरः ॥ १ ॥

जो फारसी नहीं जानते, उनके लिए आगे का अंश हिन्दी अक्षरों में दिया जाता है।

अल्लाहो अकबर

चूं अनन्दराम बिन टोडर बिन देओराय व कन्हई बिन रामभद्र बिन तोडर मज़कूर।

दर हुजूर आमदः क़रार दादन्द कि दर मवाज़िए मतरूकः कि तफ़सीलि आं दर हिंदी मजकूर अस्त बिल् मुनासफ: ततराज़ीए जानिबैन क़रार दादेम व यक सद व पिंजाह बिघा ज़मीन ज़्याद: किस्मत मुनासफ़: शुद।

दर मौज़े भदैनी अनन्दराम मज़कूर व कन्हई बिन रामभद्र मज़कूर तज़्वीज़ नमूद:।

बरीं मानी राज़ीगश्त: अतराफ़ सहीह शरई नमूदन्द बिनाबर आं मुहर करद: शुद।

मुहर सादुल्लाह बिन ... ...

किस्मत अनन्दराम	किस्मत कन्हई
करिया क़रिया	करिया क़रिया
भदैनी दो हिस्स: लहरतारा दरोबिस्त	भदैनी सेह हिस्स: शिवपुर: दरोबिस्त
क़रिया	क़रिया
नैपुरा हिस्सै टोडर तमाम	नदेसर हिस्सै टोडर तमाम
क़रिया	
चित्तूपुरा खुर्द हिस्सै टोडर तमाम	अन्हरुल्ला (मशकूक)

श्री परमेश्वर

संवत् १६६६ समय कुआर सुदि तेरसी वार शुभ दीने लिपीतं पत्र अनन्दराम तथा कन्हई के अंश विभाग पुर्वमु आगें जे आग्य दुनहु जने मागा जे आग्य भै शे प्रमान माना दुनहु जने विदित तफसीलु अंश टोडर मलु के माह जे विभाग वदुहोत रा ··

अंश अनंदराम	अंश कन्हई
मौजे भदेनी मह अंश पाँच तेहि मह अंश दुइ	मोजे भदैनी मह अंश पाँच तेहि मह तीनि अंश
अनन्दराम, तथा लहरतारा सगरेउ तथा	कन्हई तथा मौजे शिपुरा तथा नदेसरी अंश
छितुपुरा अंश टोडर मलु के तथा नय-पुरा अंश	टोडर मलु क हील हुज्जती नास्ती
टोडर मलु क हील हुज्जती नास्ती	लीषीतं कन्हई जे ऊपर लिपा से सही।
लिखीतं अनन्दराम जे ऊपर लिखा से सही।	साछी रामसिंह उद्धव सुत
साछी रायराम रामदत्त सुत	साछी जादो राय गहर राय सुत
साछी रामसेनी उद्धव सुत	साछी जगदीश राय महोदधी सुत
साछी उदेयकरन जगतराय सुत	साछी चक्र पानी शिवा सुत
साछी जमुनी भान परमानन्द सुत	साछी मथुरा पीठा सुत
साछी जानकी राम श्रीकान्त सुत	साछी काशीदास वासुदेव सुत दसखत मथुरा
साछी कवलराम वासुदेव सुत	साछी खरगभान गोसाईदास सुत
साछी चन्द्रभान केसीदास सुत	साछी रामदेव बींसभर सुत
साछी पांडे हरीवलभ पुरुषोतम सुत	साछी श्रीकान्त पांडे राजचक्र सुत
साछी भावश्रो केसौउदास सुत	साछी विट्ठलदास हरिहर सुत
साछी जदुराम नरहरि सुत	साछी हीरा दसरथ सुत
साछी अयोध्या लछी सुत	साछी लोहग कीस्ना सुत
साछी सवल भीष्म सुत	साछी नजराम शीतल सुत
साछी रामचन्द्र वासुदीव सुत	साछी कृष्णादत्त भगवन् सुत
साछी पितम्बरदास वधीपूरन सुत	साछी विनरावन जय सुत
साछी रामराय गरीबराय मकटूरीकरन सुत	साछी धनीरान यधुरांय सुत
(शहीद व माफिह् जलाल मकबूली बखतही)	(शहीद व माफिहताहिर इब्न् खाजे दौलते कानूनगोय)

सम्पूर्ण 'पंचनामा' तुलसीदास के हाथ का लिखा हुआ नहीं है। सिर्फ ऊपर की छः पंक्तियाँ ही, जिनके ऊपर नीचे दो श्लोक और बीच में एक दोहा हैं, तुलसीदास के हाथ का लिखा हुआ अनुमान किया जाता है। अनुमान में

इसलिए कहता हूँ कि 'पंचनामे' में तुलसीदास का हस्ताक्षर नहीं। वे जब जायदाद का झगड़ा निपटाने के वक्त मौजूद थे और कहा जाता है कि उन्होंने पञ्चायत भी की थी, तब पञ्चनामे में साक्षी-रूप से उनका नाम तो आ ही सकता था। संभव है, किसी गूढ़ कारण से वे साक्षी न बनाये गए हों। फारसी में जो इबारत है, उसमें भी यह जिक्र नहीं है कि तुलसीदास की मौजूदगी में वह निपटारा हुआ था।

ऊपर की जो छः पंक्तियाँ हैं, उनमें बीच का जो दोहा है, वह तुलसीदास का है, इसमें तो कोई संदेह नहीं है। और केवल उसी दोहे के कारण यह मानने को विवश होना पड़ता है कि यदि तुलसीदास ने वे छः पंक्तियाँ न लिखी होतीं, तो किसी अन्य लेखक को तुलसीदास का उक्त दोहा वहाँ लिखने की आवश्यकता क्या थी? अतएव पञ्चनामे के ऊपर की पंक्तियाँ तुलसीदास के हाथ की लिखी हुई स्वीकार करने में कोई बाधा नहीं दिखाई पड़ती।

काशी के सरस्वती-भवन में 'वाल्मीकि रामायण' के उत्तरकांड की एक हस्तलिखित प्रति सुरक्षित है। उसके अन्त में उसके लिखे जाने का समय और लेखक का नाम इस प्रकार दिया हुआ है :

समाप्तं चेदं महाकाव्यं श्रीरामायणमिति ॥ संवत् १६४१ समये मार्ग सुदि रवौ लि० तुलसीदासेन ॥

इससे तो केवल इतना ही ज्ञात होता है कि तुलसीदास नाम के किसी व्यक्ति ने इसे लिखा था। वह और 'रामचरितमानस' के रचयिता तुलसीदास दोनों एक हैं, इसका क्या प्रमाण है? और 'लि० तुलसीदासेन' के आगे दूसरी कलम से एक और श्लोक लिखा मिलता है, जिससे लेखक का नाम दत्तात्रेय दानाध्यक्ष निकलता है। श्लोक यह है :

श्रीमद्देदिलशाहभूमिपसभासभ्येन्द्रभूमीसुर—
श्रेणीमंडनमंडलीधुरि दयादानादिभाजिप्रभुः।
वाल्मीकेः कृतिमुत्तमां पुररिपोः पुर्यां पुरोगः कृती।
दत्तात्रेयसमाह्वयो लिपिकृतेः कर्मत्वमाचीकरन् ॥ १ ॥

इसके अक्षर इस बात के स्वयं साक्षी हैं कि यह श्लोक किसी ने बाद में रचकर लिख दिया है। जिस कलम से सारा उत्तरकाण्ड लिखा हुआ है, उसी कलम से 'लि० तुलसीदासेन' भी है। अतएव वहाँ तक तो तुलसीदास के हाथ का लिखा हुआ माना ही जायगा।

पंचनामे के अक्षर और इस उत्तर काण्ड के अक्षर मिलते हैं। दोनों की लिखावट एक ही व्यक्ति के हाथ की जान पड़ती है। अन्तर इतना ही है कि

उत्तरकाण्ड जमकर लिखा गया है, जिससे अक्षर अधिक सुन्दर हैं, और पंचनामा जल्दी में लिखा गया है, जिससे उसके अक्षर बहुत सुन्दर नहीं बन सके। उत्तर-काण्ड की लिखावट देखकर यह मानना पड़ता है कि तुलसीदास बहुत सुन्दर अक्षर लिखते थे।

पंचनामे और उत्तरकाण्ड की लिखावट को तुलसीदास के हाथ की स्वीकार कर लेने पर राजापुर की प्रति का प्रश्न और भी आसानी से हल हो जाता है; क्योंकि राजापुर की प्रति के अक्षर उक्त दोनों लिखावटों से बिलकुल भिन्न हैं। पंचनामे, उत्तरकाण्ड और राजापुर के अयोध्याकाण्ड की लिखावटों के फोटो से उनके अक्षर मिलाकर देखिये।

तुलसीदास का चित्र

इस समय तुलसीदास के दो मुख्य चित्र हमारे सामने हैं। एक चित्र खड्ग-विलास प्रेस, बांकीपुर से प्रकाशित रामायण में दिया हुआ है, जिसके खोज निकालने का श्रेय ग्रियर्सन साहब को है। दूसरा चित्र काशी के प्रह्लाद-घाट-निवासी, श्रीयुत रणछोड़लाल व्यास के पास है, जिसे वे सं० १६५५ का बतलाते हैं। उसके आधार पर, उसीसे मिलते-जुलते अन्य कई चित्र तैयार हुए हैं, जिनके फोटो इस पुस्तक में दिये जा रहे हैं। पर किसी के लिए निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि वास्तव में तुलसीदास का असली चित्र कौन सा है? खड्गविलास प्रेस वाले चित्र में तुलसीदास का शरीर काफी मोटा-ताजा दिखलाया गया है, जो उनकी अधेड़ अवस्था का होगा। काशी के चित्र में तुलसीदास का शरीर रुग्ण-सा दिखता है। सं० १६५५ में उनके रुग्ण होने का कोई प्रमाण हमारे पास नहीं है।

भारतवर्ष के प्राचीन चित्रों के एक विशेषज्ञ काशी-निवासी राय कृष्ण-दास जी तुलसीदास के चित्रों के सम्बन्ध में यह सम्मति रखते हैं:

"श्रीयुत रणछोड़लाल व्यास के पास जो चित्र है, वह सं० १६५५ का नहीं हो सकता, क्योंकि उसमें जो इमारत बनी है, उसकी शैली बहुत पीछे की है। वह उस शैली का है, जिसका प्रचलन मुहम्मदशाह के बाद हुआ है। किन्तु यह चित्र सम्भवतः तुलसीदास के किसी मूल चित्र पर अवलम्बित है; क्योंकि उसीसे मिलते-जुलते कई चित्र भिन्न-भिन्न संग्रहों में मिलते हैं। उनमें एक तो प्रसिद्ध पुस्तक-संग्रहीता श्रीमयाशङ्कर याज्ञिक के पास है, और एक भारत-कला-भवन काशी में है। ये दोनों चित्र निश्चित रूप से प्राचीन हैं। अतएव तुलसी-दासजी के उस चित्र को वास्तविक मानना चाहिए। खड्गविलास प्रेस वाला चित्र अधेड़ अवस्था का होगा। उक्त चित्रों के देखने से यह जान पड़ता है कि

ये उसी व्यक्ति की वृद्धावस्था के हैं, जिसका यह अधेड़ अवस्था का है।

काशी के अस्सी घाट वाले तुलसीदास के स्थान में उनका जो दाढ़ी वाला चित्र है, वह एक आधुनिक चित्रकार की कृति है और सर्वथा कृत्रिम है।"

५

दन्त-कथाएँ

तुलसीदास का परिवार

तुलसीदास के पिता का नाम आत्माराम और माता का हुलसी प्रसिद्ध है। 'हुलसी' उनकी माता का नाम था, इसके लिए कुछ प्रमाण भी देते हैं—

अकबर के प्रसिद्ध वजीर अब्दुर्रहीम खानखाना से तुलसीदास की मित्रता थी। एक बार एक गरीब ब्राह्मण की कन्या के विवाह में कुछ सहायता देने के लिए तुलसीदास ने रहीम के पास यह आधा दोहा लिखकर उसी ब्राह्मण के हाथ भेजा :

सुरतिय नरतिय नागतिय, अस चाहत सब कोय।

रहीम ने ब्राह्मण को बहुत-कुछ धन देकर और दोहे की यह पूर्ति करके उसे तुलसीदास के पास वापस भेजा :

गोद लिये हुलसी फिरें, तुलसी सो सुत होय ॥

लोगों की यह धारणा है कि यहाँ 'हुलसी' शब्द श्लेषार्थ में प्रयुक्त हुआ है। 'हुलसी' का अर्थ 'प्रसन्न होकर' भी है।

तुलसीदास ने 'रामचरितमानस' के कई स्थलों में इस शब्द का प्रयोग प्रसन्न होने ही के अर्थ में किया है। जैसे :

संभुप्रसाद सुमति हिय हुलसी। रामचरितमानस कवि तुलसी।

यहाँ 'हुलसी' शब्द 'उत्साहित हुई' के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। पर मानस में एक स्थान पर यह शब्द कुछ भ्रम भी उत्पन्न करता है :

रामहिं प्रिय पावनि तुलसी सी। तुलसिदास हित हिय 'हुलसी' सी।

इस 'हुलसी' को लेकर 'माता' की कल्पना की जा रही है। पर जिस माता ने तुलसीदास को जन्मते ही छोड़ दिया, उसका कौन सा सुख स्मरण करके वे इतनी कृतज्ञता प्रकट कर रहे हैं, यह विचारणीय चौपाई है। और चौपाई के पहले चरण से तो यह भाव टपकता है कि राम-कथा राम को पवित्र तुलसी की तरह प्रिय है। तुलसी जलन्धर दैत्य की स्त्री थी, जिसका पातिव्रत-धर्म

विष्णु ने नष्ट किया था। उसके समकक्ष हुलसी को तुलसीदास की माता क्यों माना जाय? उनकी स्त्री ने तो तुलसीदास को उपदेश भी दिया था, माता ने जन्म देने के सिवा और क्या किया था?

यह सब अर्थ की खींच-तान है। यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है कि उनकी माता का नाम हुलसी था या क्या था?

सोरों में प्रसिद्ध है कि तुलसीदास की स्त्री का नाम रत्नावली और ससुर का दीनबन्धु पाठक था। रत्नावली से तुलसीदास को एक पुत्र भी उत्पन्न हुआ था, जिसका नाम तारक था। पर वह बचपन ही में मर गया। तुलसीदास का विवाह अनुमान से पच्चीस वर्ष की अवस्था में हुआ होगा। तुलसीदास के दो भाई और थे, जिनके नाम 'दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता' में आये हैं, जिसका उदाहरण इस पुस्तक में अलग दिया गया है।

गृह-त्याग

श्रावण का महीना था। तुलसीदास कहीं बाहर गये हुए थे। उनकी अनुपस्थिति में रत्नावली अपने नैहर बदरिया गाँव को चली गई, जो सोरों से एक फर्लांग ही की दूरी पर गंगा के उस पार था। तुलसीदास घर आये, और अपनी स्त्री को घर में न पाकर उसके वियोग से बहुत विकल हुए और बढ़ी हुई गंगा को वे आधी रात के समय तैरकर ससुराल पहुँचे। यकायक अनिमन्त्रित पति को आधी रात के समय घर में देखकर स्त्री चकित हो गई और उसने व्यङ्गपूर्वक कहा:

अस्थि चर्ममय देह मम, तामें जैसी प्रीति।
तैसी जो श्रीराम महँ, होति न तौ भवभीति॥

स्त्री का यह व्यङ्ग-बाण तुलसीदास को करारा लगा। वे उसी वक्त घर से निकल पड़े और उनके प्रेम की जो धारा स्त्री के अस्थि-चर्ममय देह की ओर उमड़ रही थी, उसे उन्होंने सचमुच श्रीराम की ओर मोड़ लिया।

यह नहीं कहा जा सकता कि स्त्री ने तुलसीदास को देखते ही दोहा बनाकर कहा या किसी ने पीछे से बना दिया; पर दोहे में किसी हृदयवान के हृदय को बेधने वाला भाव पर्याप्त मात्रा में था। तुलसीदास उसके शिकार हो गए।

यदि तुलसीदास का जन्म-सं० १५८९ ठीक माना जाय, तो घर छोड़ने का समय सं० १६२० के आस-पास होगा। क्योंकि विवाह के उपरान्त पांच ही छः वर्ष बीते होंगे, जब उनके प्रेमोन्माद को ऐसा जोरदार धक्का लग सकता है।

श्रीरामदास गौड़ लिखते हैं कि काशी-नरेश के पुस्तकालय में गोस्वामीजी-रचित 'विन्ध्येश्वरी-पटल' नाम की एक पुस्तक है, जो सं० १६१५ की रचना है। उसमें ज्योतिष और तान्त्रिक विषय भी हैं। उससे मालूम होता है कि सं० १६१५ तक तुलसीदास के हृदय में राम-भक्ति का प्राबल्य नहीं था। उस समय वे पूर्ण विषयासक्त थे। यदि उसमें कुछ कमी होती, तो सहसा ऐसा परिवर्तन नहीं होता। एक बार घर छोड़ने के बाद तुलसीदास फिर कभी सोरों नहीं गये।

एक बार उनकी स्त्री ने तुलसीदास के पास यह दोहा लिख भेजा :

कटि की खीनी कनक सी, रहत सखिन सँग सोय।
मोहि फटे की डर नहीं, अनत कटे डर होय॥

इस पर तुलसीदास ने यह उत्तर लिख भेजा :

कटे एक रघुनाथ सँग, बाँधि जटा सिर केस।
हम तो चाखा प्रेम रस, पतिनी के उपदेस॥

तुलसीदासजी-जैसे महाकवि की स्त्री भी कविता करती हों, यह असंभव नहीं। पर पति-पत्नी के मार्मिक प्रसंगों को रसिक-जनों ने भी सरस बनाया है, यह स्मरण रखना चाहिए।

कहा जाता है कि वृद्धावस्था में एक बार वे भूलकर अपनी ससुराल पहुँच गए। उस समय उनकी स्त्री जीवित थी और बहुत ही वृद्धा हो गई थी। पहले तो दोनों में से किसी ने भी एक-दूसरे को नहीं पहचाना। पर रात में भोजन कराने के समय स्त्री को सन्देह हुआ। सबेरे जब तुलसीदास जाने लगे, तब स्त्री ने अपना भेद प्रकट किया और अपने को भी साथ रखने के लिए कहा। तुलसीदास ने स्वीकार नहीं किया। तब स्त्री ने कहा :

खरिया खरी कपूर लौं, उचित न पिय तिय त्याग।
कै खरिया मोहिं मेलिकै, अचल करहु अनुराग॥

यह सुनते ही तुलसीदास ने अपने झोले की सब चीजें ब्राह्मणों को बाँट दीं और अपनी राह ली।

सम्भवत: सं० १६१६ या २० में तुलसीदास घर से निकले थे। वे सीधे काशी गये और वहाँ से अयोध्या और अयोध्या से चित्रकूट गये। वे चित्रकूट और अयोध्या में प्राय: अधिक रहा करते थे। जब कभी काशी जाते, पंडित गंगाराम जोशी के यहाँ ठहरा करते थे। 'रामाज्ञा' में गंगाराम का नाम आया है :

सगुन प्रथम उनचास सुभ, तुलसी अति अभिराम।
सब प्रसन्न सुर भूमि सुर, गोगन गंगाराम ॥

भृगु-आश्रम और ब्रह्मपुर की यात्रा

एक बार काशी से तुलसीदास ने भृगु-आश्रम (बलिया) की यात्रा की। रास्ते में हंसनगर और परसिया होते हुए वे गाय घाट के राजा गंभीरदेव के अतिथि हुए थे। वहाँ से गंगा पार करके ब्रह्मपुर (शाहाबाद) में ब्रह्मेश्वर महादेव के दर्शन करते हुए वे कांत नाम के गाँव में आये।

कांत के लोग उन्हें बड़ी क्रूर प्रकृति के दिखाई पड़े। वहाँ उन्हें भोजन का कोई पदार्थ नहीं मिला। गाँव के बाहर मँगरू नाम का एक अहीर मिला, जो साधु-ब्राह्मणों का सत्कार किया करता था। वह तुलसीदास को बड़े अनुनय-विनय से अपने घर ले गया। उसने तुलसीदास को दूध दिया, जिससे उन्होंने खोवा बनाकर खाया। मँगरू की सेवा से प्रसन्न होकर उन्होंने उसकी इच्छा जाननी चाही, तब मँगरू ने कहा—भगवान् के चरणों में मेरा दृढ़ विश्वास हो और मेरा वंश बढ़े। तुलसीदास ने कहा—यदि तुम्हारे वंश के लोग चोरी न करेंगे और किसी को दुःख न देंगे, तो ऐसा ही होगा।

बलिया और शाहाबाद जिले में मँगरू के वंश वाले अब तक वर्तमान हैं, जो चोरी नहीं करते, भक्त और साधु-सेवी हैं और अतिथि-सत्कार के लिए प्रसिद्ध हैं।

कांत से तुलसीदास बेलापतौत आये। वहाँ गोविन्द मिश्र शाकद्वीपीय ब्राह्मण और रघुनाथसिंह क्षत्रिय ने उन्हें बड़े सत्कार से ठहराया। तुलसीदास वहाँ कुछ समय तक ठहरे रहे। उस गाँव का नाम बदलकर उन्होंने रघुनाथपुर कर दिया। वह गाँव ब्रह्मपुर से कोस भर की दूरी पर है। वहाँ तुलसीदास का चौरा अब तक है।

वहाँ से तुलसीदास कैथी गाँव को गये, जो रघुनाथपुर के पास ही है। कैथी के मुखिया जोरावरसिंह ने उनका बड़ा सत्कार किया और वे उनके शिष्य भी हो गए।

वहाँ से घूमते-घामते तुलसीदास पुरुषोत्तमपुरी गये और फिर काशी लौट आए।

काशी में उनके निवास-स्थान

यद्यपि तुलसीदास की कविता से विदित होता है कि उनको अयोध्या और चित्रकूट बहुत प्रिय थे, इससे वे वहाँ अधिक समय तक रहा करते होंगे; पर काशी में भी वे कम नहीं रहे। यद्यपि काशी में उनको शारीरिक और मानसिक

दोनों प्रकार के कष्ट बहुत मिले, पर काशी के प्रति उनकी धार्मिक प्रेरणा इतनी प्रबल थी कि वे कष्ट-पर-कष्ट झेलते रहे और वहीं रहते रहे। अन्त में वहीं उनका देहावसान भी हुआ। काशी में वे पहले हनुमान फाटक पर आकर रहे। वहाँ से मुसलमानों के उपद्रव से तंग आकर वे गोपाल-मन्दिर में चले आए। वहाँ भी वल्लभ-कुल वाले गोसाइयों से उनका विरोध हुआ, तब वे वहाँ से उठकर अस्सी पर रहने लगे।

काशी में साधारणतः उनके रहने के चार स्थान प्रसिद्ध हैं—

१. अस्सी—यहाँ तुलसीदास का घाट प्रसिद्ध है। यहाँ तुलसीदास के स्थापित किये हुए हनुमानजी हैं। उनके मन्दिर के बाहर बीसा-यंत्र खुदा है, जो पढ़ा नहीं जाता। यहाँ गोसाईंजी की एक गुफा भी है। इसी स्थान में तुलसीदास अन्त समय में रहे थे। यहाँ उन्होंने रामायण के अनुसार रामलीला प्रारम्भ की थी, जो अब तक होती है। अस्सी से दक्षिण जहाँ इस रामलीला की लंका थी, उस स्थान का नाम अब तक लंका है। यह रामलीला सबसे पुरानी है।

२. गोपाल-मन्दिर—यहाँ एक कोठरी है, जो तुलसीदास की बैठक कहलाती है। वह सदा बन्द रहती है और लोग उसके झरोखे से दर्शन करते हैं। केवल श्रावण सुदी ७ को वह वर्ष में एक दिन खुला करती है, तब लोग जाकर पूजा करते हैं। कहा जाता है कि उसमें बैठकर तुलसीदास ने 'विनय-पत्रिका' का कुछ अंश लिखा था।

३. प्रह्लाद-घाट—यहाँ तुलसीदास पंडित गङ्गाराम जोशी के घर पर ठहरा करते थे।

४. संकट-मोचन—नगवा के पास अस्सी नाले पर तुलसीदास ने संकट-मोचन हनुमान की एक मूर्ति स्थापित की थी। प्रह्लाद-घाट वाले पंडित गङ्गाराम ने एक राजा से बहुत सा द्रव्य पाया था, उसमें से उन्होंने बारह हजार रुपये तुलसीदास को दिये थे। तुलसीदास ने उन रुपयों से हनुमानजी के बारह मन्दिर बनवाये। उनमें एक संकट-मोचन भी है।

प्रेत-मिलन

काशी में रहते हुए तुलसीदास शौच के लिए गङ्गा-पार जाया करते थे और लौटते समय शौच से बचा हुआ जल ग्राम के एक वृक्ष की जड़ में डाल दिया करते थे। उस वृक्ष पर एक प्रेत रहता था। वह उस जल से तृप्त हुआ करता था। एक दिन वह प्रकट हुआ और उसने कहा—मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हूँ; कुछ माँगो।

तुलसीदास ने कहा—मैं राम का दर्शन चाहता हूँ।

प्रेत ने कहा—यह मेरी शक्ति के बाहर की बात है। पर मैं तुमको एक बात बतलाता हूँ। काशी जी में अमुक स्थान पर रामायण की कथा होती है। उसे सुनने के लिए हनुमानजी एक कोढ़ी का वेश धरकर सबसे पहले आते हैं और सबसे पीछे जाते हैं। तुम उनके चरण पकड़ो, वे राम का दर्शन करा देंगे।

हनुमानजी से परिचय

प्रेत की सूचना के अनुसार तुलसीदास उक्त रामायण की कथा सुनने के लिए गए। कथा समाप्त होने पर जब सब चले गए, तब अन्त में वह कोढ़ी उठा। तुलसीदास ने तत्काल उसके चरण पकड़ लिए। उसने छुटकारे की बहुत कोशिश की, पर तुलसीदास ने उसे नहीं छोड़ा और अपना मनोरथ कहा। तब उसने कहा—जाओ, चित्रकूट में दर्शन हो जायँगे।

राम का दर्शन

काशी से तुलसीदास चित्रकूट गये और वहाँ राम के दर्शन की प्रतीक्षा करने लगे। एक दिन वे राम का स्मरण करते हुए बैठे थे। उसी समय दो अपूर्व सुन्दर राजकुमार मृग के पीछे घोड़ा दौड़ाते हुए उनके सामने से निकल गए। ध्यान में बाधा न पहुँचे, इस विचार से तुलसीदास ने उधर से दृष्टि हटाकर पृथ्वी की ओर कर ली और फिर वे ध्यानावस्थित हो गए। इतने में ब्राह्मण-वेश में हनुमानजी आये और उन्होंने पूछा—क्यों, राम-लक्ष्मण के दर्शन हुए?

तुलसीदास चकित होकर बोले—नहीं।

हनुमानजी ने कहा—अभी तो तुम्हारे सामने से वे घोड़ों पर गये हैं।

तुलसीदास पछताकर रह गए। हनुमानजी ने कहा—कलियुग में इतने ही को तुम अपना अहोभाग्य समझो।

तुलसीदास ने उन युगल मूर्तियों को हृदय में रख लिया।

ग्रियर्सन साहब राम-दर्शन के एक और ही प्रसङ्ग का उल्लेख इस प्रकार करते हैं—

तुलसीदास चित्रकूट में घूम रहे थे। एक जगह उन्होंने रामलीला होती देखी। लङ्का-विजय, विभीषण का राज्याभिषेक और दल-बल-सहित राम के अयोध्या जाने की तैयारी का प्रसङ्ग था। लीला की समाप्ति पर तुलसीदास आगे चले, तो राह में ब्राह्मण के वेश में हनुमानजी मिले। तुलसीदास ने उनसे रामलीला की प्रशंसा की। हनुमानजी ने हँसकर कहा—तुम पागल हो गए

हो; भला, रामलीला का समय आजकल कहाँ है ? यह कहकर वह अन्तर्द्धान हो गए। तुलसीदास विस्मित होकर अपनी कुटी पर लौट आए और राम-स्मरण में निमग्न हो गए।

चित्रकूट में इस प्रकार की कोई घटना अवश्य घटी थी। 'विनय-पत्रिका' में भी इसका आभास मिलता है :

तुलसी तोको कृपालु, जो कियो कोसल पालु।
चित्रकूट को चरित्र चेतु चित करि सो॥
(विनय-पत्रिका)

मृग के पीछे जाने वाले दोनों राजकुमारों को न पहचान पाने के दुःख को तुलसीदास ने इस पद में भी व्यक्त किया है :

लोचन रहे वैरी होय।
जान-बूझ अकाज कीनों गये भू में सोय॥
अविगत जु तेरी गति न जानी रह्यो जागत सोय।
सबै छवि की अवधि में हैं निकसिगे ढिग होय॥
करमहीन मैं पाय हीरा दियो पल में खोय।
दास तुलसी राम बिछुरे कहो कैसी होय॥

चित्रकूट में राम-दर्शन की एक कथा यह भी है—

एक दिन तुलसीदास चित्रकूट में रामघाट पर बैठे हुए राम के ध्यान में निमग्न थे। इतने में एक सुन्दर पुरुष ने आकर कहा—बाबा, चन्दन दो। तुलसीदास चन्दन घिसने लगे। उसी समय तुलसीदास को सूचना देने के लिए हनुमानजी ने सुग्गे का रूप धरकर आकाश में उड़ते हुए यह दोहा पढ़ा :

चित्रकूट के घाट पर, भइ संतन की भीर।
तुलसिदास चन्दन घिसें, तिलक देत रघुवीर॥

यह सुनकर तुलसीदास रामचन्द्र की शोभा देखने लगे और देखते-देखते आनन्दमग्न होकर मूर्च्छित हो गए। रामचन्द्र स्वयं चन्दन लगाकर अन्तर्द्धान हो गए।

इस घटना के बाद तुलसीदास चित्रकूट से अयोध्या चले गए और कुछ दिनों तक अयोध्या में रहकर फिर काशी लौट आए।

राम का पहरा

काशी में जब तुलसीदास प्रह्लाद-घाट पर रहते थे, उस समय एक रात उनके घर में चोर घुसे। इस कथा को रेवेरेंड एड्विन ग्रीव्स ने बड़े सुन्दर ढङ्ग से लिखा है। उन्हीं के शब्दों में सुनिए—

"एक कथा से मैं प्रसन्न होता हूँ। इस कारण से कि कथा कैसी ही क्यों न हो, तो भी शिक्षा से भरी हुई है। लिखा है कि एक चोर चोरी करने गोसाईं के घर गया। चोर ने देखा कि वहाँ एक मनुष्य रात भर पहरा देता रहा है। प्रातःकाल तुलसीदास के पास जाके उसने पूछा कि वह कौन श्यामकिशोर आपके यहाँ चौकी देता है ? यह बात :

सुनि करि मौन रहे आँसू डारि दिये है ॥

उनको बोध हुआ और तुलसीदास ने समझ लिया कि रघुनाथ ने रात भर मेरे लिए चौकी दी और यह जानके कि धन-सम्पत्ति बटोरने से मैंने अपने स्वामी को इतना दुःख दिया कि वह रात भर पहरा देवें, उन्होंने अपना सब-कुछ कंगालों को बांट दिया। यह बात अर्थात् ईश्वर अपने लोगों की रक्षा करते हैं, सोच-विचार करने योग्य है।"

टोडरमल के साथ मैत्री

काशी में टोडरमल नाम के एक भूमिहार जमींदार थे। उन्हें गोसाइयों न तलवार से काट डाला था। उनके पास पाँच गाँव थे—भदैनी, नदेसर, शिवपुर छीतपुर और लहरतारा। भदैनी अब काशिराज के पास है और उसी में अस्सी घाट है।

टोडरमल के वंशज अब तक अस्सी पर रहते हैं। वे प्रत्येक वर्ष श्रावण शुक्ला सप्तमी को तुलसीदास की पुण्य-तिथि पर सीधा (आटा) दिया करते हैं।

तब वल्लभ-कुल के गोसाइयों से जब तुलसीदास की अनबन हुई और उन्हें गोपाल-मन्दिर छोड़ना पड़ा, अस्सी पर एक मन्दिर बनवाकर टोडरमल उनको आग्रहपूर्वक उसमें ले आए थे। टोडरमल भी वैष्णव और राम के सच्चे स्नेही थे। इसी कारण से गोसाइयों ने तुलसीदास के साथ उनसे भी वैर बांधा होगा। टोडरमल की मृत्यु पर तुलसीदास के रचे हुए चार दोहे मिलते हैं :

चार गाँव को ठाकुरो, मन को महा महीप।
तुलसी या कलिकाल में, अथये टोडर दीप ॥१॥
तुलसी राम सनेह को, सिर धरि भारी भार।
टोडर कांधा ना दियो, सब कहि रहे उतार ॥२॥
तुलसी उर थाला विमल, टोडर गुनगन बाग।
ये दोउ नैननि सींचिहौं, समुझि-समुझि अनुराग ॥३॥

रामधाम टोडर गये, तुलसी भये असोच ।
जियबो मीत पुनीत बिन, यही जानि संकोच ।।४।।

ये एक सच्चे वियोगी मित्र के दुःख से पूर्ण हृदय के उद्‌गार हैं, जो एक महाकवि की कलम से दोहे का रूप पा गए हैं। दूसरे दोहे से यह अर्थ निकलता है कि टोडर को राम की उपासना से हटाने का प्रयत्न किया गया था; पर वह सफल नहीं हुआ। सम्भव है, तुलसीदास का साथ छोड़ने को भी कहा गया हो और उन्होंने अस्वीकार किया हो।

मधुसूदन सरस्वती से घनिष्ठता

तुलसीदास के समकालीन शंकर-मतानुयायी श्रीमधुसूदन सरस्वती काशी में एक प्रसिद्ध विद्वान् थे। उन दिनों 'रामचरितमानस' का आदर सर्व-साधारण में तो खूब था, पर भाषा में होने के कारण पंडित-समुदाय उससे विरक्त था। पंडितगण श्रीमधुसूदन सरस्वती की सम्मति जानना चाहते थे। श्रीमधुसूदन सरस्वती के साथ तुलसीदास का जब वाद-प्रतिवाद हुआ, तब उसका बड़ा ही उत्तम परिणाम हुआ और श्रीमधुसूदन सरस्वती ने तुलसीदास की प्रशंसा में यह श्लोक लिखकर अपनी सम्मति दी :

आनन्दकानने ह्यस्मिन् जंगमस्तुलसीतरुः ।
कविता मञ्जरी यस्य राम-भ्रमर-भूपिता ।।

'भक्ति-विलास' में पंडित महादेवप्रसाद ने यह श्लोक किसी अन्य पंडित का रचा हुआ बताया है, जो काशी में दिग्विजय की इच्छा से आया था।

काशिराज महाराज ईश्वरीप्रसाद नारायणसिंह ने इस श्लोक का अनुवाद इस प्रकार किया है :

तुलसी जंगम तरु लसै, आनँद कानन खेत ।
कविता जाकी मञ्जरी, राम भ्रमर रस लेत ।

नाभाजी से भेंट

'भक्तमाल' के कर्ता नाभाजी उन्हीं दिनों जब काशी आए थे, तब तुलसीदास से मिलने के लिए वे उनके स्थान पर भी गए थे। पर उस समय तुलसीदास ध्यान में थे, इससे वे उनसे मिल न सके। नाभाजी बिना मिले ही उसी दिन वृन्दावन चले गए। पीछे यह बात तुलसीदास को मालूम हुई, तब वे बहुत पछताये और नाभा जी से मिलने के लिए वृन्दावन गए। जिस समय तुलसीदास नाभा जी के यहाँ पहुँचे, उस समय वहाँ वैष्णवों का भंडारा था। एक तो तुलसीदास बिना बुलाये वहाँ गए थे, दूसरे नाभाजी उनसे पहले ही से विरक्त हो रहे थे, इससे तुलसीदास का उन्होंने स्वागत नहीं किया। तुलसीदास

अन्य अभ्यागतों के साथ बैठ गए। इनको प्रसाद पाने के लिए बरतन भी नहीं दिया गया था। जब इनके सामने खीर आई, तब इन्होंने एक साधु का जूता उठा लिया और कहा—इससे अच्छा बरतन और क्या होगा ? इनकी विनम्रता ने नाभाजी का हृदय धो दिया। उन्होंने इनको गले से लगा लिया और कहा—आज मुझे 'भक्तमाल' का सुमेर मिल गया।

कहा जाता है, काशी से लौटकर नाभाजी ने तुलसीदास से अपने अपमान का बदला चुकाया था और 'भक्तमाल' में जो छप्पय उनके नाम पर दिया हुआ मिलता है, उसका पहला चरण यह लिखा था :

कलि कुटिल जीव तुलसी भये बालमीकि अवतार धरि।

पर उस दिन की घटना के बाद उन्होंने इस चरण को ऐसा कर दिया :

कलि कुटिल जीव निस्तार हित बालमीकि तुलसी भयो।

मीराबाई का पत्र

मीरा बाई नाम हिन्दी वालों से अपरिचित नहीं। कहा जाता है कि जब मीराबाई को तत्कालीन राणा बहुत तङ्ग करने लगे, तब उन्होंने तुलसीदास को यह पत्र लिख भेजा और पूछा कि क्या करना चाहिए :

स्वस्ति श्रीतुलसी गुन भूषन दूषन हरत गुसाईं।
बारहिं बार प्रणाम करहुँ अब हरहु सोक समुदाई॥
घर के स्वजन हमारे जेते सबनि उपाधि बढ़ाई।
साधु सङ्ग अरु भजन करत मोहि देत कलेस महाई॥
बालपने ते मीरा कीन्हीं गिरिधरलाल मिताई।
सो तो अब छूटत नहिं क्योंहू लगी लगन बरियाई॥
मेरे मात पिता के सम हौ हरि भक्तन सुखदाई।
हमको कहा उचित करिबो है सो लिखिये समुझाई॥

तुलसीदास ने उसके उत्तर में यह पद लिख भेजा :

जाके प्रिय न राम बैदेही
तजिये ताहि कोटि बैरी सम जद्यपि परम सनेही॥
तात मात भ्राता सुत पति हित इन समान कोउ नाहीं।
रघुपति बिमुख जानि लघु तृन इव तजत न सुकृत डराहीं॥
तज्यो पिता प्रहलाद बिभीषन बन्धु भरत महतारी।
बलि गुरु तज्यो कंत ब्रज बनितन भे सब मङ्गलकारी॥
नातो नेह राम सों मनियत सुहृद सुसेव्य जहां लौं।
अंजन कहा आंख जो फूटै बहुतक कहो कहां लौं॥

तुलसी सोइ सब भाँति आपनो पूज्य प्रान तें प्यारो।
जासों होइ सनेह राम सों एतो मतो हमारो ॥

बनारसीदास से सत्संग

जौनपुर के जैन-कवि बनारसीदास तुलसीदास के समकालीन थे। कहा जाता है कि तुलसीदास से एक बार उनकी भेंट हुई थी। तुलसीदास ने बनारसीदास को 'रामचरितमानस' की एक प्रति दी थी और बनारसीदास ने उनको पार्श्वनाथ की स्तुति दी थी। दूसरी बार की मुलाकात में बनारसीदास ने राम-चरित पर यह कविता लिखकर दी थी :

विराजै रामायण घट माहीं।
मरमी होय मरम सो जानै, मूरख मानै नाहीं ॥
आतम राम ज्ञान गुन लक्ष्मण, सीता सुमति समेत।
शुभ प्रयोग वानरदल मंडित, वर विवेक रन खेत ॥
ध्यान धनुष टंकार सोर सुनि गई विषय दिति भाग।
भई भस्म मिथ्या मत लंका उठी धारना आग ॥
जरे अज्ञान भाव राक्षस कुल लरैं निशंकित सूर।
जूझे राग द्वेष सेनापति संसय गढ़ चकचूर ॥
विलखत कुम्भकरन भव विभ्रम, पुलकित मन दरियाव।
थकित उदार वीर महिरावन, सेतुबन्ध समभाव ॥
मूर्च्छित मन्दोदरी दुरासा, सजग चरन हनुमान।
घटी चतुर्गति परनति सेना, छुटै छपक गुन बान ॥
निरखि सकति गुन चक्र सुदर्शन, उदय विभीषन दीन।
फिरै कबन्ध महीरावन को प्रान भाव सिरहीन ॥
इह विधि साधु सकल घट अन्तर, होय सहज संग्राम।
यह विवहार दृष्टि रामायण, केवल निश्चय राम ॥

इसके उत्तर में तुलसीदास ने पार्श्वनाथ की यह स्तुति लिखी थी :

पदजलज भगवान् जू बसत हैं उर माँहि।
चहुँ गति विहंडन तरनतारन, देख विघन विलाहिं ॥
थकि धरनि पति नहिं पार पावत नर सु वपुरा कौन।
तिहिं लसत करुना जनपयोधर, भजहि भवि जन तौन ॥
दुति उदित त्रिभुवन मध्य भूपन, जलधि ज्ञान गँभीर।
जिहिं भाल ऊपर छत्र सोहत, दहत दोष अधीर ॥

जिहि नाथ पारस जुगल पंकज चित्त चरनन जास।
रिधि सिद्धि कमला अजर राजति भजत तुलसीदास ॥"
('बनारसी-विलास' से उद्धृत)

कारावास

तुलसीदास के चमत्कारों की कहानियाँ जब दिल्लीपति के कानों तक पहुँचीं, तब उसने उनको दरबार में आदर-सहित लाने के लिए अपने आदमी भेजे। तुलसीदास बादशाह की आज्ञा पाकर दिल्ली गये और दरबार में उपस्थित हुए। बादशाह ने उनका बड़ा सत्कार किया और कुछ करामात दिखाने के लिए कहा। तुलसीदास ने कहा—मैं तो एक राम-नाम जानता हूँ, और मुझमें कोई करामात नहीं। इस पर बादशाह ने अप्रसन्न होकर उनको कारागार में बन्द करवा दिया और कहा—बिना कोई करामात दिखाये छूटने न पाओगे।

कारागार में तुलसीदास ने हनुमानजी की यह स्तुति की :

कानन भूधर बारि बयारि दवा विष ज्वाल महा अरि घेरे।
संकट कोटि परो तुलसी तहँ मातु पिता सुत बन्धु न नेरे॥
राखहिं राम कृपा करिकै हनुमान से पायक हैं जिन केरे।
नाक रसातल भूतल में रघुनायक एक सहायक मेरे॥

× × ×

तोहि न ऐसी बूझिये हनुमान हठीले।
साहेब कहूँ न राम से तो सो न वसीले॥
तेरे देखत सिंह को सिसु मेढक लीले।
जानत हौं कलि तेरेऊ मनु गुनगन कीले॥
हाँक सुनत दसकंध के भये बंधन ढीलें।
सो बल गयो किधौं भये अब गर्व गहीले॥
सेवक को परदा फटै तू समरथ सीलें।
अधिक आपु तें आपुनो सुनि मान सही ले॥
साँसति तुलसीदास की देखि सुजस तुही ले।
तिहूँ काल तिनको भलो जे राम रँगीले॥

तुलसीदास की यह प्रार्थना व्यर्थ नहीं गई। हनुमानजी ने बन्दरों को भेजकर बादशाही किले, स्वयं बादशाह और बेगमों की दुर्गति करा डाली। बादशाह दौड़कर तुलसीदास के चरणों पर गिरा, तब तुलसीदास ने शान्ति के लिए हनुमानजी की यह स्तुति की :

अति आरत अति स्वारथी अति दीन दुखारी।
इनको विलगु न मानिये बोलहिं न बिचारी॥
लोक-रीति देखी-सुनी व्याकुल नर-नारी।
अति बरसे अनवरसेहूँ देहिं दैवहिं गारी॥
ना कहि आये नाथ सों भई साँसति भारी।
कहि आये, कीबी छमा निज ओर निहारी॥
समय साँकरे सुमिरिये समरथ हितकारी।
सो सब विधि दाया करै अपराध बिसारी॥
बिगरी सेवक की सदा साहेबहि सुधारी।
तुलसी पै तेरी कृपा निरुपाधि निरारी॥

तुलसीदास की स्तुति से वन्दरों का उपद्रव रुक तो गया, पर बादशाह को दंडस्वरूप अपना किला हनुमानजी के लिए छोड़ देना पड़ा।

प्रियादासजी ने भी इस कथा पर दो कवित्त लिखे हैं। आश्चर्य की बात है कि मुग़लों के दो बड़े प्रसिद्ध बादशाह अकबर (सं० १६१३–१६६२) और जहाँगीर (सं० १६६२–१६८४) तुलसीदास के जीवन-काल में होकर गुजरते हैं, और दोनों के अलग-अलग प्रामाणिक इतिहास भी मिलते हैं, पर किसी के इतिहास में हम तुलसीदास का नाम भी नहीं पाते, उनके दिल्ली जाने और वन्दरों से उत्पात मचवाने की तो बात ही क्या? अबुलफ़ज़ल ने अकबर का जीवन-चरित 'आईने अकबरी' में बड़ी ही तत्परता से लिखा है; पर उसमें भी तुलसीदास का नाम नहीं है। 'जहाँगीरनामा' में भी तुलसीदास के दिल्ली जाने और दरबार में उपस्थित होने का कोई जिक्र नहीं। फिर किस दिल्लीपति के समय में तुलसीदास दिल्ली गए थे, यह ठीक-ठीक कहा नहीं जा सकता।

पर तुलसीदास के दिल्ली जाने की किंवदन्ती में सत्य का कुछ अंश अवश्य है। दिल्ली में कुतुब के रास्ते पर एक स्थान है, जहाँ मुसलमान फ़क़ीर एक स्थान दिखलाकर यह कहते हैं कि यहाँ बाबा तुलसीदास जब दिल्ली आये थे, तब ठहरे थे, और पैसा माँगते हैं। मैंने भी वह स्थान देखा है। उस स्थान को सुप्रसिद्ध पुरातत्त्वज्ञ श्री काशीप्रसाद जायसवाल ने भी देखा है। यह बात 'नागरी-प्रचारिणी-पत्रिका' के किसी पिछले अङ्क में छपी हुई उनकी एक चिट्ठी से मुझे मालूम हुई है। अतएव तुलसीदास का दिल्ली जाना असत्य नहीं जान पड़ता। बाकी चमत्कार की बात तो तुलसीदास और हनुमानजी के अंतरंग भक्तों के हिस्से की चीज़ है; मुझे न उसका अनुभव है और न विश्वास है।

प्रयाग के कायस्थ-पाठशाला कालेज के एक रिटायर्ड प्रोफेसर मुंशी गणेशी-लाल साहब ने मुझे यह लिखकर भेजा था कि 'अकबरनामा' की हस्तलिखित प्रति में, जो जयपुर के राज-पुस्तकालय में है, अकबर के साथ बाबा तुलसीदास के शतरंज खेलने की बात लिखी हुई है। मैंने यह 'अकबरनामा' नहीं देखा; पर मुन्शीजी ने उसे देखा है। तुलसीदास शतरंज खेलना जानते थे, यह तो दोहावली के दोहों से भी विदित होता है, और यह अनुमान भी किया जा सकता है कि तुलसीदास सब ज्योतिष जानते थे, तंत्र-मंत्र भी जानते थे, संगीत के अच्छे मर्मज्ञ थे और राजा-रईसों में उनका आना-जाना भी रहा होगा, तब उनके संसर्ग में रहकर वे शतरंज न जानते हों, यह आश्चर्य की बात होगी। यदि अकबर के साथ वे शतरंज खेला करते थे, तब तो अकबर से उनकी निकटता स्वीकार करनी पड़ेगी। पर अबुलफ़ज़ल ने उनकी उपेक्षा क्यों की? इसका उत्तर अब कोई नहीं दे सकता।

फुटकर

१—पण्डित घनश्याम शुक्ल संस्कृत के अच्छे कवि थे। वे भाषा की कविता भी लिखते रहते थे। इस पर किसी पण्डित ने आपत्ति की कि देववाणी में न लिखने से ईश्वर अप्रसन्न होता है। शुक्लजी ने तुलसीदास से पूछा। तुलसीदास ने उत्तर दिया :

का भाषा का संस्कृत, प्रेम चाहिए साँच।
काम जो आवै कामरी, का लै करै कमाँच॥

२—तुलसीदास जब प्रह्लाद-घाट पर रहा करते थे, तब एक बार वे रात में कहीं से लौट रहे थे। रास्ते में चोरों ने उन्हें घेर लिया। इस पर तुलसीदास ने हनुमानजी को स्मरण किया और यह दोहा पढ़ा :

बासर ढासनि के ढका, रजनी चहुँदिसि चोर।
दलत दयानिधि देखिये, कपि केसरी किसोर॥

तब हनुमानजी ने अपना भयानक रूप दिखलाया, जिससे चोर डरकर भाग गए।

३—एक दिन तुलसीदास मणिकर्णिका घाट पर नहा रहे थे। एक पंडित ने पूछा—संस्कृत के विद्वान् होकर आपने गँवारी भाषा में ग्रन्थ क्यों बनाया? तुलसीदास ने उत्तर दिया :

मनि भाजन बिष पारई, पूरन अमी निहारि।
का छाँड़िय का संग्रहिय, कहहु विवेक विचारि॥

४––एक दिन एक फ़क़ीर ने आकर 'अलख-अलख' पुकारा। तुलसीदास ने कहा :

हम लखु हमैं हमार लखु, हम हमार के बीच।
तुलसी अलखै का लखै, राम नाम जपु नीच॥

५––श्रीरामदास गौड़ लिखते हैं––

"खलों को सुधारने के सम्बन्ध में एक कथा हमने अपनी बाल्यावस्था में सुनी थी।[1] एक बार गोस्वामीजी जाड़े में आधी रात को कहीं से लौटे आ रहे थे। राह में चोरों का एक दल मिल गया। अँधेरे में इनकी आहट पाकर एक ने पूछा––'तू कौन है ?' यह बोले––'भाई, जो तुम सो मैं।' कहा–'अकेला ही है ?' बोले–'हां।' पूछा––'तो नये-नये निकले जान पड़ते हो। अच्छा, चाहो तो हमारे साथ हो लो।' गोस्वामीजी साथ हो लिये। इन्हें पहरे पर रखकर सेंध लगाई। जब चोर चोरी करने अन्दर गये, तब इन्होंने झोली में से शंख निकाला और बजाया। चोर भाग खड़े हुए, तो यह भी उनके साथ भागे। दूसरी जगह वह घर में पैठे और पहले की तरह इन्हें पहरे पर रखा। फिर शंख बजा और जाग और भगदड़ हुई। इस बार किसी चोर ने गोस्वामी जी को शंख बजाते देख लिया था। जब एकान्त में सब एकत्र हुए, तो उसने नये चोर पर अपना सन्देह प्रकट किया। गोस्वामीजी ने स्वीकार कर लिया कि 'शंख मैंने बजाया था, तुमने मुझे पहरे पर रखा था कि कोई जोखिम देखना तो तुरन्त बताना। मैंने बहुत जोखिम देखकर ही दोनों बार शंख बजाया। मैंने देखा कि भगवान् रामचन्द्र तुमको चोरी करते देख रहे हैं; दंड अवश्य मिलेगा। सो मैंने अपनी झोली से तुमको चेतावनी देने को शंख निकालकर बजा दिया।' गोस्वामीजी की बातें सुनकर चोर उन्हें पहचान गए और उनके चरणों पर गिरे। चोरी छोड़ दी और उनके शिष्य हो गए।"

६—'रामचरितमानस' को काशी के संस्कृताभिमानी पंडित प्रामाणिक ग्रन्थों की कोटि में रखने को प्रस्तुत नहीं थे। पर उसकी बढ़ती हुई लोकप्रियता को वे रोक भी नहीं सकते थे। तब उन्होंने यह चाल चली कि यदि विश्वनाथजी इस पर सही कर दें, तो यह ग्रन्थ प्रामाणिक माना जाय। इसके अनुसार रात के समय 'मानस' की एक प्रति विश्वनाथजी के मन्दिर में रख दी गई। सवेरे पट खुलने

---

१ यह कहानी स्वर्गीय पितृ-चरणों से प्राप्त हुई थी। उन्होंने शायद पंडित वन्दन पाठक से सुनी थी। मैंने कहीं किसी जीवनी में इसका उल्लेख नहीं देखा। —लेखक

पर उस पर विश्वनाथजी की स्वीकृति पाई गई। पता नहीं, विश्वनाथजी की स्वीकृति वाला 'मानस' अब कहाँ है ?

इतने ही से पंडितों को सन्तोष नहीं हुआ। उन्होंने फिर प्रश्न उठाया कि 'मानस' श्रुति, स्मृति, पुराण, काव्य में किस कोटि का माना जाय। अगली रात 'मानस' उपर्युक्त विषयक ग्रन्थों के साथ सबके नीचे रखा गया सबेरे यह सबके ऊपर रखा हुआ मिला।

इतने पर भी पंडितगण पीछे नहीं हटे। वे 'रामचरितमानस' को उड़ा लेने की चिन्ता में प्रवृत्त हुए। उन्होंने उसके लिए कुछ चोर नियुक्त किये। चोर जब 'मानस' को चुराने के लिए तुलसीदास की कुटी पर पहुँचे, तब वहाँ उन्होंने तुलसीदास से क्षमा-प्रार्थना की। तुलसीदास ने देखा कि उनके राम को उनके लिए कितना कष्ट उठाना पड़ता है। तब उन्होंने कुटी की सब चीजें लुटा दीं और 'मानस' को टोडरमल के यहाँ रखवा दिया।

७—एक ब्राह्मण को ब्रह्म-हत्या लगी थी। वह प्रायश्चित्त के लिए तीर्थाटन करता हुआ काशी आया और तुलसीदास के पास पहुँचा। तुलसीदास ने उसके मुँह से राम-नाम कहलाकर उसे पवित्र कर लिया और उसके साथ भोजन भी किया। इस पर काशी के पंडित बहुत बिगड़े। विरोध के लिए एक ब्राह्मण-सभा की गई और उसम तुलसीदास को बुलाकर उनसे पूछा गया कि उन्होंने ऐसा शास्त्र-विरुद्ध कार्य क्यों किया ? तुलसीदास ने समस्त शास्त्रों से राम-नाम की महिमा का प्रतिपादन करके अपने कार्य का समर्थन किया। इस पर यह निर्णय हुआ कि शिवजी का नाँदिया इस हत्यारे ब्राह्मण के हाथ का भोजन ग्रहण कर लेगा, तो हम लोग इसे शुद्ध समझ लेंगे। नन्दीश्वर के सामने जब उस हत्यारे के हाथ से पक्वान्न रखे गए, तब नन्दीश्वर ने सब पा लिये। इस पर तुलसीदास का जय-जयकार होने लगा।

८—काशी वालों ने तुलसीदासजी की हत्या के कई प्रयत्न किये, पर जब एक भी प्रयत्न सफल न हुआ, तब उन्होंने तंत्र-मंत्र की शरण ली। काशी के प्रसिद्ध तांत्रिक वटेश्वर को तुलसीदास की हत्या के लिए नियुक्त किया गया। उसने काशी के कोतवाल भैरवजी को प्रेरित किया। पर जब भैरव जी ने तुलसीदास के पास पहुँचकर देखा कि वहाँ बजरङ्गबली पहले से ही प्रस्तुत हैं, तब वे लौट गए और उन्होंने वटेश्वर को ही मार डाला।

६—विहार के सारन जिले में हरीराम ब्रह्म (हरसू ब्रह्म) का स्थान है। कमकशाही विसेन के अत्याचार से पीड़ित होकर हरीराम ने आत्म-हत्या कर ली थी। वहाँ रामनवमी के दिन बड़ा मेला होता है। कहा जाता है कि उन हरी-

राम के यज्ञोपवीत के अवसर पर तुलसीदास भी उपस्थित थे।

१०—बङ्गाल से आये हुए एक क्रोधी पंडित रविदत्त शास्त्री को काशी के पंडितों ने तुलसीदास से शास्त्रार्थ के लिए भिड़ा दिया। पर जब वह हार गया तब लट्ठ लेकर दौड़ा। पर सामने उसे हनुमानजी खड़े दिखाई पड़े और वह भयभीत होकर भाग गया।

शास्त्र और शस्त्र दोनों से हारकर रविदत्त ने अनुनय-विनय से काम निकालना चाहा। उसने तुलसीदास की सेवा-शुश्रूषा करके उनको प्रसन्न किया और वरदान माँगा। साधु-स्वभाव तुलसीदास उसके फेर में आ गए और उन्होंने उसे वरदान माँगने की स्वीकृति दे दी। इस पर उसने यह माँगा कि आप काशी छोड़कर चले जाइए। तुलसीदास अपने वचन के लिए विवश थे। वे विश्वनाथजी की प्रार्थना करके काशी से चले गए। शिवजी ने तुलसीदास को स्वप्न देकर उन्हें रास्ते में ठहरने के लिए आदेश दिया और काशी वालों को स्वप्न देकर बहुत डराया-धमकाया। तब काशी के लोग तुलसीदास के मित्र टोडरमल को आगे करके गये और उन्हें मना लाये। तब से वे गोपाल-मन्दिर छोड़कर अस्सी पर रहने लगे।

११—नाभाजी से मिलने के लिए तुलसीदास जब वृन्दावन गये, तब उन्हें वहाँ सर्वत्र कृष्ण ही का नाम सुनकर आश्चर्य हुआ। वहाँ राम का नाम उन्हें कहीं सुनने को भी न मिला, तब उन्होंने यह दोहा कहा :

राधा कृष्ण सबै कहैं, आक ढाक अरु कैर।
तुलसी या ब्रज मों कहा, सियाराम सों बैर॥

जब वे गोपाल-मन्दिर में पहुँचे, तब श्रीकृष्ण की मूर्ति के सामने खड़े होकर उन्होंने यह दोहा पढ़ा :

कहा कहौ छवि आज की, भले बने हो नाथ।
तुलसी मस्तक तब नवै, धनुष-बान लो हाथ॥

इसे सुनकर कृष्ण ने राम का रूप धारण कर लिया और तब तुलसीदास ने उन्हें प्रणाम किया।

महाराष्ट्र कवि मोरो पन्त ने भी 'केकावली' में इस घटना का उल्लेख किया है :

श्रीकृष्ण मूर्ति जेणें केली श्रीराममूर्ति सज्जन हो।
रामसुत मयूर म्हणें त्याचा सुयशोमृतांत मज्जन हो॥

१२—हिन्दी के प्रसिद्ध कवि केशवदास, जो ओरछा के राजा इन्द्रजीतसिंह के दरबारी कवि थे, एक प्रेत-यज्ञ में जलकर प्रेत हो गए थे। तुलसीदास जब

ओरछा गये और एक कुए से पानी लेने लगे, तब केशवदास ने लोटा पकड़ लिया और कहा - मुझे प्रेत-योनि से छुड़ाइये, तब लोटा छोड़ूँगा। तुलसीदास ने कहा—अपनी 'रामचन्द्रिका' का २१ बार पाठ करो, तब तुम्हारी मुक्ति होगी।

केशवदास ने कहा—'रामचन्द्रिका' के पहले छन्द का पहला अक्षर मैं भूल गया हूँ।

तुलसीदासजी ने स्मरण दिला दिया, तब २१ बार पाठ करके केशवदास प्रेत-योनि से मुक्त हुए।

१३—एक बार एक ब्राह्मण दरिद्रता से घबराकर आत्म-हत्या करने पर उतारू हुआ। तुलसीदास ने उसकी दीन-दशा पर तरस खाकर मंदाकिनी (नदी) से प्रार्थना करके दरिद्र-मोचन नाम की शिला प्रकट करवा दी, जिसके प्रभाव से ब्राह्मण की दरिद्रता दूर हुई। चित्रकूट में रामघाट पर जहाँ उक्त शिला प्रकट हुई थी, उस स्थान का नाम अब तक दरिद्र-मोचन है।

१४—एक बार एक तांत्रिक की स्त्री को एक वैरागी निकाल ले गया। तांत्रिक ने तन्त्र-बल से बादशाह को पकड़ मँगाया और यह हुक्म जारी करा दिया कि जितने माला और तिलक वाले मिलें, सबकी मालाएँ उतार ली जायँ और तिलक मिटा दिये जायँ। इससे काशी के वैरागियों में बड़ा हाहाकार मचा। बहुतों की माला छीनी गईं और तिलक मिटाये गए। जब बादशाही दूत तुलसीदास के पास पहुँचे, तब उन्हें जहाँ-तहाँ भयंकर देव दिखाई दिए, जिनसे डरकर वे भाग गए और सबकी माला और तिलक फिर ज्यों-के-त्यों हो गए।

१५—काशी में भुलई साहू नाम का एक कलवार था। वह साधु-सन्तों की निन्दा किया करता था। पर उसकी स्त्री साधु-सन्तों में श्रद्धा रखती थी। एक दिन भुलई मर गया। उसे लोग श्मशान की तरफ लिये जाते थे कि रास्ते में उसकी स्त्री को, जो रोती-पीटती पीछे-पीछे जा रही थी, तुलसीदास मिले। उसने तुलसीदास को प्रणाम किया। तुलसीदास ने अभ्यास के अनुसार कह दिया—सौभाग्यवती हो। स्त्री ने कहा—महाराज, आपका वचन तो मिथ्या होना चाहता है, मेरा पति तो मर गया। तुलसीदास ने उसके पति की लाश को वापस मँगाया और उसे चरणामृत पिलाकर जीवित कर दिया।

१६ मुर्दों को जिला देने के चमत्कार से लोग बहुत आकर्षित हुए और तुलसीदास के दर्शनों के लिए उनकी कुटी पर भीड़ जमा रहने लगी। इससे उनके भजन में बाधा पड़ने लगी। तब उन्होंने कुटी से बाहर निकलना ही छोड़ दिया। हृषीकेश, शान्तिपद और दातादीन ये तीन उनके भक्त थे। तुलसीदास का दर्शन किये बिना वे अन्न-जल न ग्रहण करते थे। इससे तुलसी-

दास दिन में एक बार उनको दर्शन देने के लिए कुटी से बाहर आया करते थे। लोग इस बात को तुलसीदास का पक्षपात समझते थे। तुलसीदास एक दिन उनके लिए भी बाहर न निकले। परिणाम यह हुआ कि वे तीनों कुटी के द्वार पर तड़प-तड़पकर मर गए। तब लोगों को उनके सच्चे प्रेम पर विश्वास हुआ। तुलसीदास ने तीनों को चरणामृत पिलाकर जीवित कर दिया।

१७—एक दिन तुलसीदास कहीं जा रहे थे। राह में उन्हें ब्राह्मण की एक स्त्री मिली, जो अपने मृत पति के साथ सती होने जा रही थी। तुलसीदास को देखकर उसने उनके चरण छूकर प्रणाम किया। तुलसीदास ने आशीर्वाद दिया—सौभाग्यवती हो। स्त्री ने कहा—मैं तो विधवा हो गई हूँ, और अब सती होने जा रही हूँ। तुलसीदास बड़े विचार में पड़े। अन्त में उन्होंने राम-नाम के प्रभाव से उसके मृत पति को जीवित कर दिया। प्रियादास ने 'भक्त-माल की टीका' में इस घटना का उल्लेख किया है।

भारत के पुण्य-राशि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने इस कथा में एक नवीन प्राण डालकर इसे इस बीसवीं सदी में सती होने से बचा लिया है। कवि रवीन्द्रनाथ ने इस घटना को अपनी इस कविता द्वारा इस प्रकार अमरत्व प्रदान किया है:

स्वामी-लाभ

एकदा तुलसीदास जाह्नवीर तीरे निर्जन श्मशाने,
सन्ध्याय आपन मने एका एका फिरे माति निज गाने।
हेरिलेन, मृत पति चरणेर तले वसियाछे सती,
तारि सने एक साथे एक चितानले मरिवारे मति।
संगिगन माझे माझे आनन्द चीत्कारे करे जयनाद,
पुरोहित ब्राह्मणेरा घेरि चारि धारे गाहे साधुवाद।
सहसा साधु रे नारी हेरिया सम्मुखे करिया प्रणति,
कहिल विनय "प्रभो, आपने श्रीमुख देह अनुमति।"
तुलसी कहिल "मातः, जावे कोन् खाने एत आयोजन ?"
सती कहे "पती सह जाव स्वर्गपाने करियाछि मन।"
"धरा छाड़ि केन नारी, स्वर्ग चाह तुमि" साधु हासि कहे,
"हे जननी स्वर्ग जाँर ए धरणी भूमि ताँहारि कि नहे ?"
बुझिते ना पारि कथा नारि रहे चाहि विस्मये अवाक्—
कहे कर जोड़ करि—"स्वामी यदि पाइ स्वर्ग दूरे थाक्।"
तुलसि कहिल हासि "फिरे चलो घरे कहितेछि आमि,
फिरे पावे आज ह'ते मासेकेर परे आपनार स्वामी।

रमनी आशार वश गृहे फिरे जाय श्मशान तेयागि';
तुलसी जाह्नवी तीरे निस्तब्ध निशाय रहिलेन जागि'।
नारी रहे शुद्ध चिते निर्जन भवने; तुलसी प्रत्यह,
कि ताहारे मंत्र देय नारी एक मने ध्याय अहरह।
एक मास पूर्ण हते प्रति वेशी दले आसि' ता'र द्वारे,
शुधाइल-"पेले स्वामी ?" नारी हासि बले-पेयेछि ताँहारे
शनि व्यग्र कहे ता'रा-"कह तबे कह" आछे कोन् घरे ?
नारी कहे "रयेछेन प्रभु अहरह आमारि अन्तरे॥

('कथा' से उद्धृत)

अर्थ—

एक वार तुलसीदास संध्या समय, गंगा-तट पर, निर्जन श्मशान-भूमि में, अकेले अपने गान में निमग्न घूम रहे थे ।

उन्होंने देखा, एक सती अपने मृत पति के साथ एक ही चिताग्नि में अपने प्राण विसर्जन करने के लिए उसी के चरणों के पास बैठी है ।

उसके साथ के लोग बीच-बीच में आनन्द-घोष के साथ जयनाद करते थे और पुरोहित और ब्राह्मण चारों ओर से घेरकर आशीर्वाद देते थे ।

यकायक स्त्री ने साधु (तुलसीदास) को सामने देखा और प्रणाम करके कहा—प्रभो ! अपने श्रीमुख से अनुमति दीजिये ।

तुलसीदास ने कहा—माता ! कहाँ जाने की ऐसी तैयारी हो रही है ? सती ने कहा—पति के साथ स्वर्ग जाने की इच्छा है ।

साधु (तुलसीदास) नें हँसकर कहा—तुम पृथ्वी छोड़कर क्यों स्वर्ग जाना चाहती हो ? हे माता ! स्वर्ग जिनका है, क्या यह भूमि भी उन्हीं की नहीं है ?

स्त्री समझ न सकी । वह विस्मित और अवाक् होकर उन्हें देखने लगी । फिर उसने हाथ जोड़कर कहा—स्वामी मिल जायें, तो स्वर्ग की मुझे परवाह नहीं ।

तुलसीदास ने हँसकर कहा —तुम घर लौट चलो । मैं कहता हूँ, आज से एक मास के पश्चात् तुम अपने स्वामी को पा जाओगी ।

स्त्री आशा-वश श्मशान छोड़कर घर वापस गई । तुलसीदास गंगा-तट पर उस निस्तब्ध रात्रि भर जागते रहे ।

स्त्री शुद्ध चित्त से अपने निर्जन भवन में रहती रही । तुलसीदास प्रतिदिन

जो मन्त्र उस नारी को सिखाते थे, वह निरन्तर उसी का ध्यान किया करती थी।

एक मास पूर्ण होते ही पड़ोसियों ने द्वार पर आकर पूछा—स्वामी मिला ? स्त्री ने हँसकर कहा—हाँ, मैंने उन्हें पा लिया है।

यह सुनकर उन लोगों ने व्यग्रता से पूछा—बताओ, बताओ, वह किस घर में है ? स्त्री ने कहा—मेरे वह नाथ निरन्तर मेरे ही अन्तर में विराजमान हैं।

१८—एक ठाकुर के एक बड़ी रूपवती कन्या थी। संयोग से उसका विवाह एक कन्या से हो गया। कन्या की माता ने उसके जन्म के समय यह घोषणा करा दी थी कि पुत्र हुआ है। पुत्र ही की तरह उसका लालन-पालन भी हुआ था। विवाह हो जाने पर यह रहस्य खुला। इससे ठाकुर साहब के घर में शोक छाया हुआ था। संयोग से उसी समय तुलसीदास, जो बादशाह के बुलाने पर दिल्ली जा रहे थे, ठाकुर साहब के यहाँ जा ठहरे। ठाकुर की मनोव्यथा देखकर तुलसीदास को दया आई। उन्होंने नौ दिन वहीं रहकर 'रामचरितमानस' का पाठ किया, जिसके प्रभाव से ठाकुर की कन्या पुरुष हो गई। तभी से 'मानस' के नवाह्निक पाठ की प्रथा चल निकली है।

इस घटना के प्रमाण में 'दोहावली' के ये दोहे दिये जाते हैं :

कबहुँक दरसन सन्त के, पारसमनी अतीत।
नारि पलटि सो नर भयो, तेल प्रसादी सीत॥
तुलसी रघुबर सेवतहि, मिटिगो कालो काल।
नारि पलटि सो नर भयो, ऐसे दीनदयाल॥

१९ 'मानस' के बाल-कांड में इस सोरठे के तीन चरण :

संकर चाप जहाज, सागर रघुबर बाहुबल।
बूड़े सकल समाज,

लिखकर तुलसीदास चिन्ता में पड़ गए कि सकल समाज में तो राम-लक्ष्मण जी थे, क्या वे भी डूब गये ? यहीं उन्होंने लेखनी रख दी। रात में हनुमानजी ने चौथा चरण 'चढ़े जे प्रथमहिं मोह बस' लिखकर सोरठा पूरा कर दिया।

२०—कहा जाता है कि तुलसीदास पर आमेर के महाराजा मानसिंह और उनके भाई जगतसिंह भी बड़ी श्रद्धा रखते थे। वे प्रायः उनके पास आया करते थे। एक बार किसी ने पूछा—पहले तो आपके पास कोई नहीं आता था, अब बड़े-बड़े राजा-महाराजा आने लगे। तुलसीदास ने कहा :

घर-घर माँगे टूक पुनि, भूपति पूजे पाय।
ते तुलसी तब राम बिनु, ते अब राम सहाय।।

२१—दिअरा (सुलतानपुर—अवध) के राज-भवन में एक चौकठ लगी है, जिसके सम्बन्ध में मुझे बताया गया था कि तुलसीदास नें उसे लाँघा था। वहाँ उस चौखट के साथ तुलसीदास की यह स्मृति सजीव हो रही है।

२२—तुलसीदास ने भिन्न-भिन्न स्थानों की यात्राएँ की थीं। चित्रकूट, काशी, अयोध्या तो उनके मुख्य निवास-स्थान थे ही, वे तीर्थ-स्थानों में भी भ्रमण करते रहते थे। प्रयाग, जनकपुर, नैमिषारण्य, लखनऊ, संडीला, मलीहाबाद, मड़ियाहू (जौनपुर) और बिठूर भी वे गये थे। इन स्थानों में उनके जाने और रहने की कथाएँ जनता में परम्परा से चली आ रही हैं। मलीहाबाद में उनके हाथ का लिखा हुआ 'मानस' रखा है। मैंने उसे देखा है, पर उसमें संवत् नहीं दिया होने से मैं निश्चय नहीं कर सका कि वास्तव में वह उन्हीं के हाथ का या समय का है या नहीं। दिल्ली और वृन्दावन जाने की कथाएँ ऊपर दी जा चुकी हैं। वे कुछ दिनों तक राजापुर में भी रहे थे, ऐसी जन-श्रुति है। यद्यपि राजापुर तो उनका जन्म-स्थान ही प्रसिद्ध किया गया है, और गवर्नमेंट ने भी उसे स्वीकार करके अपनी तख्ती लगा दी है, पर वह वास्तविक जन्म-स्थान न होने पर भी कुछ समय तक उनका निवास-स्थान जरूर रहा होगा।

तुलसीदास के चमत्कार की और भी छोटी-मोटी बहुत सी दन्त-कथाएँ हैं। कुछ को तो उनके चरित्र-लेखकों ने अपने-अपने ग्रन्थों में गूँथ लिया है, कुछ सर्व-साधारण की जिह्वा पर हैं। मैंने दोनों में से चुनकर कुछ कथाएँ ऊपर दे दी हैं। इनमें कुछ तो सच्ची ही होंगी। जैसे तुलसी के परिवार और गृह-त्याग की कथा, नाभाजी के भण्डारे में तुलसीदास की उपस्थिति, टोडरमल के साथ उनकी मित्रता तथा भिन्न-भिन्न स्थानों की यात्राएँ आदि। पर जिन कथाओं में चमत्कार शामिल है, उनको तो अलौकिक ही समझना चाहिए। इन कथाओं के आधार पर तुलसीदास का कोई क्रम-बद्ध जीवन-चरित नहीं तैयार किया जा सकता।

सभी देशों में महात्माओं के जीवन-चरित प्रायः अधूरे ही मिलते हैं। वे अपने को समाज में ऐसा निर्लिप्त रखते हैं और मान-प्रतिष्ठा से इतना बचकर रहना चाहते हैं कि जनता उनके व्यक्तिगत जीवन के बारे में उनसे बहुत कम जान पाती है। इसीसे उनमें तरह-तरह की कल्पनाएँ उत्पन्न होकर घर कर लेती हैं और समय पाकर वे सत्य का रूप धारण कर लेती हैं। फिर उन्हें भक्तों के मस्तिष्क से निकाल बाहर करना कठिन हो जाता है। जिस महात्मा

के प्रति लोगों की जैसी श्रद्धा होती है, उसी के परिणाम से उसके चमत्कार की बातें भी गढ़ी जाती हैं। बुद्ध, ईसा, मूसा, मुहम्मद किसी का भी जीवन-चरित्र करिश्मों से खाली नहीं है।

जब महात्मा गांधी जीवित थे तब हममें से करोड़ों ने उनके दर्शन किये थे, लाखों ने उनको सुना है, हजारों ने उनको समझा है और सैकड़ों ने उनके जीवन के सांचे को निकट से देखा है। पर हर एक से अलग-अलग बात कीजिये, तो उनमें से शायद ही कोई महात्मा गांधी के किसी-न-किसी चमत्कार से खाली मिले और हर एक का चमत्कार उसके व्यक्तित्व के सांचे में अलग-अलग ढला हुआ भी होगा।

चमत्कार तो हिन्दू जाति की पैतृक संपत्ति सी है। कोई व्यक्ति अपनी विशेषताओं से ऊपर उठा हुआ या उठता हुआ दिखाई पड़ता है, तो लोग उसके साथ किसी-न-किसी चमत्कार की भावना करने लगते हैं और अधिक समय न देकर स्वयं चमत्कार रचकर उसकी महिमा को चमत्कृत करते रहते हैं। उनको सत्य और मिथ्या की परवाह नहीं होती।

इसी प्रकार तुलसीदास भी चमत्कारों के शिकार हुए हैं। यद्यपि वे स्वयं तो प्रतिष्ठा से भागते थे :

मांगि मधुकरी खात जे, सोवत पांव पसारि।
पाप प्रतिष्ठा बढ़ि परी, तुलसी बाढ़ी रारि॥

× × ×

लोकमान्यता अनल सम कर तप कानन दाह।

पर लोगों को यह रुचता है कि किसी मुर्दे को जिला देने, किसी कन्या को पुत्र बना देने, राम से अपनी कुटी की रखवाली कराने और बन्दरों से बादशाह के महल को उजड़वा डालने का चमत्कार उनकी जीवनी के साथ जरूर रहे। तुलसीदास अपनी निर्बलता और विवशता के लिए कितना ही चिल्लाते रहें, पर उनको चमत्कारों से भरा हुआ देखने ही में लोगों को मजा आता है।

तुलसीदास तो स्वयं अपने मानवीय गुणों से देदीप्यमान हैं; झूठे आश्चर्य-जनक चमत्कारों से उनकी महिमा बढ़ाना उनके व्यक्तित्व का उपहास करना है। श्रद्धालुओं ने भावुकतावश उनकी जीवनी में चमत्कारों का जितना अधिक सौन्दर्य भरा है, वह यदि सत्य नहीं है, तो वह जीवनी को सुन्दर बनाने की अपेक्षा उसे निर्जीव बनाने ही में अधिक सहायक होगा।

तुलसीदास का देहावसान

नीचे लिखे एक दोहे के आधार पर यह कहा जाता है कि तुलसीदास ने

संवत् १६८० में, श्रावण शुक्ला सप्तमी को काशी में शरीर-त्याग किया था।

संवत् सोरह सै असी, असी गंग के तीर।
सावन सुक्ला सत्तमी, तुलसी तजेउ सरीर॥

पर यह दोहा किसने बनाया ? यह किसी को ज्ञात नहीं।

काशी के सुप्रसिद्ध रामायणी श्रीविजयानन्द त्रिपाठी का कथन है कि गोस्वामीजी के अखाड़े में और टोडरमल के वंशज चौधरी लालबहादुर के यहाँ भी श्रावण शुक्ला तीज को तुलसीदास की निधन-तिथि मनाई जाती है। अतएव मेरी राय में भी यही तिथि प्रामाणिक मानी जानी चाहिए।

तिथि के पहले सम्वत् का प्रश्न हल होना चाहिए। सम्वत् १६८० में तुलसीदास का देहान्त हुआ, इसका प्रमाण उक्त दोहे के सिवा और कहीं नहीं मिलता। 'सावन शुक्ला सत्तमी' को तो यह कहकर अशुद्ध बताया जा रहा है कि वह 'भड्डर' के कई दोहों में आने से लोगों की जबान पर था, इससे लोग 'सावन स्यामा तीज' के बदले उसे कहने लगे। पर इसी तरह कोई तर्क करना चाहे, तो कर सकता है कि असी (अंक) और असी (नदी) का तुक मिलता देखकर किसी ने उक्त दोहे में १६८० संवत् डाल दिया है। सम्भव है, तुलसीदास वर्ष-दो वर्ष आगे-पीछे लोकान्तरित हुए हों। इसका उत्तर ही क्या हो सकता है ? मेरी राय में उक्त सम्वत् पञ्चों की राय के सिवा और कोई बल नहीं रखता।

'सावन स्यामा तीज' के आगे कोई 'सनि' शब्द बताते हैं और कोई-कोई 'को'। श्रीश्यामसुन्दरदास ने 'सनि' ही पाठ माना है। पर श्रीरामदास गौड़ का एक लेख मैंने पढ़ा है, जिसमें वे उस दिन 'शुक्रवार' होना मानते हैं, 'सनि' नहीं। अतएव यह पाठ भी अभी भ्रमात्मक ही है।

मृत्यु के सम्बन्ध में एक प्रश्न यह भी उठा हुआ है कि तुलसीदास की मृत्यु कैसे हुई ? कुछ चरित-लेखक कहते हैं कि प्लेग से उनकी मृत्यु हुई; कुछ कहते हैं कि फोड़े से हुई; कुछ कहते हैं, स्वाभाविक रीति से वृद्धावस्था के कारण हुई। मैंने किसी पिछले पृष्ठ पर यह प्रकट किया है कि उनको शक था कि किसी 'खल की उपाधि' से उनको पीड़ा पहुँच रही है; अतएव यह भी सम्भव हो सकता है कि किसी विरोधी ने उनको विष दिया हो, जिससे तमाम बदन में फोड़े निकल आए हों, जैसे स्वामी दयानन्द को विष दिये जाने पर निकले थे। 'कवितावली' में जहां वे अपनी लेखनी छोड़ते हैं,वहाँ तक तो वे बड़े कष्ट में थे। उसके आगे का पता नहीं है कि वे उस कष्ट से मुक्त होकर कुछ दिन और जिये या वही उनका अन्तिम कष्ट था। 'कवितावली' के आधार पर

केवल एक ही बात निश्चित रूप से कही जा सकती है कि वे प्लेग से नहीं मरे थे।

कहा जाता है कि अन्तिम समय में तुलसीदास ने क्षेमकरी पक्षी देखकर यह सवैया कहा था :

कुंकुम रंग सुअंग जितो मुखचंद सो चंदन होड़ परी है।
बोलत बोल समृद्ध चवै अवलोकत सोच त्रिपाद हरी है।
गौरी कि गंग विहंगिनि वेप कि मंजुल मूरति मोद भरी है।
पेपु सप्रेम पयान समै सब सोच विमोचन छेमकरी है॥

इस लोक से प्रयाण करते समय यह दोहा भी उन्हीं का कहा हुआ कहा जाता है :

राम नाम जस बरनि कै, भयो चहत अब मौन।
तुलसी के मुख दीजिये, अब हीं तुलसी सोन॥

दूसरा भाग

तुलसी और उनका काव्य

१
रचनाएँ

इस समय तुलसीदास के रचे हुए जितने ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं, उनकी एक सूची पहले दी जा चुकी है। यह निर्णय करना कि उनमें कौन-कौन सी रचनाएँ वास्तव में तुलसीदास की हैं, जरा कठिन काम है।

तुलसीदास ने कब से कविता लिखनी प्रारम्भ की, इसका भी पता नहीं। केवल 'मानस' का रचना-काल हमें मालूम है कि वह संवत् १६३१ में प्रारम्भ हुआ था। सं० १६३१ के बहुत पहले से तुलसीदास रचना किया करते थे, यह तो स्वीकार ही कर लेना पड़ेगा; क्योंकि 'मानस'-जैसे महाकाव्य का कवि एक दिन में नहीं बना करता। तुलसीदास छात्रावस्था ही से पद्य-रचना करने लगे थे, यह हमें उनकी 'कवितावली' के अनेक छन्दों से विदित होता है।

तुलसीदास की रचनाओं के काल-क्रम पर हम आगे स्वतन्त्र रूप से विचार करेंगे। यहाँ हम उन रचनाओं पर अलग-अलग विचार कर लेना चाहते हैं, जो विशेषज्ञों की सम्मति से उन्हीं की स्वीकार कर ली गई हैं। वे रचनाएँ ये हैं—

१. रामचरितमानस
२. गीतावली
३. कवितावली
४. वैराग्य-संदीपिनी
५. रामाज्ञा-प्रश्न
६. दोहावली
७. पार्वती-मंगल
८. रामलला-नहछू
९. जानकी-मंगल
१०. श्रीकृष्ण-गीतावली
११. बरवै-रामायण
१२. विनय-पत्रिका

इनमें जो संग्रह-ग्रन्थ हैं, जैसे 'दोहावली' और 'कवितावली' आदि, उनके विषय में यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि उनका संकलन तुलसीदास ने स्वयं किया था, या उनके समय में या उनके पश्चात् उनके किसी शिष्य या मित्र ने किया था। प्रत्येक रचना पर अलग-अलग विचार करते समय हम

इस प्रश्न को भी हल करेंगे कि अपनी किन-किन रचनाओं को तुलसीदास ने स्वयं ग्रन्थ का रूप दे दिया था और किन-किन रचनाओं में अन्यों के हाथ लगने की भी सम्भावना हो सकती है।

यहाँ हम उपर्युक्त रचनाओं पर अलग-अलग विचार करते हैं—

रामचरितमानस

'रामचरितमानस' तुलसीदास की सबसे बड़ी और सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण रचना है। इसका प्रारम्भ-काल 'मानस' में इस प्रकार दिया हुआ है :

संवत् सोरह सै इकतीसा। करौं कथा हरि पद धरि सीसा।
नौमी भौमवार मधु मासा। अवधपुरी यहा चरित प्रकासा।

इससे इतना तो स्पष्ट ही है कि संवत् १६३१ में, चैत्र की नवमी को, जो मंगलवार को पड़ी थी, अयोध्या में 'रामचरितमानस' का प्रकाश हुआ। पर यहाँ सन्देह उठ खड़ा होता है कि उपर्युक्त सूचना तुलसीदास ने बाल-काण्ड में ७ श्लोक, १० सोरठे, ३२८ चौपाइयाँ, ४४ दोहे और १ छन्द लिख लेने के बाद दी है। इससे यह तो मान ही लेना चाहिए कि तुलसीदास ने उस दिन कम-से-कम उतने छन्द अवश्य लिख डाले थे। यद्यपि तुलसीदास-जैसे प्रतिभाशाली कवि के लिए यह असम्भव नहीं, पर मुझे सन्देह है कि नवमी ही को उन्होंने उतना लिख लिया होगा। रामनवमी का उत्सव भी तो बाधक हुआ होगा।

मेरा अनुमान है कि तुलसीदास ने अयोध्या में पहले-पहल अयोध्या-कांड लिखा था। 'अवधपुरी यह चरित प्रकासा' से यही ध्वनि निकलती भी है। 'प्रकासा' भूतकालिक क्रिया है। इसके अर्थ की रक्षा तभी हो सकती है, जब हम या तो कुल 'मानस' को या कम-से-कम अयोध्या-कांड को उक्त चौपाई के लिखे जाने के पूर्व का रचा हुआ मान लें। बाल-कांड का प्रारम्भिक अंश तो सम्पूर्ण 'मानस' की भूमिका है, जो कम-से-कम अयोध्या-कांड या सम्पूर्ण मानस के बाद ही का लिखा हुआ होना चाहिए।

अयोध्या-कांड को तुलसीदास ने पहले रचा था, इसके प्रमाण में मैं ये युक्तियाँ उपस्थित करता हूँ—

१—अयोध्या-कांड में तुलसीदास ग्रन्थारम्भ की यह सूचना देते हैं :

श्रीगुरु चरन सरोज रज, निज मन मुकुर सुधारि।
बरनौं रघुबर विमल जसु, जो दायकु फल चारि॥

जब बाल-काण्ड में वे 'करौं कथा हरिपद धरि सीसा' कह ही चुके थे, तब अयोध्या-काण्ड में फिर उसके दुहराने की क्या आवश्यकता थी? ऐसा

आगे के और किसी काण्ड में नहीं हुआ है।

२—अयोध्या-काण्ड का एक निश्चित स्वरूप है। उसमें साधारणतः आठ चौपाइयों पर एक दोहा और पचीस दोहों पर एक छन्द तथा सोरठे का क्रम आदि से अन्त तक रखा गया है। यद्यपि दो-तीन स्थानों पर सात-सात चौपाइयों पर भी दोहा आ गया है, पर इससे यह प्रमाणित नहीं हो सकता कि अयोध्या-काण्ड की सारी रचना अपने-आप आठ-आठ चौपाइयों के बाद एक-एक दोहे की हो गई है और उसमें कवि का बुद्धि-प्रयोग कारण नहीं हुआ है। मेरा दृढ़ विश्वास है कि तुलसीदास ने अयोध्या-काण्ड में दोहे, चौपाई, छन्द और सोरठे का क्रम जान-बूझकर एक निश्चय के अनुसार रखा है। जहाँ कहीं इस क्रम का विपर्यय हुआ है, वह कवि की असावधानी भी कही जा सकती है, और यह भी हो सकता है कि वहाँ की चौपाई नकल करने वालों से छूट गई होगी; जैसा राजापुर के अयोध्या-काण्ड में हुआ है, जिसे मैं आगे प्रमाणित करूँगा। जिस क्रम से अयोध्या-काण्ड की रचना हुई है, वह क्रम और किसी काण्ड में दिखाई नहीं पड़ता। इससे स्पष्ट है कि अयोध्या-काण्ड का प्रारम्भ और अन्त किसी खास विचार-धारा में हुआ है, और वह विचार-धारा आगे चलकर अन्य काण्डों में बदल गई है।

३—अयोध्या-काण्ड में उमा-महेश्वर-सम्वाद, याज्ञवल्क्य-भारद्वाज-सम्वाद, गरुड़-काकभुशुण्डि-सम्वाद और गुरु-गोसाईं-सम्वाद की कहीं गन्ध भी नहीं है। उसकी रचना के समय, कवि के हृदय में 'मानस' और उसके 'घाट मनोहर चारि' की कल्पना भी नहीं जान पड़ती।

४—अयोध्या-काण्ड की रचना आदि से अन्त तक प्रौढ़ है। उसमें कवि की सजगता सर्वत्र पाई जाती है। कहीं शिथिलता नहीं आने पाई है। वह सर्वाङ्ग सुन्दर और 'मानस' के शेष सब काण्डों से श्रेष्ठ है। उसमें उत्तम कविता के सभी लक्षण वर्तमान हैं। रसों का परिपाक उसमें बड़ी सफलता के साथ हुआ है, और विविध अलंकारों से उसकी सारी कविता जगमगा रही है। अयोध्या-काण्ड तुलसीदास की कविता का वसन्त है। उसमें कवि ने अपना पूर्ण विकास दिखलाने का प्रयत्न किया है। उनका ऐसा प्रयास और किसी काण्ड में नहीं मिलता। इससे वह सबसे पहले का रचा हुआ जान पड़ता है।

५—अयोध्या-काण्ड के प्रारम्भ में केवल शिव और राम की वन्दना है। यह भी इस बात का प्रमाण है कि उस समय तक तुलसीदास केवल शिव और राम के उपासक थे, अन्य देवों के झमेले में नहीं पड़े थे। 'रामचरितमानस' नाम से एक बड़ा काव्य रचकर उसे धर्म-ग्रन्थ का रूप देने का विचार उनके

मन में उस समय तक जागा ही नहीं था। अयोध्या-काण्ड लिखे जाने के पश्चात् काशी आने पर उनके मन में यह विचार उठा कि राम-चरित्र को इस प्रकार लिखें कि सब सम्प्रदायों और सब श्रेणियों के लोग उससे लाभ उठायें। यह विचार उठते ही उन्होंने अन्य देशों को सम्मिलित किया; प्राचीन सम्वादों से शृङ्खला जोड़ी; 'मानस' की कल्पना की और इस प्रकार जब उन्होंने अपने लिए एक नया राज-मार्ग खोल लिया, तब उस पर सम्वत् १६३१, चैत्र शुक्ला नवमी, मंगलवार को उन्होंने चलना प्रारम्भ किया। यहीं पर यह समझ लेना चाहिए कि ७ श्लोक, १० सोरठे, ३२८ चौपाइयाँ, ४४ दोहे और एक छन्द लिख लेने के बाद उन्होंने 'मानस' का प्रारम्भ किया है। अयोध्या-काण्ड स्वतन्त्र रूप से उसके पहले रचा जा चुका था, जो बाल-काण्ड की समाप्ति पर उसके आगे जोड़ लिया गया।

इतना ही नहीं, मैं तो यह भी अनुमान करता हूँ कि अयोध्या-काण्ड समाप्त करके तुलसीदास ने बाल-काण्ड का अन्तिम भाग पहले लिखा और फिर बाल-काण्ड की प्रारम्भिक भूमिका लिखकर उसे पूरा किया। अयोध्या-काण्ड में कवि की प्रतिभा का जैसा प्रकाश दिखाई पड़ता है, वैसा ही नहीं तो उससे थोड़ा ही क्षीण हम बाल-काण्ड में राम और सीता के प्रथम दर्शन से लेकर अन्त तक पाते हैं। अयोध्या-काण्ड में कवि ने आदि से अन्त तक केवल करुण-रस का अविराम प्रवाह बढ़ाया है, काव्य के अन्य रसों की धाराएँ उसके हृदय में प्रबल वेग से उमड़ रही थीं और निकलने का मार्ग चाहती थीं। अतएव कवि के लिए यह स्वाभाविक था कि वह शृङ्गार और हास्य-रस के लिए भी मार्ग देता। और उसने राम का विवाह-प्रसंग लेकर उसके द्वारा अपनी स्वाभाविक सुरुचि और कवित्व-शक्ति का परिचय दिया भी है। इसके बाद तो वह कवि न रहकर भक्त और समाज-सुधारक बन गया है।

तुलसीदास की विचार-धारा में इतना बड़ा परिवर्तन कोई साधारण घटना नहीं है। वे कवि के रूप में हमारे सामने आते-आते भक्त और सुधारक का रूप धर लेते हैं। उस समय की उनकी मनोदशा की कल्पना भी हमें बड़ी ही मनोहर जान पड़ती है, जब वे जगत् के कल्याण का बीज बोने के लिए एक चतुर किसान की तरह खेत तैयार कर रहे थे। अयोध्या-काण्ड में कवि कहलाने की उनकी प्रबल इच्छा पद-पद पर झलक रही है; पर उसके उपरान्त ही उनकी वह यशोलिप्सा बुझ सी जाती है और वे लोक-हित की मूर्ति के निर्माण में लग जाते हैं।

६—अयोध्या-काण्ड के बाद बाल-काण्ड की रचना हुई है, इसके पक्ष में

एक :वल प्रमाण भी है। बाल-काण्ड के प्रारम्भ में तुलसीदास बार-बार जो 'भाषा' के सम्बन्ध में अपनी सफाई देते हैं और कहते हैं :

स्वान्तःसुखाय तुलसीरघुनाथगाथा
भाषा निबन्धमतिमञ्जुलमातनोति ।

उनके इस कथन में उस समय के बहुत से प्रश्न-कर्त्ताओं के इस प्रश्न का उत्तर भी है, जो पूछा करते थे कि संस्कृत में न लिखकर भाषा क्यों लिखते हो ? इस पर तुलसीदास इससे अधिक सहज उत्तर क्या दे सकते थे कि मैं अपने लिए लिख रहा हूँ, दूसरों के लिए नहीं। इससे भाषा-सम्बन्धी एतराज करने की जगह ही नहीं रह जाती। भाषा के बारे में वे बार-बार कहते हैं :

भाषा भनिति मोरि मति भोरी। हँसिबे जोग हँसे नहिं खोरी।

× × ×

गिरा ग्राम्य सियराम जस, गावहिं सुनहिं सुजान ।

× × ×

भाषाबद्ध करब मैं सोई। मोरे मन प्रबोध जेहि होई ।।

क्या ये तुलसीदास से किये गए भाषा-सम्बन्धी प्रश्नों के उत्तर नहीं हैं ? और बाल-काण्ड के प्रारम्भ में जो उन्होंने निन्दकों, कुतर्कियों और मजाक उड़ाने वाले खलों का लम्बा वर्णन किया है, क्या वह अकारण है ? उनको ध्यान से पढ़िए, तो मालूम होगा कि तुलसीदास केवल प्रसंगवश खलों की निन्दा में प्रवृत्त नहीं हुए थे बल्कि वे अपनी कविता पर किये गए आक्षेपों का उत्तर देने के लिए विवश थे।

बाल-काण्ड की भूमिका पढ़ते-पढ़ते यह धारणा दृढ़ होने लगती है कि बाल-काण्ड के पहले वे कोई काव्य-ग्रन्थ जरूर लिख चुके थे और जिस पर उनके विपक्षियों ने तरह-तरह के आक्षेप किये थे। तुलसीदास ने उन सबको चुन-चुनकर उत्तर दिये हैं। वह काव्य अयोध्या-काण्ड के सिवा और क्या हो सकता है ?

शृङ्खला इस तरह मिलाइये—अयोध्या में बैठकर उन्होंने अयोध्या-कांड की रचना की। फिर उसे लेकर वे काशी आए। काशी में उसका पठन-पाठन जारी हुआ। उसकी सरस कविता पर लोग मुग्ध हुए, उसकी चर्चा हुई, उसे प्रसिद्धि मिली। भाषा-कविता का सम्मान बढ़ता देखकर संस्कृताभिमानी पंडित घबराए, उन्होंने उस पर आक्रमण किया, और तब तुलसीदास ने भी आक्रमणकारियों को विनय और नम्रता के सुन्दर परदे की आड़ से वाग्बाण मार-मारकर जर्जर कर दिया। विरोधियों के उपहास से उत्तेजित होकर ही

उनको यह आत्मश्लाघा करनी पड़ी थी :

खल उपहास होइ हित मोरा।
काक कहहिं कलकंठ कठोरा ॥

और उसी वातावरण में उन्होंने अपने काव्य को धर्म-ग्रन्थ का रूप देने की ठानी और तब 'मानस' की सृष्टि हुई।

७—अन्तिम दलील मेरी यह है कि अयोध्या में बैठकर सबसे पहले अयोध्या-कांड का प्रारम्भ करना एक राम-भक्त कवि के लिए बिलकुल स्वाभाविक था, और वैसा ही तुलसीदास ने किया भी। अयोध्या में बाल-कांड और अरण्य-कांड की रचना करके वे फिर काशी आए और काशी में रहकर उन्होंने किष्किधा-कांड की रचना की। उसका पहला सोरठा इस बात का प्रमाण है :

मुक्तिजन्म महि जानि, ग्यान खानि अघ हानिकर।
जहँ बस शम्भु भवानि, सो काशी सेइय कस न।

चैत्र में उन्होंने अयोध्या में 'मानस' का बाल-कांड प्रारम्भ किया था। सम्भवतः वर्षा ऋतु के आते-आते उन्होंने उसे समाप्त कर लिया होगा और फिर वे काशी आ गए। बाल-कांड को शीघ्र रचने की उनको आवश्यकता थी भी; क्योंकि उनको अपनी अयोध्या-कांड वाली कविता पर किये गए आक्षेपों का उत्तर भी देना था, जो बाल-कांड के प्रारम्भ में दिया गया है।

एक यह बात भी कही जाती है कि अयोध्या-कांड वहाँ पर समाप्त नहीं हुआ था, जहाँ इस समय समाप्त हुआ मिलता है; बल्कि वह अरण्य-कांड के इन छन्दों पर समाप्त हुआ था :

कलिमल समन दमन दुख, राम सुजसु सुखमूल।
सादर सुनहिं जे तिनहिं पर, राम रहहिं अनुकूल ॥
कठिन काल मल कोस, धरम न जग्य न जोग जप।
परिहरि सकल भरोस, रामहिं भजहिं ते चतुर नर ॥

मुझे इसमें सत्य का अंश मालूम होता है। क्योंकि अयोध्या-कांड के अन्त का जो सोरठा है :

भरत चरित करि नेमु, तुलसी जो सादर सुनहिं।
सीय राम पद पेमु, अवसि होइ भवरस विरति ॥

इससे कांड की समाप्ति का बोध नहीं होता। इससे तो केवल भरत-चरित की समाप्ति जानी जाती है। अयोध्या-कांड की समाप्ति तो सचमुच अरण्य-

कांड के उक्त सोरठे पर मालूम होती है और अरण्य-कांड के प्रारम्भ का जो यह सोरठा है :

उमा राम गुन गूढ़, पंडित मुनि पावहिं विरति ।
पावहिं मोह विमूढ़, जे हरि विमुख न धरम रति ॥

यह अरण्य-कांड को अयोध्या-कांड से अलग करते समय उसके आरम्भ के दो श्लोकों के साथ रचकर मिलाया गया होगा। क्योंकि इसमें शिव और पार्वती का संवाद आ गया है, जो अयोध्या कांड भर में कहीं नहीं है। इसके आगे :

पुर नर भरत प्रीति मैं गाई। मति अनुरूप अनूप सुहाई ॥

से लेकर 'रामहिं भजहिं ते चतुर नर' तक अयोध्य-कांड था।

सुन्दर और लङ्का-कांड वैसे जमकर नहीं लिखे गए, जैसे अयोध्या और और बाल-कांड लिखे गए थे। कवि की प्रतिभा उनमें थकी हुई सी जान पड़ती है, अथवा युद्ध तुलसीदास का विषय ही न था। उनमें बहुत ही थोड़े स्थानों पर कवि का चमत्कार दिखाई पड़ता है और वर्णन का एक बोझ सा उतारा गया है।

उत्तर-कांड सबके अन्त का है, और वह अन्त ही में लिखा भी गया है। उत्तर-कांड में भक्त कवि फिर अपनी अन्तरात्मा के पास आ जाता है और अपनी पूरी प्रतिभा का उपयोग करता हुआ-सा दिखाई पड़ता है। यद्यपि यह कांड कविता की दृष्टि से साधारण है, पर भक्ति-सम्बन्धी विचारों के संकलन की दृष्टि से बहुत ही महत्त्वपूर्ण और प्रशंसनीय है।

'मानस' का शुद्ध पाठ

'रामचरितमानस' का जो स्वरूप इस समय प्राप्त है, वह तुलसीदास के समय में भी ऐसा ही था, यह कहना कठिन है। क्योंकि स्वयं तुलसीदास ने उसमें स्थान-स्थान पर काट-छांट की होगी। वह उनकी मृत्यु से ४९ वर्ष पहले रचा गया था। इतने लम्बे समय में कवि ने उसमें काफी उलट-फेर किये होंगे। उसकी जितनी प्रतिलिपियां उनके जीवन-काल में और उनकी जानकारी में हुई होंगी, सबमें कुछ-न-कुछ शब्दों का परिवर्तन हुआ ही होगा। इससे जब तक उनके हाथ की अन्तिम संशोधित प्रति नहीं मिलती, तब तक किसी प्रति के लिए यह नहीं कहा जा सकता कि मानस का शुद्ध पाठ यही है।

तुलसीदास ने उत्तर-कांड के अन्त में 'मानस' की चौपाइयों की संख्या ५१०० बताई है :

सत पंच चौपाई मनोहर जानि जो नर उर धरैं।
दारुन अविद्या पंच जनित विकार श्रीरघुबर हरैं ॥

पंडित शिवलाल पाठक ने 'मानस-मयङ्क' में इसकी व्याख्या इस दोहे में इस प्रकार की है :

एकावन सत सिद्ध है, चौपाई तहँ चारु।
छन्द सोरठा दोहरा, दस ऋतु दस हज्जारु ॥

किन्तु इस समय 'रामचरितमानस' की किसी छपी हुई प्रति में ५१०० चौपाइयाँ नहीं मिलतीं। या तो हमारी गिनती में दोष है, या तुलसीदास ने अपने संशोधनों में जिन चौपाइयों को निकाल दिया था, उनकी पूर्ति उन्होंने नहीं की और वह कमी ज्यों-की-त्यों बनी रही। पर तुलसीदास के उक्त कथन से यह पता तो हमें चल ही गया कि 'मानस' की जिस प्रति में ५१०० चौपाइयाँ हों, वही शुद्ध है। इस ५१०० में क्षेपकों की रचना तुलसीदास ने नहीं की थी।

यहाँ 'मानस' की कुछ छपी हुई प्रतियों की छन्द-संख्या दी जा रही है।

नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित मानस की छन्द-संख्या इस प्रकार हैं :

कांड	कांडों के नाम		श्लोक	चौपाइयाँ	दोहे	सोरठे	अन्य छन्द
१	बाल-कांड	....	७	१४८४½	३६१	३४	६०
२	अयोध्या-कांड	...	३	१३०३	३१४	१३	१३
३	अरण्य-कांड	...	२	२९७	७१	९	२९
४	किष्किन्धा-कांड	...	२	१५२½	३१	३	३
५	सुन्दर-कांड	...	३	२६३	६२	२	६
६	लंका-कांड	...	३	५६०	१४८	९	६१
७	उत्तर-कांड	...	७	५८७	२०६	१७	४२
		कुल	२७	४६४७	११९३	८७	२१४=६१६७

एक विस्तृत सूची स्व० पंडित महावीरप्रसादजी मालवीय ने स्वसम्पादित 'रामचरितमानस' में दी है। उसमें छन्दों की संख्या इस प्रकार है—

चौपाई	दोहे	सोरठे	छन्द कुल
४६५८	११७३	५५	२९१=६१७७

श्रीरामदास गौड़ ने ५१०० चौपाइयों का एक नया ब्यौरा तैयार किया है। वह उन्हीं के शब्दों में इस प्रकार है :

"चौपाई का अर्थ ही है चार चरणों वाली। पिङ्गल के अनुसार तो सभी लौकिक पद्य चार-चार चरण के होते हैं। चौपाई ही में यह विशेषता नहीं है। अब देखना यह है कि मानसकार ने क्या माना है और रूढ़ि क्या है ?

अन्त्यानुप्रास की दृष्टि से देखिये तो दो-दो चरणों के ही तुक मिलते हैं, चार के नहीं। आदि से अन्त तक यही देखने में आता है। अयोध्या-कांड में आदि से अन्त तक आठ-आठ ऐसी द्विपदियाँ एक-एक समूह में रखी गई हैं। इसका व्यतिक्रम कहीं नहीं हुआ है। परन्तु और काण्डों में ऐसे किसी नियम का पालन नहीं है। लङ्का-काण्ड में स्तुति के दो डिल्लों के बीच में एक द्विपदी, अरण्य-काण्ड में गीध द्वारा स्तुति के पहले दो द्विपदियाँ, इसी तरह पाँच, सात, ग्यारह, तेरह, उन्नीस, उनतीस और सैंतीस तक (उत्तर १२१) द्विपदियाँ एक-एक समूह में चार-चार चरणों की गिनती करने से एक-एक द्विपदी प्रत्येक समूह में छूट जायगी। अतः जहाँ समूह के भीतर द्विपदियों की सम संख्या है, वहाँ तो चार-चार चरणों की एक-एक चौपाई गिनी जानी चाहिए; परन्तु जहाँ विषम संख्या है, वहाँ दो-दो चरणों की, अर्थात् प्रत्येक द्विपदी, एक-एक चौपाई गिनी जानी चाहिए। इस मत का रूढ़ि से भी पोषण होता है। जायसी के 'पदमावत' में एक-एक समूह में नियम से सात-सात द्विपदियाँ हैं। पदमावतकार ने द्विपदी को ही चौपाई माना है। यह पोथी 'मानस' के कुछ पहले लिखी गई थी। 'मानस' में यह रूढ़ि और पिंगल का नियम दोनों ही बरते गए हैं। अतः हमने चौपाइयों की इस नियम के अनुसार गणना की तो भागवतदासादि वाली पोथी की गणना इस प्रकार आई :

बाल-काण्ड में	१५६८	चौपाइयाँ
अवध-काण्ड में	१३०४	चौपाइयाँ
अरण्य-काण्ड में	३२६	चौपाइयाँ
किष्किन्धा-काण्ड में	१९५	चौपाइयाँ
सुन्दर-काण्ड में	३३७	चौपाइयाँ
लङ्का-काण्ड में	६८४	चौपाइयाँ
उत्तर-काण्ड में	६८३	चौपाइयाँ
पूर्ण संख्या	५१००	चौपाइयाँ

जिन क्षेपक-रहित प्रतियों में चौपाइयों की यह संख्या आती हो उन्हें अवश्य अधिक शुद्ध समझना चाहिए।

'मानस' की जो प्रतियाँ शुद्ध कही जाती हैं, उनमें भी कहीं-कहीं अन्तर है। जैसे अरण्य-कांड में विराध-वध की किसी-किसी प्रति में एक ही चौपाई है। पर 'सभा' वाली प्रति में कई चौपाइयाँ हैं। इसका कारण यह जान पड़ता है कि या तो स्वयं तुलसीदास ने या उनके बाद किसी भक्त ने विराध-वध की उन चौपाइयों को निकाल दिया, जिनमें विराध द्वारा सीता को उठा ले जाने

का वर्णन था। सीता के अग्नि-प्रवेश के पहले एक राक्षस द्वारा उनका अंग-स्पर्श भक्तों को अभीष्ट नहीं जान पड़ा होगा। और यह भी संभव है कि तुलसीदास ने स्वयं उन चौपाइयों को निकाल दिया हो, पर जिन प्रतियों में वे चौपाइयाँ पहले लिखी जा चुकी थीं, उनमें से उन्हें वे कैसे निकाल सकते थे ? इससे दो प्रकार के पाठ पहले ही से चले आ रहे हैं—एक मूल प्रति के अनुसार, दूसरा संशोधित प्रति के अनुसार। यही कारण है कि प्राचीन हस्त-लिखित प्रतियों में भी पाठान्तर मिलता है

'रामचरितमानस' की प्राचीन प्रतियाँ

'रामचरितमानस' की जितनी प्राचीन प्रतियों का अभी तक पता लगा है, उनमें सबसे प्राचीन प्रति सं० १६६१ की है, जो अयोध्या में है। यह प्रति वासुदेव-घाट पर स्थित 'श्रावण-कुंज' नाम के एक मन्दिर में उसके महन्त श्रीजनककिशोरीशरणजी के अधिकार में है। उक्त मन्दिर मधुरअलीजी के स्थान के नाम से भी प्रसिद्ध है।

मैंने ता० १८ अक्तूबर, १९३५ को अयोध्या जाकर उक्त प्रति का निरीक्षण किया। उस समय उक्त महन्तजी मौजूद नहीं थे। पर मन्दिर के पुजारी गोविन्दप्रसादजी ने कृपा पूर्वक मुझे 'मानस' की उपर्युक्त प्रति देखने को दे दी। मैंने कई घण्टे लगातार बैठकर उसके बाल-कांड को तो पूरा पढ़ डाला और शेष काण्डों को उलट-पुलटकर सरसरी तौर पर देख गया। इनमें केवल बाल-कांड ही प्राचीन है। शेष कांड पीछे से लिखकर पोथी पूरी कर ली गई है।

पोथी के ऊपर पहले पन्ने पर यह लिखा हुआ है :

श्रीमत जानकीरमण चरण कमल मकरंदानुरागी श्रीमत श्री सीवलाल पाठकजी महाराज तस्या अनुग्रहीतदास रसोगी काशी के श्रीमत रामायण श्री तुलसी कीर्त सानन्द श्रीमत रघुवरसरन विकोरा (?) के श्री सीताराम-चर्णन की अनुराग (यहाँ एक इन्च तक के अक्षर स्पष्ट पढ़े नहीं जाते) श्री बालकाण्ड श्री सीताराम पूर्णमस्तु (श्री सीताराम पूर्णमस्तु लिखकर एक लकीर से काट दिया गया है) श्री सं० १८८९ कातीक कृष्ण ५ रविवार श्री रघुवरसरन के पास रहै।

इसके सिवा और कोई लेख पहले पृष्ठ पर नहीं है। पहला पन्ना भीतर के अन्य पन्नों की अपेक्षा इतना अधिक मोटा है कि उसके मोटेपन का कारण जानने की इच्छा स्वभावतः उठ खड़ी होती है। मैंने उसे उठाकर धूप की तरफ करके देखा, तो एक ओर पन्ने के हाशिये पर एक पंक्ति में कुछ अक्षर और

झलकते हुए दिखाई पड़े। ध्यान देकर पढ़ने पर भी यद्यपि पूरी पंक्ति नहीं पढ़ी जा सकी, पर जो स्पष्ट पढ़ा जा सका, वह यह है—'रघुनाथ का सुनाय का लोभाय वस किया।' पन्ने की मोटाई को देखकर तो यह सहज ही में समझ में आ गया कि दो पन्ने चिपकाकर ऊपर के पन्ने को मोटा बना दिया गया है। पर धूप में झलकने वाले भीतर के अक्षरों को देखकर मैं इस निर्णय पर पहुँचा कि प्राचीन पन्ने के ऊपर दूसरा नया पन्ना चढ़ाया गया है, और उस पर भी 'शिवलाल पाठक'-सम्बन्धी उपर्युक्त पंक्तियाँ लिख दी गई हैं।

चार पन्नों के उलटने पर पाँचवें पन्ने से आगे सारा बाल-कांड पहले चार पन्नों की अपेक्षा बहुत पुराने कागज पर और भिन्न कलम से लिखा हुआ मिलता है। पाँचवें पन्ने का पहला शब्द है—रीति। चौथे पन्ने की अन्तिम पंक्ति में 'उदासीन अरि मीत हित सुनत जरहिं खल' लिखकर पन्ने की पूरी लम्बाई तक जाने के पहले ही पंक्ति समाप्त कर दी गई है। पाँचवाँ पन्ना 'खल' के अगले शब्द 'रीति' से प्रारम्भ हुआ है। जान पड़ता है, प्राचीन प्रति के उपर्युक्त चार पन्ने नष्ट हो गए थे, उनके स्थान पर नये पन्ने लिखकर लगा दिये गए हैं। प्राचीन पन्नों का कागज भूरा, मटमैला-सा हो गया है और नवीन पन्नों का कागज हल्का पीलापन लिये हुए सफेद है। आकार दोनों का बराबर है। पन्नों की लम्बाई-चौड़ाई क्रमशः ९॥ इंच और ३॥ इंच के लगभग है। बीच में ९६ वाँ पन्ना भी उसी कागज पर और उसी कलम से लिखा हुआ मिलता है। जिस कागज पर और जिस कलम से आदि के चार पन्ने लिखे गए हैं। इस प्रकार पूरी प्रति में कुल पाँच पन्ने खण्डित हैं। मुझे पुजारी जी ने बताया कि ये पाँचों पन्ने तुलसीदास के एक बड़े प्रेमी श्री सीताप्रसाद के लिखे हुए हैं जो श्रावण-कुञ्ज के पड़ोस ही में रहते थे और जिन्होंने इस प्राचीन प्रति की रक्षा के लिए उसके पन्नों के किनारों पर पतले पतंगी कागज चिपका दिये हैं, जिससे सचमुच पन्नों के नुचने या फटने का भय कम हो गया है। उन्होंने अन्त के पन्ने की पीठ पर भी एक मोटा कागज चिपका दिया है और उस पर यह उल्लेख किया है कि उक्त प्रति भगवानदास की लिखी हुई है, जिन्होंने 'विनय-पत्रिका' लिखी थी, जो रामनगर (काशी)-निवासी एक चौधरी साहब के पास है। भगवानदास ने उस पन्ने की पीठ पर अपना नाम भी दिया है। पर कागज फटा जा रहा था, उसकी रक्षा के लिए पन्ने पर मोटा कागज चिपका दिया गया।

हाशियों पर जो पतंगी कागज चिपकाया गया है, वह भी सर्वत्र एक-सा नहीं है। ६७ पृष्ठों तक सफेद रंग का पतंगी कागज चिपकाया गया है, और उसके बाद रंगीन कागज-लगा है। ७७वें पृष्ठ पर यह कागज भी चुक गया

जान पड़ता है और ६८वें पृष्ठ से लाल रंग का कागज चढ़ाया गया है। लाल रंग का कागज भी आगे जाकर समाप्त हो जाता है और फिर सफेद पतंगी कागज लगाया गया है।

बाल-कांड के अन्तिम सोरठे का नं० २६२ दिया हुआ है। नम्बर के बाद यह पाठ है :

इति श्रीमद्रामचरितमानसे कलकलि कलुप विध्वंसने प्रथमो सोपानः समाप्तः।

'ने प्रथमो सोपान समाप्त' इतना पंक्ति के बाहर दाहिनी ओर के हाशिये पर ऊपर की ओर जाकर समाप्त हुआ है। फिर पन्ने की अन्तिम पंक्ति इस प्रकार है : 'सुभमस्तु संवत् १६६१ वैशाख सुदि ६ वुधे ॥'

अन्तिम पृष्ठ-संख्या १७७ है।

यह तो उक्त प्रति की बाहरी रूप-रेखा है। अब मूल पाठ में प्रवेश कीजिए तो प्रायः प्रत्येक पन्ने पर कुछ-न-कुछ संशोधन किया हुआ मिलेगा।

कहीं हरताल लगाकर पाठ शुद्ध किया गया है, कहीं स्याही से काटकर। जो पाठ लेखक की असावधानी से लिखने से छूट गया है, वह हाशिये पर लिख दिया गया है। हाशिये पर की कलम उसी लेखक की नहीं है, जिसने पूरी प्रति लिखी थी।

पृष्ठ ८० पर १५७ वें दोहे के बाद का पाठ ऐसा लिखा है :

फिरत विपिन आश्रम एक देखा।
तहँ बस भानु कर जानी।
आपन अति असमय अनुमानी।
गयउ न गृह मन वहुत गलानी।
मिला न राजहि नृप अभिमानी ॥ रिस

इसके नीचे हाशिये पर यह लिखा है :

नृपति कपट मुनि वेषा ॥
जासु देस नृप लीन्ह छुड़ाई। समरसेन तजि गएउ पराई ॥
समय प्रताप २।

इसके पास ही किसी और कलम से लिखा है : 'यह दसखत श्रीतुलसीदास का है। राजपुर की पोथी मां मिलत है।' यह श्रीसीताप्रसादजी का लिखा हुआ कहा जाता है, जिन्होंने हाशिये पर कागज चढ़ाया था।

ऐसी ही एक छूट ४० वें पन्ने में भी हुई है। प्रचलित पाठ यह यह है :

केहि अवराधहु का तुम चहहू। हम सन सत्य परम किन कहहू ॥
सुनत ऋषिन्ह के वचन भवानी। बोली गूढ़ मनोहर बानी ॥

कहत बचन मन अति सकुचाई। हसिहहु सुनि हमार जड़ताई॥

इनमें 'किन कहहू' से लेकर 'कहत' तक का अंश छूट गया था। संशोधक ने पन्ने के बायें हाशिये पर 'किन कहहू' और 'कहत' लिखकर ऊपर-नीचे की दो चौपाइयाँ ठीक कर दीं, पर बीच की चौपाई वह छोड़ ही गया। किसी ने 'किन कहत' और 'कहत' पर हरताल लगाकर फिर वही लिख दिया है। पर हरताल वाले ने भी बीच वाली चौपाई की कमी पर ध्यान नहीं दिया। किसी ने एक और ही कलम से छूटी हुई चौपाई पन्ने के नीचे की ओर हाशिये पर लिख दी है, पर इस समय उस पर पतंगी कागज चिपका हुआ है। कागज चिपकाने वाले ने भी उस चौपाई की आवश्यकता नहीं समझी। पर क्या तुलसीदास उस चौपाई की उपेक्षा कर सकते थे? उस चौपाई के बिना तो कथा की लड़ी टूट जाती है। जान पड़ता है, या तो तुलसीदास ने उस पन्ने को देखा ही नहीं, या उन्होंने इस प्रति का संशोधन ही नहीं किया।

यद्यपि कई संशोधन हुए जान पड़ते हैं, पर अभी संशोधन की बहुत गुञ्जाइश है।

बीसवें पृष्ठ पर यह चौपाई है:

जेहि यह कथा सुनी नहि होई।
जनि आचज करै सुनि सोई॥

इसमें 'आचरज' का 'र' ही गायब है। इसी प्रकार १२९ वें पृष्ठ पर यह लिखा है:

पुनि नभ धनुमण्डल सम भयऊ।

इसमें स्पष्ट ही 'नभ' के स्थान पर 'धनु' होना चाहिए।

१५८ वें पृष्ठ के आगे वाले पन्ने पर ऊपर-ही-ऊपर हाशिये पर भिन्न कलम से यह लिखा है:

जाइ न बरनि मनोहर जोरी।
जो उपमा कछु कहौं सो थोरी।
राम सीय सुन्दर प्रति छाहीं।
जगमगात मनि खम्भन माहीं॥

इसके पास ही एक और ही कलम से हाशिये पर लिखा है:

'यह दसखत गोस्वामी के हैं।'

१६७ वें पृष्ठ पर 'देखिहु रामहि नैन भरि, तजि इरिपा मद कोहू' पाठ दिया हुआ है। पर प्रचलित मानसों में 'कोहू' के स्थान पर 'मोहू' पाठ है, जो अधिक युक्ति-संगत जान पड़ता है।

पुस्तक में बहुत से स्थानों पर दोहे और सोरठे के नम्बर ठीक नहीं दिये गए हैं। १२३ वें दोहे के बाद जो दोहा पड़ता है, उस पर नम्बर ही नहीं है। उसके आगे एक सोरठा है। उसका नम्बर १२४ दिया हुआ है। ४७ वें दोहे के बाद वाले दोहे पर भी नम्बर नहीं है। पर उसके आगे एक सोरठा है, उसका नम्बर ४८ दिया हुआ है।

१४६ वें के आगे वाले पृष्ठ के हाशिये पर भिन्न कलम से यह लिखा है:

सहित वसिष्ठ सोह नृप कैसे।
सुरगुर संग पुरन्दर जैसे॥

इसके ऊपर दूसरी कलम से पतले अक्षरों में लिखा है: 'ये दसखत तुलसीदास के अहीं। राजापुर की पोथी मां मिलत हैं।'

'सकै उठाइ सरासुर मेरू' के सरासुर के 'स' को किसी ने 'सु' बना दिया है। 'उ' की मात्रा गहरी काली स्याही से लगाई गई है, जो स्पष्ट दिखाई पड़ रही है। साथ ही उक्त प्रति के लेखक का 'उ' की मात्रा लगाने का जो ढंग है, उससे यह मात्रा मिलती भी नहीं। इससे मालूम होता है, इस प्रति के संशोधन में कइयों का हाथ लग चुका है।

पृष्ठ ९७ पर 'निज आयुध भुज चारी' पाठ है। जान पड़ता है, 'चारी' के स्थान पर 'धारी' पाठ था। किसी ने 'ध' की गरदन छीलकर उसे 'च' बनाया है। पर छीला जाना बहुत स्पष्ट नहीं है; कुछ भ्रम-सा होता है। इसमें तो शक नहीं कि 'चारी' की अपेक्षा 'धारी' पाठ अधिक सार्थक है। क्योंकि 'निज आयुध भुज चारी' से चारों भुजाओं के लिए चार आयुध होने का अर्थ निकलता है। पर शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म में शङ्ख और पद्म तो आयुध हैं नहीं। 'चारी' पाठ होने से अर्थ की संगति नहीं बैठती। और दूसरा कारण यह भी हो सकता है कि तुलसीदास द्विभुज राम ही के उपासक थे। अतएव वे स्वयं 'भुजधारी' ही पाठ के पक्ष में होते। पर 'धारी' को छीलकर 'चारी' क्यों किया गया? और किसने किया? यह रहस्य समझ में नहीं आता। मुझे तो विश्वास नहीं होता कि किसी ने जान-बूझकर 'ध' को छीलकर 'च' बनाया है। जिस 'ध' को 'च' बनाया हुआ बताया जाता है वह 'ध' उस प्रति के लेखक का हो ही नहीं सकता; क्योंकि वह तो दूसरे प्रकार का 'ध' लिखता है, जो 'आयुध' में बिलकुल पास ही है। 'आयुध' वाला 'ध' जितने स्थान में लिखा हुआ है, 'चारी' के 'च' को 'ध' होने के लिए उतना स्थान नहीं है। अतएव यदि छीलना सही माना जाय, तो 'च' ही की कोई विकृति ठीक की गई होगी। अतएव किसी ने जान-बूझकर 'ध' का 'च' नहीं बनाया

है। और कोई वैरागी तो 'धारी' का 'चारी' बनाता ही क्यों ? किन्तु अगले पन्ने पर 'भयेउ प्रगट श्रीकन्ता' के सामने दाहिनी ओर हाशिये पर लिखा है— 'श्रीकान्ता के चारिभुजा' इसका अभिप्राय तो यही जान पड़ता है कि 'भुजचारी' को लेकर कभी विवाद उठा होगा और उसके समर्थन में 'श्रीकन्ता' को किसी ने प्रमाण रूप में उपस्थित किया होगा। उसी का संकेत हाशिये पर कर दिया गया है।

१२९ वें पृष्ठ से कलम कुछ पतली हो गई है और लिखावट भी बदली हुई सी लगती है।

मुझे उसमें कुछ अक्षरों के भी नये रूप देखने को मिले। कहीं-कहीं 'भ' 'ल' से मिलता-जुलता बनाया गया है। इससे कई स्थानों पर मुझे धोखा हुआ और मैं 'नभ' को 'नल' पढ़ गया। 'र' और 'रु' की भी भिन्न-भिन्न सूरतें मिलीं। 'घ' भी दो प्रकार से लिखे हुए मिले। सारी पुस्तक में 'रघुवीर' का 'घ' वैसा ही है, जैसा देवनागरी वर्णमाला में इस समय वर्तमान है। पर उक्त प्रति में १२९ वें पन्ने के आगे जितने 'घ' अन्य शब्दों में आये हैं, प्रायः वे सभी अपनी खड़ी पाई से लटके हुए हैं, शिरो-रेखा से मिले हुए नहीं हैं। इससे मैं यह परिणाम निकालता हूँ कि एक से अधिक व्यक्तियों ने सारी पुस्तक लिखी है।

आठवें पृष्ठ पर 'धींग धरमध्वज धंधक धोरी' पाठ मिला। वर्तमान प्रचलित 'मानसों' में यह 'धिग धरमध्वज धंधक धोरी' है। मुझे 'धिग' की अपेक्षा 'धींग' अधिक सार्थक जान पड़ता है।

बारहवें पृष्ठ पर 'वंदों नाम राम रघुवर को' है। पर प्रचलित प्रतियों में 'वंदों राम नाम रघुवर को' पाठ मिलता है।

उक्त प्रति के प्रारम्भ में 'कृपासिंधु नररूप हरि' ही पाठ है, 'कृपासिंधु नररूप हर' नहीं; जैसा मुन्शी शुकदेवलाल आदि ने माना है और अब भी काशी के पंडित विजयानन्द त्रिपाठी आदि महानुभाव मान रहे हैं।

यही अयोध्या की प्रति का संक्षिप्त वर्णन है। इसमें तो संदेह ही नहीं, कि वह प्रति इस समय तक प्राप्त प्रतियों में सबसे प्राचीन है। पर उसके तुलसीदास द्वारा संशोधित होने में मुझे सन्देह है, जब तक यह न स्वीकार कर लिया जाये कि तुलसीदास संशोधन करने में काफी लापरवाही करते थे या वे स्वयं अशुद्ध लिखते रहे हों। पर ऐसे उद्भट विद्वान् और महाकवि के लिए ये दोनों शङ्काएँ व्यर्थ हैं।

हाशिये वाले संशोधन के अक्षरों को राजापुर की प्रति के अक्षरों से

मिलता हुआ पाकर यह अनुमान भिड़ाना कि अयोध्या वाली प्रति का संशोधन तुलसीदास का किया हुआ है, युक्तिपूर्ण नहीं है। क्योंकि राजापुर वाली प्रति तुलसीदास के हाथ की लिखी हुई नहीं है, यह आगे प्रमाणित किया जायगा।

काशी के सरस्वती-भवन में 'वाल्मीकि-रामायण' के उत्तर-कांड की एक प्रति सुरक्षित है, जो सं० १६४१ की लिखी हुई है, और जिसके अन्त में 'लि० तुलसीदासेन' लिखा हुआ भी है। उसे यदि सत्य माना जाय, तब तो अयोध्या की प्रति तुलसीदास के हाथ से संशोधित कही ही नहीं जा सकती, क्योंकि दोनों की लिखावट में अन्तर स्पष्ट है।

अयोध्या वाली प्रति का सम्मान हमें केवल इसी दृष्टि से करना चाहिए कि वह तुलसीदास के जीवन-काल ही में, उनके परलोक-वास से २० वर्ष पहले की लिखी हुई है और वही इस समय सबसे प्राचीन प्रति है। खेद है, कि हमने उसका उपयोग जैसा किया जाना चाहिए था, अभी तक नहीं किया।

'रामचरितमानस' की दूसरी प्रति, जो तुलसीदास के हाथ की लिखी हुई कही जाती है, लखनऊ के पास मलीहाबाद में है। वह मलीहाबाद स्टेशन से मील-सवा मील की दूरी पर मुंशीगंज मुहल्ले में एक मन्दिर के महन्त बाबा जनार्दनदास के अधिकार में है। मैं ता० २१ अक्तूबर, १९३५ को प्रातःकाल उक्त महन्तजी से मिला। उन्होंने तुलसीदास के हाथ की लिखी हुई कही जाने वाली वह रामायण मुझे दिखलाई। दिखलाई क्यों? दिखलवाई। क्योंकि उक्त पोथी को वे स्नान किये बिना न छूते हैं, न किसी को छूने देते हैं। उनका पुत्र स्नान करके आया, तब उसने पोथी खोली और मेरी बगल में बैठकर वह पन्ने उलटता गया और मैं देखता गया।

मलीहाबाद की प्रति अवश्य प्राचीन है। उसकी लिखावट गहरी काली स्याही और मोटे कलम से है। कागज बहुत पुराना जान पड़ता है। पर न आदि में, न अन्त में कहीं उसके लिपिकार या लिखे जाने के संवत् का उल्लेख है। खेद है, मेरे पास उस समय राजापुर, अयोध्या और काशी की प्रतियों की लिखावट के फोटो नहीं थे, नहीं तो मैं मिलान करके देखता कि उक्त पुस्तक की लिखावट किससे मिलती है। केवल स्मृति के आधार पर मैं कोई ठीक निर्णय नहीं कर सका। उसमें कुछ संशोधन किया हुआ मुझे कहीं नहीं मिला। वह सातों कांड है। उसमें भी 'कृपासिन्धु नर रूप हरि' पाठ है।

उक्त प्रति के साथ बिना डांडी का एक चश्मा भी रखा है, जिसे महंतजी ने तुलसीदास का चश्मा बताया। उसके बीचों-बीच, जहाँ वह नाक पर बैठता है, एक छेद है। उस छेद से एक तागा बँधा है, वह तागा माथे पर से होता

हुआ सिर पर जाकर चोटी से लपेट लिया जाता है। उसी के सहारे चश्मा दोनों आँखों के सामने लटकता रहता है। चश्मे के साथ एक माला भी है। उसे भी महन्त जी ने तुलसीदास की माला बतलाया।

उक्त महन्तजी के अधिकार में 'मानस' की एक प्रति और है, जिसमें यह समय दिया हुआ है : "संवत् १७७६ समये चैत्र मासे शुक्ल पक्षे प्रतिपदाया तिथौ। लिखितं द्वारिकादासेन वैष्णव केदारेश्वर समिपे।"

इस प्रति को मैं हाथ में लेकर देख सका। इसका पाठ कहीं-कहीं शुद्ध करके लिखा गया है। जैसे 'संत पंच चौपाई मनोहर' के 'सत' को 'शत' लिखा है।

महंतजी के अधिकार में वाल्मीकि रामायण, देवीभागवत, श्रीमद्भागवत, वेद, पुराण, उपनिषद्, ज्योतिष, व्याकरण और वैद्यक आदि की बहुत सी हस्तलिखित और प्राचीन पुस्तकें है। खेद है वे न उनका उपयोग करते हैं, न कर सकते हैं और न शायद किसी को करने ही देंगे। यद्यपि दीमकों ने उनकी स्वीकृति की प्रतीक्षा किये बिना ही कइयों का उपयोग कर डाला है।

'मानस' की एक प्राचीन प्रति सं० १७०४ की है, जिसका उल्लेख ना० प्र० सभा की १६०१ की खोज-रिपोर्ट में है। मैंने इसे देखा है।

मानस के मूल पाठ को अशुद्ध करने में उसके नकल करने वालों, टीकाकारों और सम्पादकों का भी हाथ है। तुलसीदास ने 'मानस' अवधी भाषा में लिखा है। उन्होंने अवधी की बोल-चाल, व्याकरण और मुहावरों का पूरा अनुसरण किया है। उन्होंने 'ष' के स्थान में 'ख', 'य' के स्थान में 'ज', 'ज्ञ' के स्थान में 'ग्य', 'श' के स्थान में 'स', 'ण' के स्थान में 'न' और 'ऋ' के स्थान में 'रि' लिखा है। जैसे बरखा, पौरुख, जोग, जग्य, जस, जोनि, ग्यान, बिग्यान, स्रुति, स्रवन, सिव, सीस, सिसु, दशरथ, कौसल्या, सुरेस, महेस, बान, प्रान, कारन, प्रन और तरनि आदि। मानस की प्राचीन प्रतियों में ऐसा ही पाठ पाया जाता है। बाद के लिपिकारों ने तद्भव शब्दों को तत्सम कर दिया है और टीकाकारों और सम्पादकों ने उनकी रही-सही कमी भी पूरी कर दी। केवल पंडित शिवलाल पाठक ने 'मानस-मयंक' में प्राचीनता की रक्षा की है। श्रीरामचरण-दास, शुकदेवलाल और बैजनाथ ने भी शब्दों का शुद्ध संस्कृत रूप दिया है। उन्होंने दसरथ को दशरथ, चरन को चरण, जग्य को यज्ञ, लषन को लषण और सीतल को शीतल लिखा है।

'मानस' का शुद्ध संस्करण छापने का पहला प्रयास खड्गविलास प्रेस के मालिक स्व० बाबू रामदीनसिंह ने किया था। उसके बाद काशी-नागरी-

प्रचारिणी-सभा ने अधिक-से-अधिक शुद्ध संस्करण निकाला। सभा ने उसमें समास-चिह्न तथा विराम आदि अपनी ओर से लगाकर 'मानस' का अर्थ समझने में सुविधा कर दी है।

पीछे से क्षेपक मिलाने वालों ने भी 'मानस' को विकृत करने में कम उद्योग नहीं किया है। तुलसीदास ने क्षेपकों की रचना नहीं की थी। केवल अयोध्या-कांड में एक प्रसंग ऐसा है जो अपने स्थान पर ठीक बैठता नहीं है और पीछे से मिलाया हुआ जान पड़ता है। पर उसकी रचना तुलसीदास ही की की हुई है, यह निर्विवाद मालूम होता है।

वह प्रसंग यह है—

"राम, लक्ष्मण और सीता मार्ग में चले जा रहे हैं। रास्ते के गाँव वाले उन्हें देखकर चकित होते हैं:

"जे तिन महँ वय बिरिधि सयाने। तिन्ह करि जुगुति रामु पहिचाने॥
सकल कथा तिन्ह सबहिं सुनाई। बनहिं चले पितु आयसु पाई॥
सुनि सविपाद सकल पछिताहीं। रानी राय कीन्ह भल नाहीं॥

अभी गाँव वालों की बातें चल रही थीं कि आगे यह एक नया प्रसंग छिड़ जाता है:

तेहि अवसर एक तापस आवा। तेजपुञ्ज लघु वयस सुहावा॥
कवि अलपित गति वेप बिरागी। मन क्रम वचन राम अनुरागी॥
दोहा—सजल नयन तन पुलकि निज, इष्टदेउ पहिचानि।
परेउ दंड जिमि धरनितल, दसा न जाइ वखानि॥
राम सप्रेम पुलकि उर लावा। परम रंक जनु पारस पावा॥
मनहुँ प्रेम परमारथ दोऊ। मिलत धरे तन कह सव कोऊ॥
वहुरि लखन पायन्ह सोइ लागा। लीन्ह उठाइ उमगि अनुरागा॥
पुनि सिय चरन धूरि धरि सीसा। जननि जानि सिसु दीन्ह असीसा॥
कीन्ह निपाद दंडवत तेही। मिलेउ मुदित लखि राम सनेही॥
पिअत नयन पुट रूप पियूखा। मुदित सुअसनु पाइ जिमि भूखा॥

यह प्रसंग यहीं पर समाप्त हो जाता है और आगे गाँव वालों की बातें शुरू हो जाती हैं:

ते पितु मातु कहहु सखि कैसे। जिन्ह पठये वन वालक ऐसे॥ इत्यादि।"

उक्त तापस के आ जाने से कथा-प्रवाह ही में नहीं विघ्न पड़ता, बल्कि अयोध्या-कांड की रचना का क्रम भी बिगड़ जाता है। पहले लिखा जा चुका है कि अयोध्या-कांड में आठ चौपाइयों पर एक दोहा और पच्चीस दोहों

पर एक छन्द देने का नियम आदि से अन्त तक निबाहा गया है। पर बीच में तापस की कथा आ जाने से इस स्थान पर २६वें दोहे पर छन्द पड़ गया है।

तापस कौन था ? बीच में उसे क्यों लाकर खड़ा कर दिया गया ? और 'पियत नयन पुट रूप पियूखा' की दशा में उसे वहीं क्यों छोड़ दिया गया ? इन प्रश्नों का उत्तर अब कौन दे सकता है ? तापस का प्रसंग 'सभा' वाली प्रति में भी है और राजापुर की प्रति में भी है। पर श्रीरामचरणदासजी के संस्करण में नहीं है। श्रीरामदास गौड़ ने भी स्वसम्पादित 'मानस' में इस प्रसंग को नहीं रखा है। पता नहीं, तुलसीदास ने इसे रखा है या पीछे से किसी ने मिलाया है ? पर वहीं वह क्यों मिलाया गया ? आगे-पीछे उसके लिए और भी तो उपयुक्त स्थान थे।

राजापुर की प्रति

राजापुर में अयोध्या-कांड की जो हस्तलिखित प्रति रखी है, वह तुलसीदास के हाथ की लिखी हुई बताई जाती है। पहले कहा जा चुका है कि राजापुर वाली प्रति की लिखावट 'वालमीकि-रामायण' की लिखावट से नहीं मिलती, जो तुलसीदास के हाथ की लिखी हुई मानी जाती है। इससे वह तुलसीदास के हाथ की लिखी हुई नहीं हो सकती। इसके सिवा कई स्थानों पर उसमें ऐसी त्रुटियाँ भी दिखाई पड़ती हैं जिनके आधार पर यह साहस के साथ कहा जा सकता है कि वह न तो तुलसीदास के हाथ की लिखी हुई है, और न तुलसीदास ने उसे कभी पढ़ा ही होगा। पढ़ा होता तो उन्होंने उसकी त्रुटियाँ अवश्य दूर कर दी होतीं। राजापुर वाली प्रति में जो त्रुटियाँ मिलती हैं, उनमें से कुछ ये हैं—

राजापुर की प्रति में अयोध्या-कांड के २५६ वें दोहे के आगे का पाठ देखिए :

सकुचउँ तात कहत एक बाता।
भे प्रमोद परिपूरन गाता॥

अन्य प्रामाणिक प्रतियों में यह पाठ मिलता है :

सकुचौं तात कहत एक बाता।
अरध तजहिं बुध सरबस जाता॥
तुम्ह कानन गँवनहु दोउ भाई।
फेरिअहिं लषन सीय रघुराई॥
सुनि सुबचन हरषे दोउ भ्राता।
भे प्रमोद परिपूरन गाता॥

अब विज्ञ पाठक अनुमान कर सकते हैं कि बीच की चौपाइयों के बिना अर्थ की संगति नहीं बैठती और कथा की लड़ी भी टूट जाती है। जान पड़ता है कि राजापुर वाली प्रति किसी पुस्तक की नकल है जिसमें नकल करने वाले से 'बाता' और 'गाता' के धोखे में बीच की चौपाइयाँ छूट गई हैं।

ऐसी ही एक भूल २७९ वें दोहे के आगे भी है। उसमें यह पाठ है :

जाइ न बरनि मनोहरताई।
राम जनक मुनि आयसु पाई॥

पर प्रचलित रामायणों में यह पाठ है :

जाइ न बरनि मनोहरताई।
जनु महि करति जनक पहुनाई॥
तब सब लोग नहाइ नहाई।
राम जनक मुनि आयसु पाई॥

अब आप देख सकते हैं कि यहाँ भी नकल करने वाला 'ताई' और 'पाई' का तुक मिला हुआ देखकर धोखे में बीच की दो चौपाइयाँ छोड़ गया है।

और देखिए, २९१ वें दोहे के आगे यह पाठ है :

करि प्रनाम तब राम सिधाये।
सील सनेह सुभाय सुहायै॥

पर प्रचलित रामायणों में यह पाठ है :

करि प्रनाम तब राम सिधाये।
रिषि धरि धीर जनक पहिं आये॥
राम वचन गुरु नृपहि सुनाये।
सील सनेह सुभाय सुहाये॥

यहाँ भी 'सिधाये' और 'सुहाये' के धोखे में लेखक का दृष्टि-दोष स्पष्ट है।

इन्हीं प्रमाणों के आधार पर निस्सन्देह कहा जा सकता है कि तुलसीदास ने राजापुर वाली प्रति अपनी आँख से देखी भी नहीं। नहीं तो चौपाइयों की कमी उन्हें अवश्य खटकती और छूटी हुई चौपाइयों को वे कहीं-न-कहीं हाशिये पर लिख देते।

पर इसमें सन्देह नहीं कि राजापुर की प्रति भी बहुत पुरानी है और वह तुलसीदास के हाथ की न होने पर भी उनके समय की या उनके बाद थोड़े ही समय पीछे की अवश्य है। क्योंकि उसका कागज भी बहुत पुराना है और

उसकी लिखावट भी पुरानी है।

मैंने कई वर्ष पहले अपने एक लेख में जनश्रुति के आधार पर यह सूचना दी थी कि राजापुर की प्रति किसी रघुवर तिवारी के हाथ की लिखी हुई है। इस पर मेरे माननीय मित्र रायबहादुर लाला सीताराम ने मेरे उक्त लेख के उत्तर में एक लेख 'माधुरी' में प्रकाशित कराया था। उससे मेरी शंका पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। मैं यहाँ उसका उद्धरण देता हूँ—

"आजकल रघुवर तिवारी का नाम सुनकर लोग चौंक पड़ेंगे; परन्तु रघुवर तिवारी के हाथ की वि० १७०४ (गोस्वामीजी के परम पद पाने से २४ ही वर्ष पीछे) की लिखी पोथी के ३ पृष्ठों का फोटो-चित्र 'मॉडर्न वर्नाक्युलर लिटरेचर ऑफ हिन्दोस्तान' में दिया हुआ है, और उसके एक-एक पृष्ठ का अंग्रेजी रूपान्तर भी छपा है पहला पृष्ठ बाल-कांड का है,दूसरा किष्किन्धा और तीसरा लंका का। पहले में लेखक का नाम नहीं है। इससे वह अनुपयोगी समझकर छोड़ दिया जाता है। दूसरे और तीसरे पृष्ठों की नकल नीचे दी जाती है :

२. (स) सुभत परम पद पावई।
रघुवीर पद पाथोज मधुकर दास तुलसी गावई॥
दोहा—भवभेषज रघुनाथ जसु, सुनहिं जे नर अरु नारि।
तिन्ह कर सकल मनोरथ, सिद्ध करहिं त्रिसिरारि॥
सोरठा—नीलोत्पल तन स्याम, काम कोटि सोभा अधिक।
सुनिय तासु गुन ग्राम, जासु नाम अघषग वधिक॥

इति श्रीरामचरितमानसे सकलकलिकलुषविध्वंसने विसुद्ध संतोष सम्पादिनी नाम चतुर्थस्सोपानः समाप्तः। शुभमस्तु संवत् १७०४ समए पौष शुदि द्वादसि लिषीतं रघु तिवारी कास्यां।

३. (लंकाकांड का अन्त)

······दास सो प्रभु मोह बस बिसराइयो॥
यह रावनारिचरित्र पावन रामपदरतिप्रद सदा।
कामादिहर विज्ञानकर सुर सिद्धि मुनि गावहि मुदा॥
दोहा—समर विजय रघुपतिचरित, सुनहिं जे सदा सुजान।
विजय विवेक विभूति नित, तिनहिं देहिं भगवान॥
यह कलिकाल मलायतन, मन करि देखु बिचार।
श्री रघुनायक नाम तजि, नहिं कछु आन अधार॥

इति श्री रामचरितमानसे सकलकलिकलुषविध्वंसने विमल विराग संपादिनी

नाम षष्ठः सोपानः समाप्तः। शुभमस्तु संवत् १७०४ समए। माघ सुदि प्रतिपद लिषीतं रघु तिवारी कास्यां लोलार्क समीपे। श्रीरामो जयति। श्रीविश्वनाथाय नमः। श्रीविदुमाधवाय नमः।

राजापुर की पोथी पर लेखक के हस्ताक्षर नहीं हैं। इस प्रति में प्रत्येक कांड के अंत में लेखक का नाम दिया हुआ है। कहीं 'रघु तिवारी हैं', कहीं 'रघु तीवारी'। दोनों के अक्षरों में आकाश-पाताल का अन्तर है।"

यह प्रति अब दुर्लभ है।

मानस-मधु

खोजने से संस्कृत-ग्रन्थों में 'रामचरितमानस' के बहुत से दोहों, सोरठों, छन्दों और चौपाइयों के मूल मिल जायेंगे। यह देखकर महान् आश्चर्य होता है कि तुलसीदास जी ने संस्कृत-ग्रन्थों का कैसा सूक्ष्म अध्ययन किया था। अब यह प्रश्न स्वभावतः सामने आता है कि क्या संस्कृत के सम्पूर्ण ग्रन्थ तुलसीदास को कंठस्थ थे? हम जितने ही गहरे जाते हैं, उतना ही उनके अद्वितीय रामायण की अद्भुत प्रतिभा देखकर चकित हो जाते हैं। संस्कृत नन्दन-कानन में विचरण करके तुलसीदास रूपी मधुप ने समस्त फूलों का रस लेकर जो मधु तैयार करके हिन्दू-जाति को दान किया है, उसकी तुलना संसार के किसी दान से नहीं की जा सकती। जैसे मधु अनेक शारीरिक व्याधियों को नाश करने में औषधियों को सहायता पहुँचाता है, वैसे ही 'रामचरितमानस' रूपी मधु अनेक मानसिक व्याधियों को नाश करने में सहायक होता है।

तुलसीदास ने 'मानस' में वाल्मीकि रामायण, अध्यात्म रामायण, श्रीमद्भागवत, प्रसन्नराघव और हनुमन्नाटक से अधिक सहायता ली है। इनके सिवा संस्कृत के दो सौ से अधिक ग्रन्थों के श्लोकों को भी चुन-चुनकर उन्होंने उनका रूपान्तर करके 'मानस' में भर दिया है। कहीं-कहीं एक चौपाई के भाव किसी एक पुराण से लिये गए हैं तो उसके आगे की चौपाई के भाव किसी दूसरे पुराण के हैं और उसके भी आगे की चौपाई में किसी नाटक या नीति-ग्रन्थ के भाव हैं। ऐसे स्थानों पर तो तुलसीदास के मस्तिष्क की महिमा देखते ही बनती है। मानो संस्कृत के दो-ढाई सौ ग्रन्थों के लाखों श्लोकों पर उनका एक सम्राट् की तरह अधिकार था, और वे जिसे जहाँ चाहते थे, उसे वहीं बुला लेते थे।

यहाँ संस्कृत-ग्रन्थों से लेकर कुछ उदाहरण दिये जाते हैं:

अध्यात्म-रामायण	रामचरितमानस
प्रातरुत्थाय सुस्नातः	प्रातःकाल उठिकै रघुनाथा।
पितरावभिवाद्य च।	मात पिता गुरु नावहिं माथा॥
पौरकार्याणि सर्वाणि	आयसु माँगि करहिं पुर काजा।
करोति विनयान्वितः॥	देखि चरित हरषहिं मन राजा॥
बन्धुभिस्सहितो नित्यं	वेद पुरान सुनहिं मन लाई।
भुक्त्वा मुनिभिरन्वहम्।	आपु कहहिं अनुजहिं समुझाई॥
धर्मशास्त्ररहस्यानि	जेहि विधि सुखी होहिं पुरलोगा।
शृणोति व्याकरोति च॥	करहिं कृपानिधि सोइ सँयोगा।
गोप्यं यदत्यन्तमनन्यवाच्यं	गूढ़ौ तत्त्व न साधु दुरावहिं।
वदन्ति भक्तेषु महानुभावाः।	आरत अधिकारी जहँ पावहिं॥
भरणाद् भरतो नाम	बिस्व भरन पोषनकर जोई।
लक्ष्मणं लक्षणान्वितम्।	ताकर नाम भरत अस होई॥
शत्रुघ्नं शत्रुहन्तार	जाके सुमरिन ते रिपु नासा।
मेवंगुरुरभाषत॥	नाम शत्रुहन वेद प्रकासा॥
यस्मिन्नलन्ते मुनयो	लक्षण धाम राम प्रिय,
विद्ययाऽज्ञानविप्लवे।	सकल जगत आधार।
तंगं गुरुः प्राह रामेति	गुरु वसिष्ठ तेहि राखेउ,
रमणाद्राम इत्यपि॥	लक्ष्मण नाम उदार॥
	जो आनन्दसिन्धु सुख रासी।
	सीकरते त्रैलोक सुपासी॥
	सो सुखधाम राम अस नामा।
	अखिल लोक दायक विस्रामा॥
क्षालयामि तव पादपंकजम्।	
नाथ दारुदृपदोः किमन्तरम्॥	चरन कमल रज कहँ सब कहई।
मानुषीकरणरेणुरस्ति ते	मानुष करनि मूरि कछु अहई॥
पादयोरिति कथा प्रथीयसी॥	
ततोऽपि मरणं श्रेयो	नैहर जन्म भरब बरु जाई।
यत्सपत्न्याः पराभवः।	जियत न करब सवति सेवकाई॥

अध्यात्म-रामायण—	रामचरितमानस—
ब्रूहि कं धनिकं कुर्यां दरिद्रं ते प्रियंकरम् । धनिनं क्षणमात्रेण निर्धनं च तवाहितम् ।।	कहु केहि रंकहिं करौं नरेसू । कहु केहि नृपति निकारौं देसू ।।
० ०	०
तमाह कैकेयी राजा रात्रौ निद्रां न लब्धवान् । राम रामेति रामेति राममेवानुचिन्तयन् ।।	परी न राजहिं नींद निसि, हेतु जानु जगदीस । राम-राम रटि भोर किय, कहेउ न मरमु महीस ।।
० ०	०
अहोऽतिसफलं जन्म लक्ष्मणस्य महात्मनः । राममेव सदान्वेति वलस्थमपि हृष्टधीः ।।	अहह धन्य लछिमन बड़ भागी । राम पदारविन्द अनुरागी ।।
० ०	०
आगमिष्यति रामोऽपि क्षणं तिष्ठ सहानुजः । मां को धर्षयितुं शक्तो हरेर्भार्यां शशो यथा ।।	कह सीता धरि धीरज गाढ़ा । आय गए प्रभु शठ रहु ठाढ़ा ।। जिमि हरिवधुहिं छुद्र सस चाहा ।।
० ०	०
अवतीर्णाविहपरौ चरन्तौ क्षत्रियाकृती । जगत्स्थितिलयोत्सर्ग लीलया कर्तुमुद्यतौ ।। स्वतन्त्रौ प्रेरकौसर्व हृदयस्थाविहेश्वरौ ।। नरनारायणौ लोके चरन्ताविति ते मतिः ।।	की तुम तीन देव महँ कोई । नर नारायन की तुम दोई ।। जग कारन तारन भव, भंजन धरनी भार । की तुम अखिल भुवनपति, लीन्ह मनुज अवतार ।।
० ०	०
उवाचाधोमुखी भूत्वा विधाय तृणमन्तरे ।	तृन धरि ओट कहति वैदेही ।
० ०	०

अध्यात्म-रामायण

अग्रे यास्याम्यहं पश्चात्
त्वमन्वेहि धनुर्धरः ।
भ्रातृयोर्मध्यगा सीता
मायेवात्मपरात्मनोः ॥

रामचरितमानस

आगे राम लखन पुनि पाछे ।
तापस वेष विराजत आछे ॥
उभय बीच सिय सोहति कैसे ।
ब्रह्म जीव बिच माया जैसे ॥

o o o

श्रीमद्भागवत

क्षणार्द्धेनापि तुलये
न स्वर्गं नापुनर्भवम् ।
भगवत्संगिसंगस्य
मर्त्यानां किमुताशिषः ॥

तात स्वर्ग अपवर्ग सुख,
धरिय तुला इक अंग ।
तुलै न ताहि सकल मिलि,
जो सुख लव सतसंग ॥

o o o

निशामुखेषु खद्योता-
स्तमसा भान्ति न ग्रहाः ।
यथा पापेन पाखण्डा
नहि वेदाः कलौ युगे ॥

निसि तम घन खद्योत विराजा ।
जनु दंभिन कर जुरा समाजा ॥

श्रुत्वा पर्जन्यनिनदं
मण्डूका व्यसृजन् गिरः ।
तूष्णीं शयानाः प्राग्यद्वद्
ब्राह्मण नियमात्यये ।

दादुर धुनि चहुँओर सुहाई ।
वेद पढ़ें जनु बटु समुदाई ॥

o o o

गिरयो वर्षधाराभि-
र्हन्यमाना न विव्यथुः ।
अभिभूयमाना व्यसनै-
र्यथाऽधोक्षजचेतसः ॥

बुन्द अघात सहैं गिरि कैसे ।
खल के बचन संत सहैं जैसे ॥

o o o

लोकबन्धुषु मेघेषु
विद्युतश्चलसौहृदाः ।
स्थैर्यं न चक्रुः कामिन्यः
पुरुषेषु गुणिष्विव ॥

दामिनि दमक रही घन माहीं ।
खल की प्रीति जथा थिर नाहीं ॥

o o o

श्रीमद्भागवत	रामचरितमानस
मेघागमोत्सवा हृष्टाः	लछिमन देखहु मोरगन,
प्रत्यनन्दन शिखण्डिनः ।	नाचत बारिद पेखि ।
गृहेषु तप्ता निर्विण्णाः	गृही विरति रत हर्षयुत,
यथाऽऽच्युतजनागमे ॥	विष्णुभक्त कहँ देखि ॥
०	०
जलौघैः निरभिद्यन्त	हरित भूमि तृन संकुल,
सेतवो वर्षतीश्वरे ।	समुझि परै नहि पंथ ।
पाखण्डिनामसद् वादै-	जिमि पाखंड विवाद तें,
र्वेदमार्गाः कलौ यथा ॥	लुप्त भए सद्ग्रंथ ॥
०	०
शरदा नीरजोत्पत्या	
नीराणि प्रकृतिं ययुः ।	
भ्रष्टानामिव चेतांसि	सरिता सर निर्मल जल सोहा ।
पुनर्योगनिषेवया ॥	संत हृदय जस गत मद मोहा ॥
०	०
गाधवारिचरास्ताप-	
मविदन् शरदर्कजम् ।	
यथा दरिद्रः कृपणः	जल संकोच विकल भये मीना ।
कुटुम्ब्यविजितेन्द्रियः ॥	विविध कुटुम्बी जिमि धनहीना ॥
०	०
शनैःशनैर्जहुः पङ्कं	
स्थलान्यामं च वीरुधः ।	
यथाहं ममता धीराः	रस रस सोप सरित सर पानी ।
शरीरादिष्वनात्मसु ॥	ममता त्याग करहिं जिमि ज्ञानी ॥
०	०
सान्द्रनीलाम्बुदैर्व्योम-	
सविद्युत्स्तनयित्नुभिः ।	
अस्पष्टज्योतिराच्छन्न-	फूले कमल सोह सर कैसे ।
ब्रह्मेव सगुणम्बभौ ॥	निर्गुन ब्रह्म सगुन भये जैसे ॥
०	०

श्रीमद्भागवत

वणिङ्मुनिनृपस्नाता
निर्गम्यार्थान् प्रपेदिरे ।
वर्षरुद्धा यथा सिद्धा-
स्स्वपिण्डान् काल आगते ।।

०

रामचरितमानस

चले हर्ष तजि नगर नृप,
तापस बनिक भिखारि ।
जिमि हरि भक्ती पाइ जन,
तजहिं आश्रमी चारि ।।

०

न वै शूरा विकत्थन्ते
दर्शयन्त्येव पौरुषम् ।

०

सूर कठिन करनी करहिं,
कहि न जनावहिं आप ।

०

स्त्रीबालगोद्विजघ्नाश्च
परदारधनादृताः ।
उदिताः स्तमितप्राया
अल्पसत्वाल्पकायुषः ।।
असंस्कृताः क्रियाहीना
रजसा तमसावृताः ।
प्रजास्ते भक्षयिष्यन्ति
म्लेच्छा राजन्यरूपिणः ।।
तन्नाथास्ते जनपदा-
स्तच्छीलाचारवादिनः ।
अन्योन्यतो राजभिश्च
क्षयं यास्यन्ति पीड़िताः ।।
राजानश्च प्रजाभक्षाः ।

द्विज श्रुतिबंचक भूप प्रजासन ।
कोउ नहिं मान निगम अनुसासन ।।
बर्न धर्म नहिं आस्रम चारी ।
श्रुति-विरोध-रत सब नर-नारी ।।

०

अनाढ्यतैवा साधुत्वे
साधुत्वे दम्भ एव तु ।
वित्तमेव कलौ नृणां
जन्माचारगुणोदयः ।।

मिथ्यारंभ दंभ रत जोई ।
ता कहुँ संत कहै सब कोई ।
सोइ सयान जो परधनहारी ।
जो कर दंभ सो बड़ आचारी ।

०

पाण्डित्ये चापलं वचः ।

पंडित सोइ जो गाल बजावा ।

०

शूद्राः प्रतिगृहीष्यन्ति
तपोवेषोपजीविनः ।

शूद्र करहिं जप तप व्रत दाना ।
बैठि बरासन कहहिं पुराना ।

श्रीमद्भागवत	रामचरितमानस
धर्मं वक्ष्यन्त्यधर्मज्ञा अधिरुह्योत्तमासनम् ।।	
नित्यमुद्विग्नमनसो दुर्भिक्षकरपीड़िताः । निरन्ने भूतले राजन्- अन्नावृष्टिभयातुराः ।।	कलि बारहिं बार दुकाल परै; बिनु अन्न दुखी बहु लोग मरै । नृप पापपरायन धर्म नहीं; करु दंड बिदंड प्रजा नितहीं ।
वासोऽन्नपानशयन- व्यवायस्नानभूषणैः । हीनाः पिशाचसंदर्शा भविष्यन्ति कलौ प्रजाः ।।	तामस धर्म करहिं नर, जप तप मख ब्रत दान । देव न बरषहिं धरनि पर, बए न जामहिं धान ।।
कलौ काकिणिकेऽप्यर्थे विगृह्य त्यक्तसौहृदाः । त्यक्ष्यन्ति च प्रियान् प्राणान् हनिष्यन्ति स्वकानपि ।।	ब्रह्मज्ञान बिनु नारि-नर, कहहिं न दूसरि बात । कौड़ी कारन मोहवस, करहिं विप्र गुरु घात ।।
अव्रता बटवोऽशौचा भिक्षवश्च कुटुम्बिनः । तपस्विनो ग्रामवासा न्यासिनो ह्यर्थलोलुपाः ।।	बहु धाम सँवारहिं जोग जती; विषया हरि लीन गई बिरती । तपसी धनवन्त दरिद्र गृही; कलि कौतुक तात न जात कही ।
लावण्ये केश धारणम् । ह्रस्वकाया महाहारा भूर्यपत्या गतह्रियः । शश्वत्कटुकभाषिण्य- श्चौर्यमायोरुसाहसाः ।।	अबला कच भूषन भूरि छुधा; धनहीन दुखी ममता बहुधा । सुख चाहहिं मूढ़ न धर्मरता; मति थोरि कठोरि न कोमलता ।।
कलेर्दोषनिधे राज- न्नस्ति ह्येको महान् गुणः । कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तसंगः परं व्रजेत् ।।	कलियुग सम युग आन नहिं, जो नर कर बिस्वास । गाइ रामगुन गन बिमल, भव तरु बिनहिं प्रयास ।।

श्रीमद्भागवत

कृते यद्ध्यायतो विष्णुं
त्रेतायां यजतो मखैः ।
द्वापरे परिचर्यायां
कलौ तद्धरि कीर्तनात् ।।

रामचरितमानस

कृतयुग सब जोगी विज्ञानी;
करि हरिध्यान तरहिं भव प्रानी ।
त्रेता त्रिविध यज्ञ नर करहीं;
प्रभुहिं समर्पि कर्म भव तरहीं ।
द्वापर करि रघुपति पद पूजा;
नर भव तरहिं उपाय न दूजा ।
कलि केवल हरिगुनगन गाहा;
गावत नर पावहिं भव थाहा ।

०

कलियुग जोग जग्य नहिं ज्ञाना;
एक अधार रामगुन गाना ।
सब भरोस तजि जो भज रामहिं;
प्रेम समेत गाव गुन ग्रामहिं ।
सो भव तरु कछु संसय नाहीं;
नाम प्रताप प्रकट कलि माहीं ।

मल्लानामशनिनृणां नरवरो
स्त्रीणां स्मरो मूर्तिमान् ।
गोपानां स्वजनोऽसतां क्षितिभुजां
शास्ता स्वपित्रोः शिशुः ।।
मृत्युर्भोजपतेर्विराडविदुषां
तत्त्वं परं योगिनां ।
वृष्णीनां परदेवतेति विदितो
रंगंगतः साग्रजः ।।

रंगभूमि आये दोउ भाई,
अस सुधि सब पुरवासिन्ह पाई।
जिन्ह के रही भावना जैसी ।
हरि मूरति देखी तिन्ह तैसी ।
देखहिं भूप महा रनधीरा ।
मनहुँ वीररस धरे शरीरा ।
डरे कुटिल नृप प्रभुहिं निहारी ।
मनहुँ भयानक मूरति भारी ।
रहे असुर छल छोनिप वेखा ।
तिन्ह प्रभु प्रकट काल सम देखा ।
पुरवासिन्ह देखे दोउ भाई ।
नर भूपन लोचन सुखदाई ।
नारि विलोकहिं हरषि हिय,
निज-निज रुचि अनुरूप ।
जनु सोहत शृङ्गार धरि,
मूरति परम अनूप ।।

रामचरितमानस

विदुषन प्रभु विराटमय दीसा।
बहु मुख, कर,पद,लोचन, सीसा।
जनक जाति अवलोकहिं कैसे।
सजग सगे प्रिय लागहिं जैसे।
सहित बिदेह बिलोकहिं रानी।
सिसु सम प्रीति न जाइ बखानी।
जोगिन्ह परम तत्त्व मय भासा;
संत सुद्ध मन सहज प्रकासा।
हरि-भगतन देखे दोउ भ्राता,
इष्टदेव इव सब सुखदाता।
रामहिं चितव भाव जेहिं सीया
सो सनेह मुख नहिं कथनीया।
उर अनुभवति न कहि सक कोऊ।
कवन प्रकार कहइ कवि कोऊ ?
जेहि विधि रहा जाहि जस भाऊ,
तेहि तस देखेउ कोसलराऊ।"

० ० ०

प्रसन्नराघव (नाटक)

कामातुरस्यवचसामिव संविधानै— रभ्यर्थितं प्रकृतिचारु मनः सतीनाम्।	डगइ न शंभु सरासन कैसे। कामी बचन सती मन जैसे॥
० ०	०
अलमिति क्षीरकण्ठे कठोरकोपतया।	नाथ करिय बालक पर छोहू। सूब दूधमुख करिय न कोहू॥
० ०	०
आः किमुच्यते क्षीरकण्ठ इति। विपकण्ठः खल्वसौ।	कालकूट मुख पय मुख नाहीं॥
० ०	०
अयि देव्याकर्ण्य तावत्यत् संदिष्टं देवेन देव्याः- हिमांशुश्चण्डांशु- र्नवजलधरो दावदहनः।	कहेउ राम वियोग तव सीता। मो कहँ सकल भयउ विपरीता॥ नव तरु किसलय मनहुँ कृसानू। कालनिसा सम निसि ससि भानू॥

प्रसन्नराघव (नाटक)

सरिद्वीचीवातः कुपित-
फणिनिःश्वासपवनः ।
नवा मल्ली भल्ली
कुवलयवनं कुन्तगहनं,
मम त्वद्विश्लेपात्
सुमुखि विपरीतं जगदिदम् ॥
अपि च—
कास्याख्यायव्यतिकरमिमं
मुक्तदुःखो भवेयं
को जानीते निभृतमुभयो-
रावयोः स्नेहसारम् ।
जानात्येकं शशधरमुखि
प्रेमतत्त्वं मनो मे
त्वामेवैतत् चिरमनुगतं
तत् प्रिये किं करोमि ॥

रामचरितमानस

कुवलय विपिन कुंत बन सरिसा ।
वारिद तपत तेल जनु बरिसा ॥
जे हित रहे करत तेइ पीरा ।
उरग स्वास सम त्रिविध समीरा ।
कहेहु ते कछु दुख घटि नहिं होई ।
काहि कहउँ यह जान न कोई ॥
तत्त्व प्रेम कर मम अरु तोरा ।
जानत प्रिया एक मन मोरा ॥
सो मन रहत सदा तोहि पाँहीं ।
जानु प्रीति रस एतनेहि माँहीं ॥

० ० ०

रावण
मां जीवय नयनामृतेन—
मंदोदरीमपि विमुञ्चति राज्यमेत-
दप्युन्मदं तव पदाब्जतले करोति ।

कह रावन, सुनु सुमुखि सयानी !
मंदोदरी आदि सब रानी ।
तव अनुचरी करौं पन मोरा ।
एक बार बिलोकु मम ओरा ।

० ० ०

यदि खद्योतभासापिसमुन्मीलति
पद्मिनी ।

× × कहति बैदेही ।
सुनु दसमुख खद्योत प्रकासा ।
कबहुँ कि नलिनी करइ बिकासा ?

० ० ०

आः पापे ! यावत् किलतपन-
खद्योतयोस्तावदंतरं रामरावणयोः ।
तदियं हन्यसे ।
(इति खड्गमुत्पाटयति ।

आपुहि सुनि खद्योत सम,
रामहिं भानु समान ।
परुष बचन सुनि काढ़ि असि,
बोला अति खिसियान ॥

० ० ०

प्रसन्नराघव (नाटक)	रामचरितमानस
रावण	
तदिदानीमपि दशकंठभुजाश्लेप- भेपजमनुजानीहि ।	सीता, तैं मम कृत अपमाना; कटिहउँ तव सिर कठिन कृपाना। नाहित सपदि मानु मम बानी; सुमुखि होत न तु जीवन हानी।
रघुपतिभुजदंडा- दुत्पलश्यामकांते– दशमुख भवदीयान् निष्कृपाद्वा कृपाणात्।	स्याम सरोज दाम सम सुन्दर। प्रभु भुज करिकर सम दसकंधर। सो भुज कंठ कि तव असि घोरा। सुनु सठ अस प्रमान पन मोरा।
चन्द्रहास हर मे परितापं। रामचन्द्रविरहानलजातम्। त्वं हि कान्तिजितमौक्तिकचूर्णं। धारया वहसि शीतलमंभः।	चन्द्रहास हर मम परितापं। रघुपति विरह अनल संजातं। सीतल निसित वहसि वर धारा। कह सीता हरु मम दुख भारा।
कमठपृष्ठकठोरमिदं धनु- र्मधुरमूर्तिरसौ रघुनन्दनः। कथमधिज्यमनेन विधीयताम् अहह तात पणस्तव दारुणः॥	कहँ धनु कुलिसहुँ चाहि कठोरा, कहँ स्यामल मृदु गात किसोरा। अहह तात दारुन हठ ठानी, समुझत नहिं कछु लाभ न हानी।
हनुमन्नाटक	
आद्वीपात् परतोऽप्यमीनृपतयः सर्वे समभ्यागताः कन्यायाः कलधौतकोमलरुचेः कीर्तेश्च लाभः परः। नाकृष्टं न च टंकितं न नमितं नोत्थापितं स्थानतः केनापीदमहो महद्धनुरिदं निर्वीरमुर्वीतलम्॥	दीप दीप के भूपति नाना, आये सुनि हम जो पन ठाना। कुँवरि मनोहरि विजय बड़ि, कीरति अति कमनीय! पावनहारु विरंचि जनु, रचेउ न धनु दमनीय॥ कहहु काहि यह लाभ न भावा, काहु न संकर चाप चढ़ावा।

हनुमन्नाटक	रामचरितमानस
	रहा चढ़ाउब तोरब भाई, तिल भर भूमि न सकेउ छुड़ाई। अब कोउ जनि माखै भट मानी, बीर विहीन मही मैं जानी।
देव श्रीरघुनाथ किम्बहुतया दासोऽस्मि ते लक्ष्मण:। मेर्वादीनपि भूधरान् न गणये जीर्णः पिनाकः कियान्॥ तन्मामादिश पश्य पश्य च बलं भृत्यस्य यत् कौतुकम्। प्रोद्धर्तुं प्रतिनामितुं प्रचलितुं नेतुं निहन्तुं क्षमः।	सुनहु भानुकुल पङ्कज भानू, कहौं स्वभाव न कछु अभिमानू। जो राउर अनुसासन पाऊँ, कन्दुक इव ब्रह्माण्ड उठाऊँ। काचे घट जिमि डारौं फोरी, सकौं मेरु मूलक इव तोरी। तव प्रताप महिमा भगवाना, का बापुरो पिनाक पुराना। नाथ जानि अस आयसु होऊ, कौतुक करौं विलोकिय सोऊ। कमलनाल जिमि चाप चढ़ावौं, सत जोजन प्रमान लै धावौं।
शृणुत जनककल्पाः क्षत्रियाः शुल्कमेते, दशवदनभुजानां कुण्ठिता यत्र शक्तिः। नमयतु धनुरैशं यस्तदारोपणेन, त्रिभुवनजयलक्ष्मीर्जानकी तस्य दाराः॥	बोले बन्दी बिरद बर, सुनहु सकल महिपाल। प्रन विदेह कर कहहिं हम, भुजा उठाइ विसाल॥ नृपभुजबल विधु शिव धनु राहू। गरुअ कठोर विदित सब काहू। रावन बान महा भट भारे, देखि सरासन गवहिं सिधारे। सोइ पुरारि कोदण्ड कठोरा, राजसमाज आज जेहि तोरा। त्रिभुवनजय समेत वैदेही, बिनहिं बिचार बरिहि हठि तेही।

हनुमन्नाटक	रामचरितमानस
लक्ष्मणः रामे सज्यं धनुकुर्वति सति पृथ्वादीनि भुवनान्यधो यास्यन्ति इति आशङ्कया आह— 'पृथ्वि स्थिरा भव भुजङ्गम धानयैनां त्वं कूर्मराज तदिदं द्वितयं दधीथाः। दिक्कुञ्जराः कुरुत तत्त्रितये दिधीर्षां, रामः करोति हरकार्मुकमाततज्यम् ॥	लखन लखेउ रघुवंस-मनि, ताकेउ हर कोदण्ड। पुलकि गात बोले बचन, चरन चापि ब्रह्मण्ड ॥ दिसि कुंजरहु कमठ अहि कोला, धरहु धरनि धरि धीर न डोला।
०	०
त्रुट्यद् भीमधनुःकठोरनिनद स्तत्राकरोद्विस्मयं, त्रस्यद्वाजिरवेरमार्गगमनं शम्भोःशिरःकम्पनम्। दिग्दन्तिस्खलनं कुलाद्रिचलनं सप्तार्णवोन्मेलनम्, वैदेही मदनं मदान्धदमनं त्रैलोक्यसम्मोहनम् ॥	भरि भुवन घोर कठोर रव रवि वाजि तजि मारग चले। चिक्करहिं दिग्गज डोल महि अहि कोल कूरम कलमले। सुर असुर मुनि कर कान दीन्हें विकल सकल विचारहीं। कोदण्ड भंजेउ राम तुलसी जयति वचन उचारहीं ॥
०	०
यद्वभञ्ज जनकात्मजाकृते राघवः पशुपतेर्महद्धनुः। तद्धनुर्गुणरोपितस्त्वाजगाम जमदग्निजो मुनिः ॥	तेहि अवसर सुनि सिव धनु भंगा, आये भृगुकुल कमल पतङ्गा।
०	०
चूडाचुम्बितकङ्कपत्रमभित स्तूणीद्वयं पृष्ठतो- भस्मस्निग्धपवित्रलाञ्छितमुरो धत्ते त्वचं रौरवीम्। मौञ्ज्या मेखलया नियंत्रितमधो वासश्च माञ्जिष्ठकम्। पाणौ कार्मुकसाक्षसूत्रवलयं दण्डोऽपरः पैप्पलः ॥	गोर सरीर भूति भलि भ्राजा, भाल विसाल त्रिपुण्ड विराजा। वृषभ कन्ध उर बाहु विसाला, चारु जनेउ माल मृगछाला। कटि मुनि वसन तून दुइ बाँधे, धनु सर कर कुठार कल काँधे ॥
०	०

हनुमन्नाटक

अयं कण्ठः कुठारस्ते कुरु राम यथोचितम्।
निहन्तुं हन्त गोविप्रान्न शूरा रघुवंशजाः।।

रामचरितमानस

राम कहा रिसि तजिय मुनीसा,
कर कुठार आगे यह सीसा।
जेहिं रिसि जाइ करिय सोइ स्वामी,
जानि मोहि आपन अनुगामी।
सुर महिसुर हरिजन अरु गाई,
हमरे कुल इन पर न सुराई।

०

भो ब्रह्मन् भवता समं न घटते
संग्रामवार्तापि नः।
सर्वे हीनवला वयं बलवतां
यूयं स्थिता मूर्धनि।
यस्मादेकगुणं शरासनमिदं
सुव्यक्तमुर्वीभुजाम्।
अस्माकं भवतां यतो नवगुणं
यज्ञोपवीतं बलम्।।

हमहिं तुमहिं सरबरि कस नाथा,
कहहु तो कहाँ चरन कहँ माथा।
देव एक गुन धनुष हमारे,
नवगुन परम पुनीत तुम्हारे।

०

सद्यः पुरी परिसरेपु शिरीषमृद्वी,
गत्वा जवात्त्रिचतुराणि पदानि सीता।
गन्तव्यमस्ति कियदित्यसकृद् ब्रुवाणा,
रामाश्रुणः कृतवती प्रथमावतारम्।

पुर तें निकसी रघुबीर बधू,
धरि धीर दये मग में डग द्वै।
झलकी भरि भाल कनी जल की,
पट सूखि गये मधुराधर वै।
फिरि बूझति हैं चलनोऽब कितो
प्रिय पर्नकुटी करिहौ कित ह्वै।
तिय की लखि आतुरता पिय की,
अँखियाँ अति चारु चलीं जल च्वै।।
(कवितावली)

०

पथि पथिकवधूभिः सादरं पृच्छ्यमाना,
कुवलयदलनीलः कोऽयमार्ये तवेऽति।
स्मितविकसितगण्डं ब्रीडविभ्रान्तनेत्रम्,
मुखमवनमयन्ती स्पष्टमाचष्ट सीता।।

सीय समीप ग्राम तिय जाहीं,
पूछति अति सनेह सकुचाहीं।
कोटि मनोज लजावनि हारे,
सुमुखि कहहु को अहहिं तुम्हारे।
सुनि सनेहमय मंजुल बानी,
सकुचि सीय मन महँ मुसुकानी।

हनुमन्नाटक	रामचरितमानस
	बहुरि बदन बिधु अंचल ढाँकी, पिय तन चितइ भौंह करि बाँकी। खंजन मंजु तिरीछे नयननि, निज पति कह्यो तिनहिं सिय सयननि।
० ०	०
पदकमलरजोभिर्मुक्तपाषाणदेह- मलभत यदहल्यां गौतमो धर्मपत्नीम्। त्वयि चरति विशीर्णग्रावविन्ध्याद्रिपादे, कति कति भवितारस्तापसा दारवन्तः॥	विन्ध के वासी उदासी तपो - ब्रतधारी महा बिनु नारि दुखारे। गौतम तीयतरी तुलसी सो कथा सुनि भे मुनिवृन्द सुखारे! ह्वै हैं सिला सब चन्द्रमुखी परसे पद मंजुल कंज तिहारे। कीन्हीं भली रघुनायकजू करुना करि कानन को पगु धारे॥ (कवितावली)
० ०	०
उपलतनुरहल्या गौतमस्यैव शापात्। इयमपिमुनिपत्नी शापता कापि वा स्यात्। चरणनलिनसंगानुग्रहं ते भजन्ती। भवतु चिरमियं न श्रीमती पोतपुत्री।	चरन कमल रज कहँ सब कहई। मानुस करनि मूरि कछु अहई॥ छुवति सिला भइ नारि सुहाई। पाहन ते न काठ कठिनाई॥ तरनिउ मुनिघरनी ह्वै जाई। बाट परै मोरि नाव उड़ाई॥
० ०	०
तातत्वं निजतेजसैव गमितः स्वर्गं व्रज स्वस्ति ते। ब्रूमस्त्वेकमिमां वधूहृतिकथां तातान्तिके मा कृथाः। रामोऽहं यदि तद्दिनैः कतिपयै- र्व्रीडानमत्कन्धरः । सार्धं वन्धुजनेन सेन्द्रविजयी वक्ता स्वयं रावणः॥	जल भरि नयन कहा रघुराई, तात कर्म निज ते गति पाई। तनु तजि तात जाहु मम धामा, देउँ काह तुम पूरन कामा। सीता हरन तात जनि, कहेउ पिता सन जाय। जो मै राम तो कुलसहित, कहिहि दसानन जाय।
० ०	०

हनुमन्नाटक	रामचरितमानस
पापेनाकृष्यमाणा रजनिचरवरेणाम्बरेण ब्रजन्ती ।	गगनपंथ देखी मैं जाता,
किष्किन्धाद्रौ मुमोच प्रचुरमणिगणौ भूषणान्यर्पितानि ।	परबस परी बहुत बिलखाता ।
हा राम प्राणनाथेत्यहह जहि रिपु लक्ष्मणेनालपन्ती ।।	राम राम हा राम पुकारी,
यानीमानीति तानि क्षिपतिरघुपुरं कामरामांजनेयः ।।	मम दिसि देखि दीन्ह पट डारी ।
	माँगा राम तुरत सो दीन्हा,
	पट उर लाइ सोच अति कीन्हा ।।

० ० ०

शाखामृगस्य शाखायाः शाखां गन्तुं पराक्रमः ।	साखामृग की अति मनुसाई । साखा ते साखा पर जाई ।।
यत्पुनर्लङ्घितोऽम्भोऽधिः प्रभावोऽयं प्रभो तव ।	लाँघि सिन्धु हाटकपुर जारा । निसिचरगन बधि नगर उजारा ।।
	सो सब तव प्रताप रघुराई । नाथ न कछुक मोरि प्रभुताई ।।

० ० ०

नृपतिमुकुटरत्न त्वत्प्रयाणप्रशस्तिम् ।	सहि सक न भार अपार अहिपति, वार-वार विमोहई ।
प्लवगवलनिमज्जद् भूधराक्रान्तदेहः ।	गहि दसन पुनि-पुनि कमठ पृष्ठ कठोर सो किमि सोहई ।
लिखति दशनटंकैरुत्पतद्भिः पतद्भिः,	रघुवीर रुचिर प्रयान प्रस्थित जानि परम सुहावनी ।
जरठकमठभर्तुः खर्परे सर्पराजः ।।	जनु कमठ खर्पर सर्पराज सो लिखत अविचल पावनी ।।

० ● ०

या विभूतिर्दशग्रीवे शिरश्छेदेऽपि शंकरात् ।	जो सम्पति सिव रावनहिं, दीन्ह दिये दस माथ ।
दर्शनात् रामदेवस्य सा विभूतिर्विभीषणे ।।	सो सम्पदा विभीषनहिं, सकुचि दीन्हि रघुनाथ ।।

० ० ०

हनुमन्नाटक	रामचरितमानस
यो युष्माकमदीदहत्पुरमिदं	
योऽदीदलत्काननम् ।	रावन नगर अल्प कपि दहई ।
योऽक्षं वीरममीमरद् गिरिदरी-	सुनि अस वचन सत्य को कहई ॥
र्योऽवीभरद्राक्षसैः ।	जो अति सुभट सराहेउ रावन ।
सोऽस्माकं कटके कदाचिदपिनो	सो सुग्रीव केर लघु धावन ॥
वीरेषु सम्भाव्यते,	चलै बहुत सो वीर न होई ।
दूतत्वेन इतस्ततः प्रतिदिनं	पठवा खबरि लेन हम सोई ॥
संप्रेष्यते साम्प्रतम् ॥	

० ० ०

हनुमन्नाटक	रामचरितमानस
रामः स्त्रीविरहेण हारितवपुः	
तच्चिन्तया लक्ष्मणः ।	तव प्रभु नारिविरह बलहीना ।
सुग्रीवोङ्गदशल्यभेदकतया	अनुज तासु दुख दुखी मलीना ॥
निर्मूल कूलद्रुमः ॥	तुम सुग्रीव कूलद्रुम दोऊ ।
गण्यः कस्यविभीषणः स च रिपोः	बन्धु हमार भीरु अति सोऊ ॥
कारुण्यदैन्यातिथिः ।	सिल्प कर्म जानत नल नीला ।
लङ्कातङ्कविटङ्कपावकपटुः	है कपि एक महाबलसीला ॥
वध्यो ममैकः कपिः ।	आवा प्रथम नगर जेहि जारा ।

० ० ०

हनुमन्नाटक	रामचरितमानस
रे रे रावण दीन हीन कुमते,	
रामोऽपि किं मानुषः ।	राम मनुज कस रे सठ बंगा ।
किं गङ्गाऽपि नदीगजः सुरगजो,	धन्वी काम नदी पुनि गंगा ॥
ऽप्युच्चैश्रवाः किं हयः ।	सेनसहित तव मान मथि,
किं रम्भाप्यबला कृतं किमु युगं,	बन उजारि पुर जारि ।
कामोऽपि धन्वी न किम् ।	कस रे सठ हनुमान कपि,
त्रैलोक्य प्रकट प्रभाव विभवः,	गयउ जो तव सुत मारि ॥
किं रे हनूमान् कपिः ॥	

० ० ०

हनुमन्नाटक	रामचरितमानस
रे रे रावण रावणाः कति बहू-	कहु रावन रावन जग केते ।
न्येतान्वयं शुश्रुमः ।	मैं निज स्रवन सुने सुन तेते ॥
प्रागेकं किल कार्तवीर्यनृपते-	बलि जीतन यक गयउ पताला ।
र्दोर्दण्डपिण्डीकृतम् ।	राखा बाँधि सिसुन हयसाला ॥

हनुमन्नाटक

एकं नर्तनदापितान्नकवलं
दैतेन्द्रदासीगणै-
रन्यंवक्तुमपि भयामह इति
त्वं तेषु कोऽन्योऽथवा ॥

रामचरितमानस

एक बहोरि सहसभुज देखा।
धाइ धरा जनु जन्तु बिसेखा॥
एक कहत मोहि सकुच अति,
रहा बालि की काँख।
इन महँ रावन तैं कवन,
सत्य कहहु तजि माँख॥

०

रामस्तिष्ठतु लक्ष्मणेन धनुषा
रेखाकृता, लङ्घिता।
तच्चारेण च लङ्घितो जलनिधि
र्दग्धा हतोऽक्षः पुरी॥

राम अनुज धनुरेख खँचाई।
सो नहिं लाँघेउ अस मनुसाई॥
कौतुक सिन्धु लाँघि तव लंका।
आयउ कपि केहरी असंका॥
रखवारे हति बिपिन उजारा।
देखत तुमहिं अछय जिन मारा॥

०

मनसि वचसि काये जागरे स्वप्नमार्गे।
यदि मम पतिभावो राघवादन्यपुंसि।
तदिह हर ममाङ्ग पावकं पावकत्वम्।
सुललितफलभागां त्वं हि कर्मकसाक्षी॥

जो मन क्रम वच मम उर माहीं।
तजि रघुबीर आन गति नाहीं॥
तो कृसानु सबकी गति जाना।
मो कहँ होउ श्रीखण्ड समाना॥

०

गीता

चतुर्विधा भजन्ते मां
जनाः सुकृतिनोर्जुन।
उदाराः सर्व एवैते
ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्॥

रामभक्त जग चारि प्रकारा।
सुकृती चारिउ अनघ उदारा॥
ज्ञानी प्रभुहि विशेष पियारा।

०

यदा यदा हि धर्मस्य
ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य
तदात्मानं सृजाम्यहम्॥
परित्राणाय साधूनां
विनाशाय च दुष्कृताम्।

जब-जब होइ धर्म कै हानी।
बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी॥
तब तब हरि धरि बिबिध सरीरा।
हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा॥

गीता	रामचरितमानस
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे ॥	
० ०	०
या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी ।	एहि जग जामिनी जागहिं जोगी । परमारथी प्रपंच वियोगी ॥
० ०	०
संभावितस्य चाकीतिर्मरणादतिरिच्यते ।	संभावित कहँ अपजस लाहू । मरन कोटि सम दारुन दाहू ॥
० ०	०
ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशोऽर्जुन तिष्ठति । भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढ़ानि मायया ॥	उमा दारुपयोपित की नाई । सबहिं नचावत राम गुसाईं ॥
० ०	०
तुल्यनिंदास्तुतिर्मौनी संतुष्टो येन केनचित् । अनिकेतः स्थिरमति- र्भक्तिमान् मे प्रियो नरः ॥	निन्दा अस्तुति उभय सम, ममता मम पद कंज । ते सज्जन मम प्रानप्रिय, गुनमन्दिर सुखपुञ्ज ॥
० ०	०
मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये । यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः ॥	नरसहस्र महँ सुनहु पुरारी । कोउ इक होय धर्मव्रतधारी ॥ धर्मसील कोटिन महँ कोई । विषय विमुख विरागरत होई कोटि विरक्त मध्य श्रुति कहई । सम्यक्ज्ञान सुकृति कोउ लहई ॥ ज्ञानवन्त कोटिन महँ कोई । जीवन्मुक्त सुकृति कोइ होई ॥ तिन सहस्रन महँ सब सुखदानी । दुर्लभ ब्रह्मनिरत विज्ञानी ॥
० ०	०
अगस्त्य रामायण सर्वेषां हृदये ह्यासदेष एव मनोरथः । स्वजीवने सुदयया तव शंकर बुद्धिमान् । युवराजपदं राजा रामचन्द्राय यच्छतु ॥	सबके उर अभिलापु अस, कहहिं मनाइ महेस । आपु अछत जुवराज पद, रामहिं देहिं नरेस ॥
० ०	०

अगस्त्य रामायण

यो जनः स्वच्छहृदयः स
मां प्राप्नोति नापरः ।
मह्यं कपट दंभानि
न रोचन्ते कपीश्वर ॥

रामचरितमानस

निरमल मन जन सो मोहि पावा ।
मोहि कपट छल छिद्र न भावा ॥

० ० ०

अग्निवेश रामायण

एतेषां गणना नवद्वयमहा-
पद्मावधिर्वर्णिता ।

अस मैं स्रवन सुना दसकन्धर ।
पदुम अठारह जूथप बन्दर ॥

• • •

आनन्द रामायण

पर्वतश्रेण्यो राजन्
भुवनानि चतुर्दश ॥
तेषु चोत्तमकर्माणि
मेघा भूत्वा स्थले-स्थले ।
पूर्णानन्द पयोवृष्टिं
कुर्वन्ति वसुधातले ॥
ऋद्धयः सिद्धयश्चापि
समस्तसुखसम्पदः ।
नद्यो भूत्वा त्वयोध्याब्धि
मिलन्त्यवधवासिनः ॥
नरा नार्यश्च सम्पूर्णाः
सदा सुकृतकारिणः ।
बहुमूल्यानि रत्नानि
पवित्राणि पराणि च ।

भुवन चारिदास भूधर भारी ।
सुकृत मेघ बरषहिं सुख बारी ।
रिधि सिधि संपति नदी सुहाई ।
उमगि अवध अंबुधि कहँ आई ।
मनिगन पुर नर-नारि सुजाती ।
सुचि अमोल सुन्दर सब भाँती ।

० ० ०

सीतारामप्रेमपीयूषपूर्णं
जन्म स्यान्नो केकयीनन्दनस्य ।
चेत्कः कुर्याद् दुर्गमान् वै मुनीनां
योगान् राजन् भारतेऽस्मिन् पवित्रे ॥
दारिद्र्यदम्भदाहानां
दुःसदूषणयोस्तथा ।

सिय राम प्रेम पियूष पूरन
होत जनम न भरत को ।
मुनि मन अगम यम नियम सम
दम विषम व्रत आचरत को ॥
दुख दाह दारिद दंभ दूषन
सुजस मिस अपहरत को ।

आनन्द रामायण	रामचरितमानस
कीर्तिव्याजेन को नाशं कुर्यात्कलियुगे हठात् ॥ शठान्नो कोऽपि राजेन्द्र कः कुर्याद्रामसम्मुखे ।	कलिकाल तुलसी से सठन्हि हठि राम सनमुख करत को ॥

o o o

उत्तररामचरित	
लौकिकानां हि साधूना-मर्थंवागनुवर्तते । ऋषीणां पुनराद्यानां वाचमर्थोऽनुधावति ॥	राजन राउर नामु जसु, सब अभिमत दातार । फल अनुगामी महिपमनि, मन अभिलाषु तुम्हार ॥

o o o

कुमार सम्भव	
शाम्येत्प्रत्युपकारेण नोपकारेण दुर्जनः ।	विनय न मान खगेस सुनु डाटेहि पै नव नीच ॥

o o o

गर्ग संहिता	
दुर्जनाः शिल्पिनो दासा दुष्टश्च पटहाः स्त्रियः । ताडिता मार्दवं यान्ति न ते सत्कारभाजनम् ॥	ढोल गँवार सूद्र पसु नारी । सकल ताड़ना के अधिकारी ।

o o o

गालव संहिता	
मित्रस्य दुःखेन जना दुःखिता नो भवन्ति ये । तेषां दर्शनमात्रेण पातकं बहुलं भवेत् ॥	जे न मित्र दुख होहिं दुखारी । तिन्हहिं विलोकत पातक भारी ।

o o o

चम्पू रामायण	
एवं निशम्य कुपितः पिशिताशनेन्द्रः प्राणानमुष्य हरतेति भटानवादीत् । आजन्म शुद्धमतिरत्र विभीषणस्तं दूतो न वध्य इति शास्त्रगिरा रुरोध ॥	सुनि कपि वचन बहुत खिसियाना । वेगि न हरहु मूढ़ कर प्राना । सुनत निसाचर मारन धाए । सचिवन्ह सहित विभीषन आये । नाइ सीस करि विनय बहूता । नीति विरोध न मारिय दूता ।

o o o

चाणक्य-नीति

परोक्षे कार्यहन्तारं
प्रत्यक्षे प्रियवादिनम् ।
वर्जयेत् तादृशं मित्रं
विषकुम्भं पयोमुखम् ।

रामचरितमानस

आगे कह मृदु बचन बनाई ।
पाछे अनहित मन कुटिलाई ।
जाकर चित अहि गति सम भाई ।
अस कुमित्र परिहरे भलाई ।

० ० ०

देवी भागवत

उपविष्टं तदा रामं
सानुजं दुःखमानसम् ।
पप्रच्छ नारदः प्रीत्या
कुशलं मुनिसत्तमः ।

नाना विधि विनती करि
प्रभु प्रसन्न जिय जानि ।
नारद बोले बचन तब
जोरि सरोरुह पानि ॥

० ० ०

पंचतंत्र

उद्यमेन विना राजन्
न सिद्धयन्ति मनोरथाः ।
कातरा इति जल्पन्ति
यद्भाव्यं तद्भविष्यति ॥

कायर मन कहँ एक अधारा ।
दैव-दैव आलसी पुकारा ।

० ० ०

पद्म पुराण

यत्र-यत्र ययौ काकः
शरणार्थी स वायसः ।
तत्र-तत्र तदस्त्रं तु
प्रविवेश भयावहम् ॥

जिमि-जिमि भाजत सक्रसुत,
व्याकुल अति दुख-दीन ।
तिमि-तिमि धावत राम सर,
पाछे परम प्रवीन ॥

० ० ०

पराशर-संहिता

न व्रतेनोपवासैश्च
धर्मेण विविधेन च ।
नारी स्वर्गमवाप्नोति
केवलं पतिपूजनात् ।

बिनु स्रम नारि परम गति लहई ।
पतिव्रत धर्म छाँड़ि छल गहई ।

० ० ०

भट्टिकाव्य

ज्ञात्वा मासमतिक्रांतं
व्यथामवलम्बिरे ।
अकृत्वा नृपतेः कार्यं
पूजां लप्स्यामहे कथम् ॥

रामचरितमानस

इहाँ बिचारहिं कपि मन माहीं ।
बीती अवधि काज कछु नाहीं ।
सब मिलि कहहिं परसपर बाता ।
बिनु सुधि लये करब का भ्राता ।

० ० ०

प्रस्ताव-रत्नाकर

अविधेया भृत्यजनाः शठानि
मित्राण्यदायकः स्वामी ।
अविनयवती भार्या
मस्तक शूलानि चत्वारि ॥

सेवक सठ नृप कृपिन कुनारी ।
कपटी मित्र सूल सम चारी ।

० ० ०

वशिष्ठ रामायण

ये धारयन्ति गुरुपादरजः स्वशीर्षे ।
ते वै विभूतिमखिलां वशयन्ति नूनम् ॥

जे गुरु चरन रेनु सिर धरहीं ।
ते जनु सकल बिभव बस करहीं ।

० ० ०

ब्रह्म रामायण

मुक्तेर्जन्मधरा काशी
ज्ञानखान्यघनाशिनी ।
सोमः शंभुर्वसत्यत्र
सदा सेव्या जनैरियम् ॥

मुक्ति जनम महि जानि,
ग्यानखानि अघहानिकर ।
जहँ बस शंभु भवानि,
सो कासी सेइय कस न ॥

० ० ०

ब्रह्मवैवर्तपुराण

इन्द्रोपेन्द्रविरंच्याद्यै
र्यत्कृपालंध्यते सुरैः ।

जासु कृपा अज सिव सनकादी ।
चहत सकल परमारथवादी ।

० ० ०

वाल्मीकि रामायण

क्व ते रामेण संसर्गः
कथं जानासि लक्ष्मणम् ।
वानराणां नराणां च
कथमासीत्समागमः ॥

नर-बानरहि संग कहु कैसे ।
कही कथा भइ संगति जैसे ।

विष्णु पुराण	रामचरितमानस
ऊहुरुन्मार्गगामीनि	छुद्र नदी भरि चली तोराई।
निम्नगाम्भांसि सर्वतः ।	जस थोरेहु धन खल इतराई।
मनांसि दुर्विनीतानां	
प्राप्य लक्ष्मी नवामिव ॥	

० ० ०

भर्तृहरि शतक

कान्ताकटाक्षविशिषा न लुनन्ति यस्य	नारि नयन सर जाहि न लागा।
चित्तं न निर्दहति कोपकृशानुतापः।	घोर क्रोध तम निसि जो जागा।
कर्पन्ति भूरिविषयाश्च न लोभपाशै--	लोभ पास जेहि गर न बँधाया।
र्लोकत्रयं जयति कृत्स्नमिदं स धीरः ॥	सो नर तुम्ह समान रघुराया ॥

० ० ०

भोज प्रबन्ध

सर्वस्य द्वे सुमतिकुमती संपदापत्तिहेतू।	सुमति कुमति सबके उर रहहीं।
	नाथ पुरान निगम अस कहहीं ॥

० ० ०

मातृका-विलास

जानीयात्संगरे भृत्यान्	धीरजु धरम मित्र अरु नारी।
बांधवान् व्यसनागमे।	आपतकाल परखियहि चारी।
भार्यां क्षीणेषु वित्तेषु	
युद्धे शूरं धने शुचिम् ॥	

० ० ०

याज्ञवल्क्य रामायण

कोमलं वचनं श्रुत्वा	सुनि मृदु बचन कुमति अति जरई।
कुमतिर्ज्वलिता सती।	मनहुँ अनल आहुति घृत परई।
अब्रवीत् केकयी तेऽत्र	करहु कहै किन कोटि उपाया।
माया नैव चलिष्यति ॥	इहाँ न लागिहि राउरि माया।
दीयतामथवा कृत्वा	देहु कि लेहु अजसु करि नाहीं।
नकारमयशो नृप।	मोहि न बहुत प्रपंच सोहाहीं।
गृह्यतां शीघ्रमेवाऽत्र	रामु साधु तुम्ह साधु सयाने।
प्रपंचा नैव मे प्रियाः ॥	राम मातु भलि सब पहचाने।

याज्ञवल्क्य रामायण	रामचरितमानस
स्वभावसरलो रामो रामामाता भवानपि ।	जस कौसिला मोर भल ताका ।
मया परिचिताः सर्वे स्वभावसरला जनाः ।	तस फलु उन्हहिं देउँ करि साका ।
विचारितं राममात्रा यथा मम हितं तथा ।	
प्रदास्यामि फलं तस्यै सत्यमेतद् ब्रवीमि ते ।	

० ० ०

रघुवंश	
तं कर्णमूलमागत्य रामे श्रीर्न्यस्ततामिति ।	सुवन समीप भए सित केसा । मनहुँ जरठपनु अस उपदेसा ।
कैकेयीशंकयेवाह पलितच्छद्मना जरा ॥	नृप जुबराजु राम कहुँ देहू । जीवन जनम लाभ किन लेहू ।

● ● ●

शुक्रनीति	
शास्त्रं सुचिन्तितमथोपरिचिन्तनीय—	शास्त्र सुचिन्तित पुनि-पुनि देखिय ।
माराधितोऽपि नृपतिः परिशंकनीयः ।	भूप सुसेवित पुनि-पुनि लेखिय ।
क्रोड़े कृतापि युवती परिक्षरणीया	राखिय नारि जदपि उर माहीं ।
शास्त्रे नृपे च युवती च कुतो वशित्वम् ।	जुबती सास्त्र नृपति बस नाहीं ।

० ० ०

सुभाषितत्रिशती	
दौर्मन्त्र्यान्नृपतिर्विनश्यति यतिः संगात्सुतो लालनात् ।	संग ते जती कुमन्त्र से राजा । मान ते ग्यान पान ते लाजा ।
पुत्रोऽनध्ययनात्कुलं कुतनया-च्छीलं खलोपासनात् ।	प्रीति प्रनय बिनु मद ते गुनी । नासहिं बेगि नीति अस सुनी ।
ह्रीमद्यादनवेक्षणादपि कृषिः स्नेहः प्रवासाश्रया —	
न्मैत्रीचाप्रणयात्समृद्धिरनया त्यागात् प्रमादाद्धनम् ॥	

० ० ०

हितोपदेश

सुवेषं पुरुषं दृष्ट्वा
भ्रातरं यदि वा सुतम् ।
योनिः क्लिद्यति नारीणां
सत्यं-सत्यं हि नारद ॥

रामचरितमानस

भ्राता पिता पुत्र उरगारी ।
पुरुष मनोहर निरखत नारी ।
होइ बिकल सक मनहिं न रोकी ।
जिमि रबिमनि द्रव रबिहिं बिलोकी ।

० ० ०

प्राचीन श्लोक

ये रामभक्तिममलां सुविहाय रम्यां
ज्ञाने रताः प्रतिदिनं परिक्लिष्ट मार्गे ।
आरान्महेन्द्रसुरभीं परिहृत्य मूर्खाः
अर्कं भजन्ति सुभगे सुखदुग्ध हेतुम् ।

ज असि भगति जानि परिहरहीं ।
केवल ज्ञान हेतु स्रम करहीं ।
ते जड़ कामधेनु गृह त्यागी ।
खोजत आकु फिरहिं पय लागी ॥

० ० •

पद्म पुराण

कुलं पवित्रं जननी कृतार्थं
वसुन्धरा भागवती च धन्या ।
स्वर्गे स्थिता ये पितरोऽपि धन्या
येषां कुले वैष्णवनामधेयम् ॥

सो कुल धन्य उमा सुनु
जगत् पूज्य सुपुनीत ।
श्री रघुवीर परायन
जेहि नर उपज विनीत ।

० ० •

सुभाषित-रत्न-भांडागार

सज्जनस्य हृदयं नवनीतं
यद्वदन्ति कवयस्तदलीकम् ।
अन्यदेहविलसत्परितापात्
सज्जनो द्रवति नो नवनीतम् ॥

संत हृदय नवनीत समाना ।
कहा कविन पै कहइ न जाना ॥
निज परिताप द्रवै नवनीता ।
पर-दुख द्रवहिं सुसंत पुनीता ॥

० ० •

श्रुत्वा सागरबन्धनं दशशिराः
सर्वैर्मुखैरेकदा ।
तूर्णं पृच्छति वार्तिकान् सचकितो
भीत्यापरं सम्भ्रमात् ॥
बद्धः सत्यमपांनिधिर्जलनिधिः
कीलालधिस्तोयधिः ।
पाथोधिर्जलधिः पयोधिरुदधि
र्वारान्निधिर्वारिधिः ॥

बाँध्यो वननिधि नीरनिधि,
जलधि सिंधुवारीस ।
सत्य तोयनिधि कंपति,
उदधि पयोधि नदीस ॥

• ० •

हनुमन्नाटक

शंकं शशांकं जगुरंकमेके
पंकं कुरंगं प्रतिबिंबितागम् ।
धूमं च भूमंडलयुद्धताग्ने—
वियोगजातस्य मम प्रियायाः ॥

रामचरितमानस

कह सुग्रीव सुनहु रघुराई ।
ससि महुँ प्रगट भूमि कैं झाईं ॥
मारेहु राहु ससिहि कह कोई ।
उर महँ परि स्यामता सोई ॥
कोउ कह जब विधि रति मुख कीन्ह ।
सारभाग ससिकर हरि लीन्ह ॥

• ० •

ब्रह्मणा रतिमुखं चिकीर्षता
संगृहीतममृतं विधोस्तदा ।
तेन छिद्रमभवद्धतद्यथा
दृश्यते गगन बिम्बनीलता ।

छिद्र सो प्रगट इंदु उर माहीं ।
तेहि मग देखिय नभ परिछाहीं ।
वह प्रभु गरल बंधु ससि केरा ।
अति प्रिय निज उर दीन्ह बसेरा ॥
विष संजुत कर निकर पसारी ।
जारत विरहवंत नर-नारी ॥

• ० •

कठवल्ली

अपाणि पादो जवनो ग्रहीता
पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः ।
यो वेत्ति सर्वं न हि तस्य वेत्ता
तमाहुराद्यं पुरुषं पुराणम् ॥

बिनु पद चलइ सुनइ बिनु काना ।
कर बिनु करम करइ विधि नाना ॥
आनन रहित सकल रस भोगी ।
बिनु बानी बकता बड़ जोगी ॥
तन बिनु परस नयन बिनु देखा ।
ग्रहइ घ्रान बिनु बास असेषा ॥

• ० ०

शिव पुराण

मितं ददाति हि पिता
पितं भ्राता मितं सुतः ।
अपि तस्य तु दातारं
भर्तारं या न सेवते ॥

मातु पिता भ्राता हितकारी ।
मितप्रद सब सुनु राजकुमारी ॥
अमितदानि भर्ता बैदेही ।
अधम सो नारि जो सेव न तेही ।

० ० ०

वाल्मीकि रामायण

स्थित्वा मुनिसमूहेषु
जानकी राम लक्ष्मणाः ।

मुनि समूह महँ बैठे सनमुख सबकी ओर ।
सरद इन्दुतन चितवत मानहुँ निकर चकोर

वाल्मीकि रामायण	रामचरितमानस
तान् सर्वाश्च निरीक्षन्ते चकोराः शरदेन्दुवत् ।।	

० ० ०

गरुड़ पुराण	
वरं हि नरके वासो न तु दुश्चिरिते गृहे । नरकात् क्षीयते पापं कुगृहान्न निवर्तते ।।	वरु भल बास नरक कर ताता । दुष्ट संग जनि देइ विधाता ।।

० ० ०

इनके सिवा संस्कृत के और जिन ग्रन्थों के बिंव-प्रतिबिंब भाव 'मानस' में मिलते हैं, यहाँ स्थानाभाव से उनके उदाहरण न देकर केवल नाम दिये जाते हैं—

अग्नि-पुराण, अद्भुत-रामायण, अभिज्ञान-शकुन्तला, आनन्द-वृन्दावन, कथा-सरित्सागर, कामन्दकीय-नीति-सार, किरातार्जुनीय, गीतगोविन्द, चाणक्य-नीति, नलचम्पू, नारद-पंचरत्न, नैषध, पराशर-स्मृति, पुरुष-सूक्त, वाराह-पुराण, वशिष्ठ संहिता, ब्रह्माण्ड-पुराण, बाल-रामायण, विदग्ध-मुख-मण्डन, मत्स्य-पुराण, महानिर्वाणतत्त्व, महावीर-चरित,महिम्न-स्तोत्र, याज्ञवल्क्य-स्मृति, रुद्रयामल, वामन-पुराण, शिव-पुराण, शिशुपाल-वध, स्कन्द-पुराण, श्रुत-बोध, हरिवंश-पुराण, हारीत-स्मृति इत्यादि ।

मानस का माधुर्य

'रामचरितमानस' आदि से अन्त तक माधुर्य से ओत-प्रोत है। हर एक प्रकार की सुरुचि रखने वालों के लिए उसमें यथेष्ट सामग्री है। एक लम्बे मार्ग में कोई स्थान ऐसा नहीं है, जहाँ पथिक को दूर तक शान्ति की छाया न मिले, प्यास से व्याकुल होना पड़े। रास्ते भर सर्वत्र मधुर सोते प्रवाहित हैं, सद्विचारों की शीतल छाया वर्तमान है। 'मानस' को बार-बार पढ़ने से भी जी नहीं ऊबता। जिस प्रकार हम चन्द्रमा को लाखों वरसों से देखते आ रहे हैं। पर जब उसे देखते हैं, तभी वह नवीन लगता है और कभी बासी नहीं लगता। इसी प्रकार 'मानस' को चाहे जितनी बार पढ़िये, उससे जी नहीं उचटता। उसका कारण यह है कि तुलसीदास ने जो कुछ लिखा है, वह उसमें हमारे नित्य-नैमित्तिक जीवन का प्रतिबिम्ब है। इससे हम उसे अपना समझकर पढ़ते हैं और बार-बार उसका रस लेकर भी तृप्त नहीं होते।

तुलसीदास ने 'मानस' में जिस विषय को लिया है, उसे इतनी सुन्दरता से सजा दिया है कि उसे पढ़कर मन आनन्द में निमग्न हो जाता है। यहाँ कुछ ऐसे प्रसंग दिये जाते हैं, जिनसे तुलसीदास के वर्णन-चातुर्य का आनन्द लिया जा सकता है।

बाल-कांड में शिवजी की बारात का वर्णन तुलसीदास ने बड़े सरस ढंग से किया है। शृङ्गार-रस के साथ हास्य-रस रहने से उसकी सरसता बढ़ जाती है। शिव की बरात के साथ-साथ परस्पर हास-परिहास भी होता चल रहा है, उस प्रसंग का वर्णन देखिए :

दो०—लगे सवाँरन सकल सुर, बाहन बिबिध बिमान।
होहि सगुन मंगल सुखद, करहिं अपछरा गान॥
सिवहिं संभुगन करहिं सिंगारा। जटा मुकुट अहिमौर सँवारा।
कुण्डल कंकन पहिरे ब्याला। तन बिभूति पट केहरि छाला।
ससि ललाट सुन्दर सिर गंगा। नयन तीनि उपबीत भुजंगा।
गरल कंठ उर नर सिर माला। असिव बेप सिवधाम कृपाला।
कर त्रिसूल अरु डमरु बिराजा। चले बसह चढ़ि बाजहिं बाजा।
देखि सिवहि सुरतिय मुसुकाहीं। बर लायक दुलहिन जग नाहीं।
बिस्नु बिरंचि आदि सुरब्राता। चढ़ि-चढ़ि बाहन चले बराता।
सुर समाज सब भाँति अनूपा। नहिं बरात दूलहु अनुरूपा।
दो०—बिस्नु कहा अस बिहँसि तब, बोलि सकल दिसिराज।
बिलग-बिलग होइ चलहु सब, निज-निज सहित समाज॥
बर अनुहारि बरात न भाई। हँसी करइहउ पर पुर जाई।
बिस्नु बचन सुनि सुर मुसुकाहीं। हरि के व्यंग बचन नहि जाहीं।
अति प्रिय बचन सुनत प्रिय केरे। भृङ्गिहिं प्रेरि सकल गन टेरे।
सिव अनुसासन सुनि सब आये। प्रभु पद-जलज सीस तिन्ह नाये।
नाना बाहन नाना बेखा। बिहँसे सिव समाज निज देखा।
कोउ मुखहीन बिपुल मुख काहू। बिनु पद कर कोउ बहु पद बाहू।
बिपुल नयन कोउ नयन बिहीना। रिष्ट पुष्ट कोउ अति तनखीना।

एक और प्रसंग देखिए—

चन्द्रमा उदय हुआ था। राम ने उसे देखा। देखते ही सीता के मुख का स्मरण हो आया। अब दो चन्द्रमा एक साथ उदय हो आये, एक आकाश में, दूसरा मन में। राम दोनों की तुलना करके कहते हैं :

प्राची दिसि ससि उयेउ सुहावा। सिय मुख सरिस देखि सुख पावा।

वहुरि विचार कीन्ह मन माहीं। सीय वदन सम हिमकर नाहीं।
दो०—जनम सिन्धु पुनि वन्धु विषु, दिन मलीन सकलंकु।
सिय मुख समता पाव किमि, चन्द वापुरो रंकु॥
घटइ-वढ़इ विरहिनि दुखदाई। ग्रसइ राहु निज संधिहि पाई।
कोक सोकप्रद पंकज-द्रोही। अवगुन वहुत चन्द्रमा तोही।

सीता-स्वयंवर का एक प्रसंग लीजिये—

रामचन्द्र सीता-स्वयंवर के अवसर पर धनुष-यज्ञशाला में आये, तब उन्हें देखकर दर्शकों में जिस प्रकार के भाव उदित हुए, तुलसीदास ने उनका वर्णन वड़े ही कौशल से किया है। उनमें नवों रसों की आभा आ गई है :

राजकुँअर तेहि अवसर आये। मनहुँ मनोहरता तन छाये।
गुनसागर नागर वरवीरा। सुन्दर स्यामल गौर सरीरा।
राज-समाज विराजत रूरे। उडुगन महँ जनु जुग विधु पूरे।
जिन्हकें रही भावना जैसी। प्रभु मूरति तिन्ह देखी तैसी।
देखहिं भूप महा रनधीरा। मनहुँ वीर रस धरे सरीरा।
डरे कुटिल नृप प्रभुहिं निहारी। मनहुँ भयानक मूरति भारी।
रहे असुर छल छोनिप वेखा। तिन्ह प्रभु प्रगट काल सम देखा।
पुरवासिन्ह देखे दोउ भाई। नरभूपन लोचन सुखदाई।
दो०—नारि विलोकहिं हरपि हिय, निज निज रुचि अनुरूप।
जनु सोहत सृङ्गार धरि, मूरति परम अनूप॥
विदुपन प्रभु विराटमय दीसा। वहुमुख कर पग लोचन सीसा।
जनक जाति अवलोकहिं कैसे। सजन सगे प्रिय लागहिं जैसे।
सहित विदेह विलोकहिं रानी। सिसु सम प्रीति न जाइ वखानी।
जोगिन्ह परम तत्त्वमय भासा। सांत सुद्ध सम सहज प्रकासा।
हरिभगतन देखे दोउ भ्राता। इष्टदेव इव सव सुखदाता।
रामहि चितव भाव जेहि सीया। सो सनेह सुख नहिं कथनीया।
उर अनुभवति न कहि सक सोऊ। कवन प्रकार कहइ कवि कोऊ।

राम का वर्णन करके तुलसीदास सीता की ओर मुड़ते हैं। सीता के सौन्दर्य की तुलना वे किससे करें ? देवताओं की स्त्रियों में किसी को वैसी सुन्दरी न पाकर वे एक रूपक वांधते हैं। देखिये, रूपक कितना सुन्दर है :

सिय सोभा नहिं जाइ वखानी। जगदंविका रूप गुन खानी।
उपमा सकल मोहि लघु लागी। प्राकृत नारि अंग अनुरागी।
सिय वरनिअ तेहि उपमा देई। कुकवि कहाइ अजसु को लेई।

जौं पटतरिअ तीय महँ सीया। जग अस जुअति कहाँ कमनीया।
गिरा मुखर तनु अरधं भवानी। रति अति दुखित अतनु पति जानी।
विष बारुनी बन्धु प्रिय जेही। कहिय रमा सम किमि बैदेही।
जौं छवि सुधा पयोनिधि होई। परम रूपमय कच्छप सोई।
सोभा रजु मंदरु सिंगारू। मथइ पानिपंकज निज मारू।
दो०—यहि विधि उपजै लच्छि जब, सुन्दरता सुख मूल।
तदपि सकोच समेत कवि, कहहिं सीय सम तूल॥

राम रङ्गमञ्च पर बैठे हैं। उस समय की उनकी शोभा की तुलना तुलसीदास ने सूर्योदय से की है:

दो०—उदित उदय गिरि मञ्च पर, रघुवर बाल पतंग।
विकसे सन्त सरोज सब, हरषे लोचन-भृङ्ग॥
नृपन्ह केरि आसा निसि नासी। वचन नखत अवली न प्रकासी।
मानी महिप कुमुद सकुचाने। कपटी भूप उलूक लकाने।
भये विसोक कोक मुनि देवा। वरषहिं सुमन जनावहिं सेवा।

राम, लक्ष्मण और सीता वन को जा रहे थे तब रास्ते में उन्हें गाँव वाले मिलते जाते थे। उनके मन में इन पथिकों को देखकर जो कौतूहल होता था उसका ठीक-ठीक चित्र सामने खड़ा कर देने में तुलसीदास ने जो क्षमता दिखलाई है, वह अद्वितीय है, अनुपम है। देखिये :

सुनत तीरवासी नर-नारी। धाये निज-निज काज बिसारी।
लपन राम सिय सुन्दरताई। देखि करहिं निज भाग्य बड़ाई।
अति लालसा सबहि मन माहीं। नाउँ गाउँ बूझत सकुचाहीं।
जे तिन्ह महँ वयवृद्ध सयाने। तिन्ह करि जुगुति राम पहिचाने।
सकल कथा तिन्ह सबहिं सुनाई। वनहिं चले पितु आयसु पाई।
सुनि सविषाद सकल पछिताहीं। रानी राय कीन्ह भल नाहीं।
× × ×
ते पितु मातु कहहु सखि कैसे। जिन्ह पठये वन बालक ऐसे।
राम लपन सिय रूप निहारी। होहिं सनेह विकल नर-नारी।
× × ×
पथिक अनेक मिलहिं मग जाता। कहहिं सप्रेम देखि दोउ भ्राता।
राम लपन सँव अंग तुम्हारे। देखि सोच अति हृदय हमारे।
मारग चलहु पयादेहिं पायँ। ज्योतिष झूठ हमारेहि भायँ।
अगमु पंथु गिरि कानन भारी। तेहि महँ साथ नारि सुकुमारी।
× × ×

करि केहरि वन जाइ न जोई। हम सँग चलहिं जो आयसु होई।
जाव जहाँ लगि तहँ पहुँचाई। फिरव वहोरि तुमहिं सिरुनाई।
दो०—एहि विधि पूछहिं प्रेम वस, पुलक गात जल नैन।
कृपासिन्धु फेरहिं तिन्हहिं, कहि विनीत मृदु वैन॥

× × ×

सीता लषन सहित रघुराई। गाँव निकट जव निकसहिं जाई।
सुनि सव वाल-वृद्ध नर-नारी। चलहिं तुरत गृह-काज विसारी।
राम-लषन-सिय-रूप निहारी। पाइ नयन फलु होहिं सुखारी।
सजल विलोचन पुलक सरीरा। सव भये मगन देखि दोउ वीरा।
वरनि न जाइ दसा तिन्ह केरी। लहि जनु रंकन्ह सुर मनि ढेरी।
एकन्ह एक वोलि सिख देहीं। लोचन-लाहु लेहु छन एहीं।
रामहिं देखि एक अनुरागे। चितवत चले जाहिं सँग लागे।
एक नयन मग छवि उर आनी। होहिं सिथिल तन मन वर वानी।
दो०—एक देखि वटछाँह भलि, डासि मृदुल तृन पात।
कहहिं गवाँइय छिनुक स्रमु गवनव अवहिं कि प्रात॥
एक कलस भरि आनहि पानी। अँचइय नाथ कहहिं मृदु वानी।
सुनि प्रिय वचन प्रीति अति देखी। राम कृपालु सुसील विसेखी।
जानी स्रमित सीय मन माहीं। घरिक विलम्बु कीन्ह वट छाहीं।
मुदित नारि-नर देखहिं सोभा। रूप अनूप नयन मनु लोभा।
वरनि न जाइ मनोहर जोरी। सोभा वहुत थोरि मति मोरी।
राम-लषन-सिय सुन्दरताई। सव चितवहिं चित मन मति लाई।
थके नारि-नर प्रेम पियासे। मनहुँ मृगी-मृग देखि दियासे।
सीय समीप ग्राम-तिय जाहीं। पूछत अति सनेह सकुचाहीं।
वार-वार सव लागहिं पाये। कहहिं वचन मृदु सरस सुभाये।
राजकुमारि विनय हम करहीं। तिय सुभाय कछु पूछत डरहीं।
स्वामिनि अविनय छमवि हमारी। विलगु न मानव जानि गँवारी।
राजकुँअर दोउ सहज सलोने। इन्ह तें लहि दुति मरकत सोने।
दो०—स्यामल गौर किसोर वर, सुन्दर सुखमा अयन।
सरद सर्वरी नाथ मुखु, सरद सरोरुह नयन॥
कोटि मनोज लजावनि हारे। सुमुखि कहहु को आहिं तुम्हारे।
सुनि सनेहमय मंजुल वानी। सकुचि सीय मन महुँ मुसुकानी।
तिन्हहिं विलोकि विलोकति धरनी। दुहुँ सँकोच सकुचति वर वरनी।

सकुचि सप्रेम बाल मृगनयनी। बोली मधुर वचन पिकवयनी।
सहज सुभाय सुभग तन गोरे। नामु लषन लघु देवर मोरे।
बहुरि बदनु विधु अंचल ढाँकी। पियतन चितइ भौंह करि बाँकी।
खंजन मंजु तिरीछे नयननि। निज पति कहेउ तिन्हहिं सिय सयननि।
भईं मुदित सब ग्राम-बधूटी। रंकन्ह रायरासि जनु लूटी।
पारबती सम पतिप्रिय होहू। देवि न हम पर छाँड़बि छोहू।
पुनि-पुनि विनय करिय कर जोरी। जौं एहि मारग फिरिय बहोरी।
दरसन देब जानि निज दासी। लखी सीय सब प्रेम पियासी।
मधुर बचन कहि-कहि परितोषी। जनु कुमुदिनी कौमुदी पोषी।
तबहिं लषन रघुवर रुख जानी। पूछेउ मगु लोगन्हि मृदु बानी।
सुनत नारि-नर भये दुखारी। पुलकित गात बिलोचन बारी।
मिटा मोदु मन भये मलीने। विधि निधि दीन्ह लेत जनु छीने।
समुझि करम गति धीरजु कीन्हा। सोधि सुगम मगु तिन्ह कहि दीन्हा।
दो०--लषन जानकी सहित तब, गवनु कीन्ह रघुनाथ।
फेरे सब प्रिय बचन कहि, लिये लाइ मन साथ॥
फिरत नारि-नर अति पछिताहीं। दैवहि दोषु देहिं मन माहीं।
सहित विषाद परसपर कहहीं। विधि करतव उलटे सब अहहीं।
निपट निरंकुस निठुर निसंकू। जेहि ससि कीन्ह सरुज सकलंकू।
रूखु कलपतरु सागरु खारा। तेहिं पठये बन राजकुमारा।
जौं पै इन्हहिं दीन्ह बनबासू। कीन्ह बादि विधि भोग बिलासू।
ए बिचरहिं मग बिनु पदत्राना। रचे बादि बिधि बाहन नाना।
ए महि परहिं डासि कुसपाता। सुभग सेज कत सृजन विधाता।
तरु बर बास इन्हहिं विधि दीन्हा। धवलधामु रचि-रचि स्रमु कीन्हा।
दो०--जौं ए मुनि पट धर जटिल, सुन्दर सुठि सुकुमार।
विविध भाँति भूषन बसन, बादि किये करतार॥
जौं ए कंद-मूल-फल खाहीं। बादि सुधादि असन जग माहीं।
एक कहहिं ए सहज सुहाये। आपु प्रगट भये विधि न बनाये।
जहँ लगि वेद कही विधि करनी। स्रवन नयन मन गोचर बरनी।
देखहु खोजि भुवन दससचारी। कहँ अस पुरुष कहाँ असि नारी।
इन्हहिं देखि विधि मनु अनुरागा। पटतर जोगु बनावइ लागा।
कीन्ह बहुत स्रम एक न आये। तेहि इरिषा बन आनि दुराये।
एक कहहिं हम बहुत न जानहिं। आपुहि परम धन्य करि मानहिं।

तुलसीदास में एक यह बड़ी विशेषता पाई जाती है कि जब वे किसी वस्तु का वर्णन करने लगते हैं तब उसे सर्वाङ्गपूर्ण करते हैं। भरत राम को मनाने के लिए चित्रकूट गए हैं। यह समाचार सुनकर जनक भी आये हैं। रामचन्द्र उन्हें आगे बढ़कर मिलते हैं और फिर सबको लेकर अपने आश्रम की ओर जाते हैं। तुलसीदास उस दृश्य का ऐसा वर्णन करते हैं :

दो०—आस्रम सागर सांतरस, पूरन पावन पाथ।
सेन मनहुँ करुना सरित, लिये जात रघुनाथ॥

बोरति-ग्यान विराग करारे। बचन ससोक मिलत नद-नारे।
सोच उसास समीर तरंगा। धीरज तट तरुवर कर भंगा।
विपम विपाद तोरावति धारा। भय भ्रम भँवर अवर्त अपारा।
केवट बुध विद्या बड़ि नावा। सकहिं न खेइ एक नहिं आवा।
वनचर कोल किरात बेचारे। थके विलोकि पथिक हिय हारे।
आस्रम उदधि मिली जब जाई। मनहुँ उठेउ अंबुधि अकुलाई।

रावण सीता को जब हर ले गया, तब का वर्णन सुनिए—

राम और लक्ष्मण हरिण को मारकर आश्रम में आते हैं और सीता को कुटी में न पाकर विकल होते हैं। उस समय का वर्णन तुलसीदास के अद्भुत कवि-कौशल का एक प्रमाण हो गया है :

अनुज समेत गये प्रभु तहवाँ। गोदावरि-तट आस्रमु जहवाँ।
आस्रमु देखि जानकी-हीना। भये विकल जस प्राकृत दीना।
हा गुन-खानि जानकी सीता। रूप सील व्रत नेमु पुनीता।
लछिमन समझाये बहु भाँती। पूछत चले लता-तरु-पाँती।
हे खग-मृग हे मधुकर-स्रेनी। तुम्ह देखी सीता मृगनयनी।
खंजन सुक कपोत मृग मीना। मधुप-निकर कोकिला प्रवीना।
कुन्द कली दाड़िम सुदामिनी। कमल सरद ससि अहिभामिनी।
बरुनपास मनोजधनु हंसा। गज केहरि निज सुनत प्रसंसा।
श्रीफल कनक कदलि हरपाहीं। नेकु न संक सकुच मन माहीं।
सुनु जानकी तोहि बिनु आजू। हरपे सकल पाइ जनु राजू।

'मानस' में तुलसीदास ने वसन्त, वर्षा और शरद इन तीन ऋतुओं का वर्णन बड़े ही सुन्दर रूप से किया है। एक-एक चरण पर उन्होंने उपदेशों की जो झड़ी लगा दी है, वह सद्गुण रूपी शस्य के लिए बड़ी ही उपयोगी है :

दो०—लछिमन देखहु मोरगन, नाचत वारिद पेखि।
गृही विरतिरत हरप जस, विस्नु भगत कहुँ देखि॥

घन घमंड नभ गरजत घोरा। प्रियाहीन डरपत मन मोरा।
दामिनि दमकि रही घन माहीं। खल कै प्रीति जथा थिरु नाहीं।
बरसहिं जलद भूमि नियराये। जथा नवहिं वुध विद्या पाये।
बुन्द-अघात सहहिं गिरि कैसे। खल के बचन संत सहैं जैसे।
छुद्र नदी भरि चलीं तोराई। जस थोरेहु धन खल इतराई।
भूमि परत भा ढावर पानी। जनु जीवहिं माया लपटानी।
सिमिटि-सिमिटि जल भरहिं तलावा। जिमि सद्‌गुन सज्जन पहँ आवा।
सरिता जल जलनिधि महुँ जाई। होहि अचल जिमि जिव हरि पाई।

दो०—हरित भूमि तृन संकुलित, समुझि परहिं नहिं पंथ।
जिमि पाखण्ड विवाद तें, गुप्त होहिं सद्‌ग्रन्थ॥

दादुर-धुनि चहुँ दिसा सुहाई। बेद पढ़हिं जनु बटु समुदाई।
नव पल्लव भये विटपु अनेका। साधक मन जस मिले विवेका।
अर्क जवास पात बिनु भयऊ। जस सुराज खल उद्यम गयऊ।
खोजत कतहुँ मिलइ नहिं धूरी। करइ क्रोध जिमि धर्महि दूरी।
ससि संपन्न सोह महि कैसी। उपकारी कै सम्पति जैसी।
निसि तम घन खद्योत विराजा। जनु दंभिन कर मिला समाजा।
महा वृष्टि चलि फूटि कियारी। जिमि स्वतन्त्र भये बिगरहिं नारी।
कृषी निरावहिं चतुर किसाना। जिमि वुध तजहिं मोह मद माना।
देखियत चक्रवाक खग नाहीं। कलिहि पाइ जिमि धर्म पराहीं।
ऊसर बरषइ तिनु नहिं जामा। जिमि हरिजन हिय उपज न कामा।
विविध जन्तु संकुल महिभ्राजा। प्रजा बाढ़ जिमि पाइ सुराजा।
जहँ-तहँ रहे पथिक थकि नाना। जिमि इन्द्रियगन उपजे ग्याना।

दो०—कबहुँ प्रबल बह मारुत, जहँ-तहँ मेघ बिलाहिं।
जिमि कपूत के ऊपजे, कुल सद्धर्म नसाहिं॥
कबहुँ दिवस महुँ निविड़ तम, कबहुँक प्रगट पतंग।
बिनसइ उपजइ ग्यान जिमि, पाइ कुसंग सुसंग॥

बरषा बिगत सरद रितु आई। लछिमन देखहु परम सुहाई।
फूले कास सकल महि छाई। जनु बरषा कृत प्रगट बुढ़ाई।
उदित अगस्त पन्थ जल सोखा। जिमि लोभहि सोखइ संतोषा।
सरिता सर निर्मल जल सोहा। सन्त हृदय जस गत मद मोहा।
रस रस सूख सरित सर पानी। ममता त्याग करहिं जिमि ग्यानी।
जानि सरद रितु खंजन आये। पाइ समय जिमि सुकृत सुहाये।

पंक न रेनु सोह असि धरनी। नीति निपुन नृप कै जसि करनी।
जल संकोच विकल भइ मीना। अवुध कुटुम्बी जिमि धनहीना।
बिनु घन निर्मल सोह अकासा। हरिजन इव परिहरि सव आसा।
कहुँ-कहुँ वृष्टि सारदी थोरी। कोउ इक पाव भगति जसि मोरी।
दो०—चले हरषि तजि नगर नृप, तापस वनिक भिखारि।
जिमि हरि भगती पाइ स्रम, तर्जाहि आस्रमी चारि॥
सुखी मीन जे नीर अगाधा। जिमि हरि सरन न एकउ बाधा।
फूलै कमल सोह सर कैसा। निर्गुन ब्रह्म सगुन भये जैसा।
गुंजत मधुकर मुखर अनूपा। सुन्दर खग-रव नानारूपा।
चक्रवाक मन दुख निसि पेखी। जिमी दुरजन पर संपति देखी।
चातक रटत तृषा अति ओही। जिमि सुख लहइ न संकर द्रोही।
सरदातप निसि ससि अपहरई। संत दरस जिमि पातकु टरई।
देखि इन्दु चकोर समुदाई। चितर्वाह जिमि हरिजन हरि पाई।
मसक दंस बीते हिम त्रासा। जिमि द्विज द्रोह किये कुल नासा।
दो०—भूमि जीव संकुल रहे, गये सरद रितु पाइ।
सद्गुरु मिले जाहिं जिमि, संसय भ्रम समुदाइ॥

रावण से युद्ध करने के लिए जब राम रण-भूमि में गए, तब न उनके पास रथ था और न पैर में जूते थे। यह देखकर विभीषण को चिन्ता हुई और उसने राम पर अपनी मनोव्यथा प्रकट भी की। राम के मुख से तुलसीदास ने जो उत्तर दिलाया है, वह प्रत्येक मनुष्य के लिए जीवन-साफल्य का एक गुर है :

रावन रथी विरथ रघुवीरा। देखि विभीषन भयेउ अधीरा।
अधिक प्रीति मन भा संदेहा। वंदि चरन कह सहित सनेहा।
नाथ न रथ नहिं तनु पदत्राना। केहि विधि जितव वीर बलवाना।
सुनहु सखा कह कृपानिधाना। जेहि जय होइ सो स्यंदन आना।
सौरज धीरज तेहि रथ चाका। सत्य सील दृढ़ ध्वजा पताका।
बल विवेक दम परहित घोरे। छमा कृपा समता रजु जोरे।
ईस भजनु सारथी सुजाना। बिरति चर्म संतोष कृपाना।
दान परसु बुधि सक्ति प्रचंडा। वर विग्यान कठिन कोदंडा।
अमल अचल मन त्रोन समाना। सम जम नियम सिलीमुख नाना।
कवच अभेद विप्र गुरु पूजा। येहि सम विजय उपाय न दूजा।
सखा धर्ममय अस रथ जाके। जीतन कहुँ न कतहुँ रिपु ताके।

दो०—महा अजय संसार रिपु, जीति सकई सो वीर।
जाके अस रथ होइ दृढ़, सुनहु सखा मतिधीर ॥

मनुष्य के जीवन का अन्तिम लक्ष्य क्या है ? इस तत्त्व को समझाने के लिए 'मानस' में बहुत से मनोहर प्रसंग हैं। साधारण श्रेणी के मनुष्यों को वेदान्त का विषय नीरस-सा लगता है। पर तुलसीदास की वर्णन-शैली ऐसी आकर्षक है कि नीरस-से-नीरस स्वभाव वाला मनुष्य भी उसमें रस लेने लगता है :

मम माया संभव परिवारा। जीव चराचर बिबिध प्रकारा।
सब मम प्रिय सब मम उपजाये। सब तें अधिक मनुज मोहि भाये।
तिन्ह महँ द्विज द्विज महँ श्रुतिधारी। तिन्ह महँ निगम धरम अनुसारी।
तिन्ह महँ प्रिय बिरक्त पुनि ग्यानि। ग्यानिहुँ ते अति प्रिय बिग्यानि।
तिन्ह तें पुनि मोहि प्रिय निज दासा। जेहि गति मोरि न दूसरि आसा।
पुनि-पुनि सत्य कहउँ तोहि पाहीं। मोहि सेवक सम प्रिय कोउ नाहीं।
भगति हीन बिरंचि किन होई। सब जीवहु सम प्रिय मोहि सोई।
भगतिवन्त अति नीचउ प्रानी। मोहि प्रानप्रिय असि मम बानी।
दो०—सुचि सुसील सेवक सुमति, प्रिय कहु काहि न लाग।
स्रुति पुरान कह नीति असि, सावधान सुनु काग ॥

× × ×

राम कृपा बिनु सुनु खगराई। जानि न जाई राम प्रभुताई।
जानें बिनु न होइ परतीती। बिनु परतीति होइ नहिं प्रीति।
प्रीति बिना नहिं भगति दृढ़ाई। जिमि खगपति जल कै चिकनाई।
सो०—बिन गुरु होइ कि ग्यान ग्यान कि होइ बिराग बिनु।
गावहिं बेद पुरान सुख कि लहहिं हरि भगति बिनु ॥
कोउ बिश्राम कि पाव तात सहज संतोष बिनु।
चलइ कि जल बिनु नाव कोटि जतन पचि-पचि मरिय ॥
बिनु संतोष न काम नसाहीं। काम अछत सुख सपनेहुँ नाहीं।
राम भजन बिनु मिटहि कि कामा। थल-बिहीन तरु कबहुँ कि जामा।
बिनु बिग्यान कि समता आवइ। कोउ अवकास कि नभ बिनु पावइ।
श्रद्धा बिना धरमु नहिं होई। बिनु महि गंध कि पावइ कोई।
बिनु तप तेज कि कर बिस्तारा। जल बिनु रस कि होइ संसारा।
सील कि मिल बिनु बुध सेवकाई। जिमि बिनु तेज न रूप गुसाईं।
निज सुख बिनु मन होइ कि थीरा। परस कि होइ बिहीन समीरा।

कवनिउ सिद्धि कि बिनु बिस्वासा। बिनु हरि भजन न भव भय नासा।
दो०—बिनु बिस्वास भगति नहिं, तेहि बिनु द्रवहिं न राम।
राम कृपा बिनु सपनेहुं, जीव न लह बिस्राम ॥

× × ×

'मानस' में नम्रता और विनय की प्रशंसा स्थान-स्थान पर मिलती है। इसका प्रभाव रामायण के प्रेमी जनों पर सर्वत्र पड़ा हुआ और पड़ता हुआ दिखाई पड़ता है :

धन्य देस सो जहँ सुरसरी। धन्य नारि पतिव्रत अनुसरी।
धन्य सो भूप नीति जो करई। धन्य सो द्विज निज धरमु न टरई।
सो धन धन्य प्रथम गति जाकी। धन्य पुन्यरत मति सोइ पाकी।
धन्य घरी सोइ जब सतसंगा। धन्य जनम द्विज भगति अभङ्गा।
दो०—सो कुल धन्य उमा सुनु, जगतपूज्य सुपुनीत।
श्री रघुबीर परायन, जेहि नर उपज विनीत ॥

मानस की सूक्तियाँ

युक्तप्रांत और विहार में 'मानस' इतना लोक-प्रिय काव्य है कि उसकी बहुत सी चौपाइयाँ और दोहे कहावतों में स्थान पा चुके हैं। शिक्षित और अशिक्षित, नागरिक और ग्रामीण सभी श्रेणियों के लोग बिना किसी प्रयास के उनका उपयोग साधारण बोल-चाल में भी किया करते हैं। यहाँ इस प्रकार की कुछ चुनी हुई चौपाइयाँ और दोहे दिये जाते हैं :

बन्दौं सन्त असज्जन चरना। दुखप्रद उभय बीच कछु बरना।
बिछुरत एक प्रान हरि लेहीं। मिलत एक दारुन दुख देहीं।
परहित सरिस धरम नहि भाई। पर पीड़ा सम नहि अधमाई।
काहु न कोउ दुख सुख कर दाता। निज कृत कर्म भोग सब भ्राता।
सुमति कुमति सबके उर रहहीं। नाथ पुरान निगम अस कहहीं।
जहाँ सुमति तहँ सम्पति नाना। जहाँ कुमति तहँ बिपति निदाना।
गुरु पितु मातु स्वामि हित बानी। सुनि मन मुदित करिय भल जानी।
उचित कि अनुचित किये बिचारू। धर्म जाइ सिर पातक भारू।
अनुचित उचित बिचार तजि, जे पालहिं पितु बैन।
ते भाजन सुख सुजस के, बसहिं अमरपति ऐन ॥
बिनु संतोष न काम नसाहीं। काम अछत सुख सपनेहु नाहीं।
राम भजन बिन मिटहिं कि कामा। थल-बिहीन तरु कबहुँ कि जामा।
बिनु बिग्यान कि समता आवइ। कोउ अवकास कि नभ बिन पावइ।

श्रद्धा विना धर्म नहिं होई। विनु महि गन्ध कि पावइ कोई।
विनु तप तेज कि कर बिसतारा। जल बिनु रस कि होइ संसारा।
सील कि मिल विनु वुध सेवकाई। जिमि बिनु तेज न रूप गोसाईं।
निज सुख विन मन होइ कि धीरा। परस कि होइ विहीन समीरा।
कवनिउँ सिद्धि कि बिन बिस्वासा। बिन हरि भजन कि भव भयनासा।

बिन बिस्वास भक्ति नहिं, तेहि बिन द्रवहिं न राम।
राम कृपा बिनु सपनेहुँ, जीव न लह बिस्राम॥

परद्रोही कि होइ निहसङ्का। कामी पुनि कि रहइ अकलङ्का।
भव कि परहिं परमातम बिंदक। सुखी कि होहिं कबहुँ परनिंदक।
राज कि रहइ नीति बिनु जाने। अघ कि रहइ हरि चरित बखाने।
पावन जस कि पुन्य बिनु होई। बिनु अघ अजस कि पावइ कोई।
धन्य सो भूप नीति जो करई। धन्य सो द्विज निज धरम न टरई।
धन्य घरी सोइ जब सतसङ्गा। धन्य जनम हरि भक्ति अभङ्गा।
कवि कोविद गावहिं अस नीति। खल सन कलह न भल नहिं प्रीती।
उदासीन नित रहिय गुसाईं। खल परिहरिय स्वान की नाईं।

फूलइ फरइ न बेत, जदपि सुधा बरसहिं जलद।
मूरख हृदय न चेत, जौं गुरु मिलहिं बिरंचि सत॥

बायस पालिय अति अनुरागा। होइ निरामिष कबहुँ कि कागा।
संत सहहिं दुख परहित लागी। पर दुख हेत असंत अभागी।
साधु चरित सुभ सरिस कपासू। निरस बिसद गुनमय फल जासू।
जो सहि दुख पर छिद्र दुरावा। बंदनीय जेहि जग जस पावा।
खल सन इव पर बंधन करई। खाल कढ़ाइ बिपति सहि मरई।
को न कुसंगति पाइ नसाई। रहइ न नीच मते चतुराई।
मुनिगन निकट बिहँग मृग जाहीं। बाधक बधिक बिलोकि पराहीं।
हित अनहित पसु पच्छी जाना। मानुष तन गुन ज्ञान निधाना।

काटैं पै कदली फरै, कोटि जतन कोउ सींच।
बिनय न मान खगेस सुनु, डाँटे पै नव नीच॥

नहिं कोउ अस जनमा जग माहीं। प्रभुता पाइ जाहि मद नाहीं।
जेहि के जेहि पर सत्य सनेहू। सो तेहि मिलत न कछु संदेहू।
तृषित बारि बिनु जो तनु त्यागा। मुये करै का सुधा तड़ागा।
का बर्षा जब कृषी सुखाने। समय चूकि पुनि का पछिताने।
दुइ कि होहिं इक संग भुवाला। हँसब ठठाइ फुलाउब गाला।

जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी। सो नृप अवसि नरक अधिकारी।
कर्म प्रधान विस्व करि राखा। जो जस करइ सो तस फल चाखा।
आरत कहहिं विचारि न काऊ। सूझ जुआरिहिं आपन दाऊँ।
जल पय सरिस विकाइ, देखहु प्रीति कि रीति भल।
विलग होइ रस जाइ, कपट खटाई परत ही॥
कसे कनक मनि पारखि पाये। पुरुष परखियें समय सुभाये।
प्रभु अपने नीचहुँ आदरहीं। अगिनि धूम गिरि तृन सिर धरहीं।
सुनु जननी सोइ सुत बड़भागी। जो पितु मातु वचन अनुरागी।
तनय मातु पितु पोषनिहारा। दुर्लभ जननि सकल संसारा।
धन्य जनम जगतीतल तासू। पितहिं प्रमोद चरित सुनि जासू।
चारि पदारथ करतल ताके। प्रिय पितु मातु प्रान सम जाके।
दो०—गुरु श्रुति-सम्मत धर्मफल, पाइय विनहिं कलेस।
हठ वस सब संकट सहे, गालव नहुष नरेस॥
सहज सुहृद गुरु स्वामिसिख, जो न करइ सिर मानि।
सो पछिताइ अघाइ उर, अवसि होय हित हानि॥
सेवक सुख चह मान भिखारी। व्यसनी धन सुभगति बिभिचारी।
लोभी जस चह चारु गुमानी। नभ दुहि दूध चहत ये प्रानी।
राजनीति विनु धन विनु धर्मा। हरिहिं समर्पे बिनु सतकर्मा।
विद्या विनु विवेक उपजाये। स्रम फल पढ़े किये अरु पाये।
संग ते जती कुमन्त्र तें राजा। मान तें ज्ञान पान तें लाजा।
प्रीति प्रनय विनु मद तें गुनी। नासहिं वेगि नीति अस सुनी।
नवनि नीच कै अति दुखदाई। जिमि अंकुश धनु उरग बिलाई।
परहित वस जिनके मन माहीं। तिन्ह कहँ जग दुर्लभ कछु नाहीं।
दो०—सचिव बैद गुरु तीनि जौ, प्रिय बोलहिं भय आस।
राज धर्म तन तीन कर, होइ बेगही नास॥
बरु भल बास नरक कर ताता। दुष्ट संग जनि देहि विधाता।
कादर मन कर एक अधारा। दैव-दैव आलसी पुकारा।
सठ सन विनय कुटिल सन प्रीती। सहज कृपिन सन सुन्दर नीती।
ममता रत सन ज्ञान कहानी। अति लोभी सन विरति बखानी।
क्रोधहिं सम कामहिं हरि कथा। ऊसर बीज बये फल जथा।
कोल काम बस कृपिन विमूढ़ा। अति दरिद्र अजसी अति गूढ़ा।
सदा रोग बस संतत क्रोधी। विष्णु विमुख श्रुति संत विरोधी।

तन पोषक निन्दक अघ खानी। जीवत शव सम चौदह प्रानी।
दो० राकापति षोडश उवहिं, तारागन समुदाय।
सकल गिरिन्ह दव लाइये, रवि बिन राति न जाय॥
पर उपदेस कुसल बहुतेरे। जे आचरहिं ते नर न घनेरे।
प्रिय बानी जे सुनहिं जे कहहीं। ऐसे नर निकाय जग अहहीं।
वचन परम हित सुनत कठोरे। सुनहिं जे कहहिं ते नर जग थोरे।
अति संघर्षन करै जो कोई। अनल प्रगट चन्दन तें होई।
संत बिटप सरिता गिरि धरनी। परहित हेतु सबन्हि कै करनी।
संत हृदय नवनीत समाना। कहा कबिन पै कहइ न जाना।
निज परिताप द्रवइ नवनीता। पर दुख द्रवहिं सो संत पुनीता।
नहिं दरिद्र सम दुख जग माहीं। संत मिलन सम सुख कछु नाहीं।

अन्य भाषाओं में रामचरितमानस के अनुवाद

'रामचरितमानस' की लोक-प्रियता हिन्दी-प्रान्तों ही तक सीमित नहीं है, उसके अनुवाद भारत की अन्य भाषाओं में भी, कहीं गद्य में और कहीं पद्य में, हो गए हैं। यहाँ कुछ अनुवादों के संक्षिप्त परिचय दिये जाते हैं—

१—संस्कृत अनुवाद

इटावा के पंडित सेवाराम के पास इस पुस्तक की हस्तलिखित प्रति है। इसके दो कांड, सुन्दर और अरण्य, छप भी चुके हैं। इसका छपा हुआ सुन्दर-कांड मैंने देखा है। यह 'संस्कृतप्राकृताभ्यां समन्वितम् सुन्दरकांड' उन्नाम प्रदेशान्तर्गत तारग्राम वास्तव्य पं० बलभद्रप्रसाद शुक्ल बी० एस-सी०, असिस्टेंट मास्टर, इटावा तथा च पंडित रामनरायण मुंसरिम, मुंसिफी इटावा ने नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ से सं० १९९८ में सुन्दर-कांड और १९९९ में अरण्य-कांड प्रकाशित कराया है। सम्पादकों का दावा है कि यह वही 'रामचरितमानस' है, जिसकी रचना शिवजी ने की थी और जिसे उन्होंने पार्वती को सुनाया था। यहाँ कुछ उदाहरण दिये जाते हैं :

जामवन्त के वचन सुहाये। सुनि हनुमान हृदय अति भाये।
संस्कृत—ततो जाम्बवतो वाचा शुभा हृदयहारिणी।
श्रुत्वा हनुमतश्चित्ते बभूवानन्दकारिका॥
सचिव वैद्य गुरु तीनि जो, कहहिं वचन भय आस।
राज देह अरु धर्म कर, होहि वेगही नास॥
संस्कृत—मंत्री वैद्यो गुरुश्चैते चाटुकारादराद्यपि।
राष्ट्रविग्रह धर्माणामाशुनाशस्तदा भवेत्॥

मेरे हृदय प्रीति अस होई। की तुम हरिदासन महँ कोई।

संस्कृत—अवश्यं हरिभक्तेषु त्वं कोपि इति निश्चितम्।

त्वयि प्रीतिर्मम हृदि प्रतीतिरिति जायते॥

इस 'संस्कृत रामचरितमानस' के सम्बन्ध में विज्ञवर पण्डित खड्गजीत मिश्र ने दिसम्बर, १९१२ को 'सरस्वती' में एक छोटा सा नोट लिखा था उसमें उनका कथन यह है—

'पंडित सेवाराम की कृपा से मैंने इस हस्तलिखित 'अपूर्व रत्न' के दर्शन किये हैं। वह सर्गों में विभाजित है। प्रत्येक सर्ग के अन्त में यह लिखा है "इति श्रीमद्रामायणे रामचरितमानसे महाकाव्ये सकल कलुष विध्वंसने उमामहेश्वरसंवाद-- काण्डे—सर्ग।" प्रत्येक सर्ग के अन्त में कुछ शब्द मिटे से मालूम पड़ते हैं। ध्यान देकर देखने से विदित होता है कि उन मिटे हुए शब्दों का अन्तिम शब्द 'कृते' है। 'कृते' के पहले के चार अक्षर नहीं पढ़े जाते। इसका कारण समझ में नहीं आता कि प्रत्येक सर्ग के अन्त में ग्रन्थकर्ता का नाम क्यों मिट अथवा मिटा दिया गया है।—यह (मानस) आधुनिक मालूम पड़ता है।'

२—उड़िया-अनुवाद

मेरे मित्र पंडित लोचनप्रसाद पांडेय (विलासपुर) के 'माधुरी' (वर्ष २, खण्ड १, तुलसी सं० ३००, वि· सं० १९८०) में प्रकाशित एक लेख से ज्ञात होता है कि उड़िया में 'रामचरितमानस' के चार अनुवाद हैं। पहला अनुवाद गोविन्दसाव नामक एक तेली ने किया था। उसने अपने अनुवाद का नाम 'गोविन्द-रामायण' रखा है। अनुवाद के विषय में वह लिखता है :

तुलसीदासंकर ए रामायण-सार।

अर्थ देखि लेखह गोविन्दशाहु छार॥

यह अनुवाद उसने सं० १९२० के आस-पास किया था। यहाँ उसके अनुवाद का कुछ अंश मूल के साथ दिया जाता है :

मूल—नीति निपुन सोइ परम सयाना।

श्रुति सिद्धान्त ठीक सोइ जाना॥

सोइ कवि-कोविद सोइ नर धीरा।

जो छल छांड़ि भजै रघुबीरा॥

उड़िया—नीति रे निपुण सेहि परम चतुर।

निगम सिद्धान्ते दक्ष सेहि भाग्यधर॥

सेहिटि कवि कोविद सेहि नर धीर।

छल त्यागि करे जेहू भजे रघुबीर ॥

शेष तीन अनुवाद खरियार के राजा वीर विक्रमसिंह, बाबू रामप्रसाद बोहिदार, बी० ए०, बी० एल०, बी० टी० और पंडित स्वप्नेश्वरदास ने किये हैं।

रायबहादुर कविवर राधानाथरायजी ने तुलसीदास के वर्षा और शरद्वर्णन का अनुवाद उड़िया में किया है। उसकी कुछ पंक्तियाँ यहाँ दी जाती हैं:

मूल—बुंद अघात सहँ गिरि कैसे।
खल के बचन सन्त सहँ जैसे ॥
अनुवाद—सहंति धारापात शइलगण।
खल वचन यथा यथा सहे सुजन ॥

३—बंगला-अनुवाद

पहला अनुवाद पुरुलिया (बंगाल) के वकील श्रीमदनमोहन चौधरी, बी० एल० ने 'पयार' और 'त्रिपदी' छन्दों में किया है। दूसरा अनुवाद 'तुलसी-चरितामृत' नाम से प्रकाशित हुआ था। श्रीसतीशचन्द्रदास गुप्त ने अभी हाल ही में एक और अनुवाद किया है, जो कलकत्ता के 'खादी-प्रतिष्ठान' से प्रकाशित हुआ है। बंगला-अनुवादों में मूल के शब्दों की रक्षा बड़ी सावधानी से की गई है। यहाँ 'तुलसी-चरितामृत' से मूल के साथ अनुवाद की कुछ पंक्तियाँ दी जाती हैं:

मूल—कोटि मनोज लजावनहारे।
सुमुखि कहहु को आहि तुम्हारे ॥
अनुवाद—जार रूप हेरि लज्जा पाय कोटि मार।
सुमुखि वलना तिनि के हन तोमार ॥
मूल—सहज सुभाव सुभग सुनु गोरे।
नाम लखन लघु देवर मोरे ॥
अनुवाद—सरल स्वभाव गौर तनु सुशोभन।
कनिष्ठ देवर मोर नाम श्रीलक्ष्मण ॥
मूल—बहुरि वदन विधु अंचल ढांकी।
पिय तन चितै भौंह करि बांकी ॥
खंजन मंजु तिरीछे नैननि।
निज पति कहेउ तिनहिं सिय सैननि ॥
अनुवाद—अंचल ढांकिया पुनः सुधाकरानने।
भ्रू वक्र करिया चान प्रियतम पाने।

मंजुल खंजन आँखि करि वक्राकार।
इंगिते कहेनि रामे पति आपनार॥

४—गुजराती-अनुवाद

सस्तुं साहित्य-वर्धक कार्यालय, अहमदाबाद के संचालक भिक्षु अखंडानन्द ने पंडित छोटालाल चन्द्रशंकर शास्त्री से 'रामचरितमानस' की टीका कराकर प्रकाशित की है। टीका के साथ तुलसीदास का जीवन-वृत्तान्त भी दिया गया है। टीका का परिचय आगे दिया जाता है :

मूल—सब विधि सोचिय पर अपकारी।
निज तनु पोषक निर्दय भारी॥

टीका—जे बीजानों अपकार करतो होय तथा पोताना शरीरनो पोषक अने अतिशय निर्दय होय, तेनो सर्व प्रकार शोक करवो जोइये।

कई वर्ष पूर्व, महात्मा गांधी ने वर्धा में मुझे बताया था कि गुजराती में 'रामचरितमानस' की एक और टीका प्रकाशित हुई है। उसकी वे प्रशंसा भी कर रहे थे, पर वह मेरे देखने में नहीं आई।

५—अंग्रेजी-अनुवाद

यह अनुवाद श्री एफ० एस० ग्राउस, (B. C. S., M. A. Oxon, C. I. E., Fellow of the Calcutta University) ने अंग्रेजी गद्य में किया है। इसका छठा संस्करण इलाहाबाद के बुकसेलर श्रीरामनारायन-लाल ने सन् १९२२ में प्रकाशित किया था। इसमें एक-एक शब्द का अनुवाद करके कवि के भावों को स्पष्टता से व्यक्त करने का सफल प्रयत्न किया गया है। इसमें मूल नहीं दिया गया है। केवल दोहे का नम्बर देकर चौपाइयों का पुञ्ज अलग करके टीका की गई है।

मूल—मुखिया मुख सों चाहिए, खान-पान कहुँ एक।
पालइ पोषइ सकल अँग, तुलसी सहित विवेक॥

अनुवाद—ए चीफ शुड बी लाइक दि माउथ, विच अलोन (सेज़ तुलसी) डज़ माल दि ईटिंग एण्ड ड्रिंकिंग, एण्ड यट स्पोर्ट्स एण्ड नरिशेज़ टू ए नाइसटी ईच सेपरेट मेम्बर ऑव दि बॉडी।

रामचरितमानस की टीकाएँ

'रामचरितमानस' पर अब तक बीसों टीकाएं हो चुकी हैं। फिर भी मानस-भक्तों को अभी तृप्ति नहीं हुई है। इस समय भी कुछ टीकाएं लिखी जा रही हैं और कुछ छपने पर हैं। यहां कुछ मुख्य-मुख्य प्राचीन टीकाओं के संक्षिप्त परिचय उदाहरणों के साथ दिये जा रहे हैं —

१. ज्ञानी संतसिंह (पंजाबी; श्रीदरबार साहब, अमृतसर) की टीका।

मानस-भाव-प्रकाश—

नील सरोरुह स्याम तरुन अरुन वारिज नयन।
करो सु मम उर धाम, सदा छीरसागर सयन॥

अर्थ—इन्दीवर सम जिनका रुचिर रूप अरु रक्त कमलों सम दृग हैं। अरु खीर निधि में जिनका सयन है। सो मेरे रिदै विषे बसो तत्त्व यह अपणा बिश्राम करके मेरे रिदै को भी पयनिधिवत् उज्ज्वल अरु गंभीर करो।

यह टीका संवत् १८८८ में लिखी गई।

२. श्रीबैजनाथजी कूर्मवंशी की टीका।

ध्वज कुलिश अंकुश कंज युत वन फिरत कंटक किन लहे।
पद कंज द्वन्द मुकुन्द राम रमेश नित्य भजामहे॥

अर्थ—जिन पायँन में ध्वजा चिह्न जाके ध्यानते विजय मिलती है। पुनः कुलिश वज्र-चिह्न है जाके ध्यान ते कमलपत्रवत् भवजल नहीं छुइ जात। ऐसे-ऐसे प्रभाव हैं जिनमें ते अरतालिस चिह्न दोऊ पाँयन में हैं तिन चिह्नन-युत पद कंजवन में फिरत समय काँटा काँकरन लह्यउ उन पाँवन को स्पर्श पाइ कृतार्थ भये।

यह टीका मुंशी नवलकिशोर, लखनऊ के छापेखाने में, जनवरी १८९० ई० में छपी थी।

३. पंडित शिवलाल पाठक की टीका।

श्रीमन्मानस-अभिप्राय-दीपक (पद्य)—

धर्म सनेह उभय मति घेरी। भइ गति साँप छछूँदरि केरी॥

टीका—मरन नेह क्लेदन धरम, उर कैकयि जल जानि।
दुर्गंधहि उत्सर्प तजि, सुत इत रानि सयानि॥

यह टीका केवल बाल-कांड और अवध-कांड पर है। इस टीका की टीका श्रीयुक्त इन्द्रदेवनारायण ने गद्य में की है।

४. श्री देवतीर्थ (काष्ठजिह्वा)स्वामी की टीका।

मानस-परिचर्या—

वंदौ गुरुपद पदुम परागा। सुरुचि सुवास सरस अनुरागा।

टीका—पदुम में चारि गुन हैं, रुचि, बास, रस, रंग, ये सब गुन पराग में हैं। संका। चरन रज की बड़ाई कौने हेतु से बहुत कही। समाधान। चरन में अंगुष्ठ सेषनाग है अंगुरी दिग्गज है, पृष्ठ कूर्म है, एड़ी बराह है, तरवा सगुन ब्रह्म है, रज सत्ता स्वरूप है, एहि हेतु से रज की बड़ाई कही।

५. श्रीमन्महाराज द्विजराज काशिराज ईश्वरीप्रसादनारायणसिंह बहादुर, जी० सी० एस० आई० की टीका।

मानस-परिचर्या-परिशिष्ट—

चौपाई वही जो ऊपर ४ नं० में दी हुई है।

टीका—रुचि का वहाँ कौन प्रयोजन बाजे चीज में गन्ध है जैसे चोआ परन्तु रुचि नाहीं, बाजे चीज में रुचि है, गंध नाहीं, जैसे सोना बाजे चीज में सुगंध रुचि सरस है पै रंग नाहीं, जैसे सिखरन रज में चारो।

६. परमहंस प्रशंसमान हंसवंशावतंस श्रीजानकीरमणचरणसरोरुह-राजहंस श्रीसीतारामाय हरिहरप्रसादजी की टीका।

मानस-परिचर्या-परिशिष्ट-प्रकाश—

चौपाई वही जो ऊपर ४ नं० में दी हुई है।

टीका—सुन्दर रुचि करिकै सुन्दर वासना करिकै सुन्दर सरस अनुराग करिकै गुरु पद्म पराग को बन्दत हौं।

नं० ४, ५, ६ के तीनों टीकाकारों की टीकाएँ एक ही जिल्द में 'रामायण-परिचर्या-परिशिष्ट-प्रकाश' नाम से सं० १९५५ में खड्गविलास प्रेस, बाँकीपुर से प्रकाशित हुई थीं।

७. मुन्शी शुकदेवलाल (मैनपुरी-निवासी) की टीका।

मानस-हंस-भूषण—

कादर मन कहँ एक अधारा।
दैव-दैव आलसी पुकारा॥

टीका—और दैव-दैव-दैव यह जो आलसी पुकार है सो तो असमर्थ जीवों के मन को एक यही अधार है।

यह टीका कलि-संवत् ४९७० में लिखी गई और नवल-किशोर प्रेस लखनऊ से सं० १९१२ में प्रकाशित हुई।

मेरे देखने में जितने 'मानस' आये, उनमें केवल उक्त मुन्शी जी न बाल-कांड के प्रारम्भ में 'नर हर' पाठ रखा है।

८. महन्त श्रीरामचरणदास जी (अयोध्या-निवासी) की टीका।

निज भ्रम नहिं समुझहिं अज्ञानी।
प्रभु पर मोह धरहिं जड़ प्रानी॥

टीका—हे भरद्वाज मुनि, श्रीमहादेव जी बोलते भये हैं पार्वती सुनु यहै तेरो कहना अनुचित भयो है जो तुम कहेहु कि राम आन हैं ऐसो तो ते कहहि जे प्राणी अज्ञानी हैं जे अपनो भ्रम नहीं समझते है अस अपनो मोह प्रभु विषे

रोपण करते हैं यह कहते हैं कि जो राम परमेश्वर परब्रह्म होते तौ जानकी जी को क्यों ढूँढ़ते फिरते तहाँ प्रभु की चित्र-विचित्र लीला वे जड़ प्राणी कहा जानैं हैं।

यह टीका नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ से प्रकाशित हुई है। इसमें तुलसीदास की जीवनी भी दी हुई है, जो बैजनाथ जी कुरमी की बनाई हुई पद्य में है, पर इसमें उनका नाम नहीं दिया है।

९. पंडित रामेश्वर भट्ट की टीका।

पीयूष-धारा—यह टीका आगरा-निवासी स्वर्गीय पंडित रामेश्वर भट्ट ने सं० १९५६ में समाप्त की। इसका सं० १९८१ का सातवाँ संस्करण मेरे सामने है। इसमें मूल के तद्भव शब्दों को तत्सम कर दिया गया है और बीच-बीच में क्षेपक भी जोड़ दिये गए हैं।

मुनि सुसीलता अपनी करनी। सुरपति सभा जाइ सब बरनी।
सुनि सबके मन अचरज आवा। मुनिहिं प्रसंसि हरिहिं सिर नावा।

टीका—और मुनि की सुशीलता और अपनी करनी इन्द्र की सभा में जाकर वर्णन करी। यह सुन सबके मन में आश्चर्य हुआ, सबने मुनि की प्रशंसा कर प्रभु को दण्डवत् करी।

१०. श्रीरामप्रसाद शरण (कनक-भवन, अयोध्या) की टीका।

सीता चरन चोंच हति भागा। मूढ़ मन्द मति कारन कागा।

टीका—जानकी जी के चरण में चोंच मारकर भागा। ऐसा क्यों किया ? उस पर कहते हैं कि मूढ़ अर्थात् अज्ञानी है—बुद्धि-हीन है। इसी से सब पक्षियों में अधम जो काक है वही शरीर धारण किया। पक्षी जब तक उड़ते रहते हैं तब तक उनका पग सिमटा रहता है। जब कहीं बैठ जाते हैं तब पग से कुछ कार्य कर सकते हैं। कोई ऐसा भी अर्थ करते हैं कि श्रीजानकी जी को चरण और चोंच मारकर भागा।

११. पंडित विनायकराव (जबलपुर) की टीका।

यह टीका जबलपुर के स्वर्गीय पंडित विनायकराव ने सं० १९७१ में लिखी थी। यह टीका कथा बाँचने वाले पंडितों के बड़े काम की है, क्योंकि प्रत्येक प्रसंग पर हिन्दी के अन्य कवियों के छन्द और गान इसमें दिये हुए हैं। इसमें भी संस्कृत शब्दों के शुद्ध रूप दिये गए हैं। यह टीका 'मानस' के सातों कांडों पर है। प्रत्येक कांड के अन्त में एक विस्तृत 'पुरौनी' दी गई है, जिसमें कांड भर की शङ्काओं का समाधान तथा अनेक ज्ञातव्य बातों का समावेश भी कर दिया गया है :

परवश सखिन लखी जब सीता।
भयउ गहरु सब कहहिं सभीता॥
पुनि आउब इहि बिरियाँ काली।
अस कहि मन बिहँसी इक आली॥

टीका—जब सखियों ने देखा कि सीताजी तो दूसरे के आधीन हो रही हैं (अर्थात् रामचन्द जी के प्रेम में पग गई हैं), तब तो सब-की-सब डर के मारे कह उठीं कि देरी हो गई है। (इतने ही में) एक सखी यह कहकर कि 'पुनि आउब इहि बिरियाँ काली' मन-ही-मन मुसकराने लगी।

सूचना—'पुनि आउब इहि बिरियाँ काली' इन शब्दों के विषय में गोस्वामी जी आगे लिखते हैं कि 'गूढ़ गिरा सुनि सिय सकुचानी' इससे स्पष्ट है कि इसमें बहुत गूढ़ भाव भरा हुआ है सो यों कि—

(१) 'इसी समय कल फिर आवेंगी' अर्थात् आज विशेष प्रेम के कारण बहुत देरी हो चुकी है सो जल्दी घर चलो कल फिर आवेंगी।

(२) आज तुमने पूजा के हेतु यहाँ आकर इतनी देरी लगाई है सो 'कल फिर इसी समय आ सकोगी' क्या? अर्थात् माताजी कल न आने देवेंगी।

(३) राजकुमारों को यहाँ एकान्त में देख लेने का सुअवसर आज ही मिला है 'कल फिर क्या ऐसा समय आवेगा' अर्थात् नहीं आवेगा, कारण धनुष-यज्ञ हो चुकेगा।

(४) सखी यह दर्शाती है कि अब चलो घर चलें कल यही समय फिर आवेगा। अर्थात् कल इसी समय धनुष-यज्ञ होगा। वहाँ सब राजाओं के साथ ये राजपुत्र भी आवेंगे तब उन्हें फिर देख लेना।

१२ स्व० बाबू श्यामसुन्दरदास, बी० ए०, की टीका।

करत बतकही अनुज सन, मन सिय रूप लुभान।
मुख सरोज मकरंद छवि, करन मधुप इव पान॥

टीका—रामचन्द्रजी वार्तालाप लक्ष्मणजी से कर रहे हैं, पर मन सीताजी के रूप पर लुभाया हुआ है। जैसे भँवरा कमल के ऊपर बैठकर उसके मकरन्द (फूल के रस) को पीता है, और पीते समय चुप रहता है, फिर थोड़ी देर में उसी के आस-पास गूँजता है, वैसे ही यहाँ सीताजी के मुखकमल के छवि (कान्ति) रूपी मकरन्द को रामचन्द्र का मनरूपी भँवर पान कर रहा है। भँवर फूल का रस पीते समय उस फूल को तकलीफ देना नहीं चाहता, इसलिए बारम्बार उड़-उड़कर गूँजने लगता है। यहाँ भी रामचन्द्र उस मुख छवि को एकदम नहीं निहारते, बीच-बीच में लक्ष्मणजी से बातचीत करने

लग जाते हैं।

यह टीका इंडियन प्रेस, प्रयाग से प्रकाशित हुई है।

१३. पंडित महावीरप्रसाद मालवीय की टीका।

सुर नर मुनि कोउ नाहिं, जेहि मोह माया प्रवल।
अस विचारि मन माहिं, भजिय महामाया पतिहिं॥

टीका—देवता, मनुष्य और मुनियों में कोई ऐसा नहीं है कि जिसको बलवती माया मोहित न करती हो। ऐसा मन में विचारकर विशाल माया-धीश का भजन करना चाहिए।

यह टीका सं० १९८२ में वेलवेडिर प्रेस, प्रयाग से प्रकाशित हुई थी।

१४. श्री जनकसुताशरण शीतलासहाय सावन्त की टीका।

मानस-पीयूष—

गिरिजा सुनहु राम कै लीला। सुर हित दनुज विमोहन सीला।

टीका—दनुज = दैत्य, असुर, दनु से उत्पन्न। दनु दक्ष प्रजापति की कन्या का नाम है जो कश्यप ऋषि को व्याही गई। इसके ४० पुत्र हुए, जो सब दानव कहलाते हैं। इन सबके पुत्र-पौत्रादिक भी दानव कहलाते हैं।

सीला = परिपूर्ण; 'शील' का अर्थ स्वभाव भी लोगों ने किया है।

अर्थ—हे गिरिजे ! सुनो, श्रीरामचन्द्रजी की लीला देवताओं का हित और दैत्यों को विशेष मोहित करने वाली है।

नोट—इस चौपाई की जोड़ की चौपाइयाँ अयोध्या, अरण्य और उत्तर कांडों में भी हैं :

नर तन धरेउ सन्त सुरकाजा। कहहु करहु जस प्राकृत राजा।
राम देख सुन चरित तुम्हारे। जड़ मोहहिं वुध होहिं सुखारे॥

उमा राम गुन गूढ़, पंडित मुनि पावहिं विरति।
पावहिं मोह विमूढ़, जे हरि विमुख न धरम रति॥

असि रघुपति लीला उरगारी। दनज विमोहन जन सुखकारी।

नोट—'सुरहित दनुज विमोहन शीला।'— देवताओं को हितकारिणी और दैत्यों को अहितकारिणी है। तात्पर्य यह है कि दैवी सात्विक बुद्धि वाले सज्जनों में इससे भक्ति, वैराग्य, विवेक की वृद्धि होती है। उनका लोक-परलोक दोनों बनता है। और राजस और तामस वृत्ति वालों में मोह की विशेष वृद्धि होती है। ये शास्त्रों में सुनते हुए भी मूढ़ बन जाते हैं। ईश्वर को प्राकृत नर ही कहने लगते हैं।

ये दो विरोधी बातें एक ही वस्तु से कैसे ? जैसे स्वाती जल तो वही

होता है पर उसका बूंद पृथक्-पृथक् वस्तुओं में पड़ने से पृथक्-पृथक् गुण उत्पन्न करता है। देखिये सीप में पड़ने से वह मोती बन जाता है, वही केले में पड़ने से कपूर, बांस में बंसलोचन, गोकर्ण में गोलोचन बन जाता है और सर्प में उसी से विष की वृद्धि होती है।

पुनः देखिये श्रीकृष्ण के जिस अद्भुत रूप को अर्जुन देखकर उनकी शरण गया उसी को दुर्योधन ने देखकर नट का खेल कहा। इत्यादि।

नोट—श्रीवैजनाथजी लिखते हैं कि शिवजी यह कहकर पार्वती जी को सावधान कर रहे हैं कि देखो फिर लीला में मोहित न हो जाना। इसी प्रकार जब अरण्य-कांड में पहुँचे तब भी सावधान किया है, क्योंकि वहाँ तो वही लीला वर्णन होगी कि जिससे उसे सती तन में मोह हुआ था।

अलंकार—रामलीला तो वही एक और उससे दो विरुद्ध कार्य होते हैं—देवताओं का हित और दैत्यों का मोहित होना अर्थात् अनहित। अतएव प्रथम व्याघात अलंकार हुआ।

'मानस' की टीकाओं में यही टीका सबसे बड़ी है। इसमें एक-एक शब्द पर बहुत बारीकी से विचार किया गया है। इसका मूल्य भी संभवतः ३५) के लगभग है।

यह टीका सात-आठ वर्षों के लगातार परिश्रम से तुलसी-सं० ३११ (वि० सं० १६६१) में सम्पूर्ण हुई।

इन टीकाओं के सिवा पुस्तक-विक्रेताओं के यहाँ 'मानस' की बहुत सी अन्य टीकाएँ भी मिलती हैं।

रामचरितमानस का भूगोल

इस विषय पर सं० १८६० के श्रावण मास की 'माधुरी' में सुप्रसिद्ध पुरातत्वज्ञ स्वर्गीय श्री हीरालाल ने एक लेख लिखकर अच्छा प्रकाश डाला है। उसका सारांश यहाँ दिया जाता है—

"रामायण में भौगोलिक नाम ५० से अधिक नहीं है। कुछ नाम बार-बार आते हैं। अवध या उसके पर्यायवाची अवधपुर, अवधपुरी, अयोध्या, कोशल, कोशला, कोशलपुर, कोशलपुरी, रामपुर, रामपुरी या दशरथपुर, ये नाम १०० से अधिक बार आए हैं। अकेले अयोध्या-कांड में अवध का नाम ५४ बार आया है। सुरसरि और उसके पर्यायवाची सुरसरिता, देवसरि, देव-धुनी विबुध-नदी और गंग या गंगा का नाम ५० बार से अधिक मिलता है। ३५ बार लंका, २६ बार हिम-गिरि, २३ बार प्रयाग, १८ बार चित्रकूट, १६ बार सरयू,

११ बार यमुना, १० बार कैलाश, ८ बार मिथिला, ७ बार काशी और त्रिवेणी, ६ बार दंडक और पंचवटी, पाँच बार शृङ्गवेरपुर या सिंगरौर, ४ बार मंदाकिनी, विंध्याचल और गोदावरी, ३ बार तमसा, गोमती, प्रवर्षण-गिरि, त्रिकूट-गिरि और अशोक वन और २ बार से कम कर्मनाशा, मेकल-सुता, सई, नील-गिरि, सेतुबंध और सुवेल के नाम नहीं आए। प्रसंगानुसार नंदि-ग्राम, बदरी-वन, नैमिष, केकय-देश, नग, मरु-देश, मालव, उज्जैन, सोन-नद, मानस, पंपा-सरोवर, ऋष्यमूक, रामेश्वर आदि का नाम भी कम-से-कम एक बार तो आ ही गया है। कहीं-कहीं पौराणिक भूगोल के नाम भी आ गए हैं; सुमेरु, सरस्वती, सप्तदीप, भोगवती, अमरावती, मंदर, मैनाक आदि। कई स्थलों में राजों आदि के नाम भौगोलिक नामों पर से बतलाये गए हैं; जैसे अवधेश, अवधपति, कोशलेश कोशलाधीश। लंका-कांड में तो कोशलाधीश की भरमार है। इसी प्रकार जनक के नाम मिथिलेश, तिरहुति-राउ, विदेह और उनकी लड़की का नाम मैथिली, वैदेही आदि से कई स्थलों में सूचित किया गया है। रावण के लिए लंका-पति, लंकेश आदि का प्रयोग किया गया है।

राम-वनवास के सम्बन्ध में जितने भौगोलिक नाम चाहिएँ, उतने तो नहीं हैं, फिर भी कुछ मुख्य-मुख्य स्थानों के नाम आ ही गए हैं। अवध के निकटस्थ स्थानों के नाम कुछ विशेष हैं; परन्तु ज्यों-ज्यों वहाँ से फासला बढ़ता है, त्यों-त्यों स्थलों के नाम न्यून होते गए हैं। राम-प्रवास के तीन अड्डे मुख्य हैं; चित्रकूट, पंचवटी और प्रवर्षण-गिरि। पहले अड्डे तक तो सई-सरीखी सड़ी नदी पार करने का भी उल्लेख है।

चित्रकूट के आगे बहुत ही बड़े भौगोलिक स्थलों का नाम कहीं-कहीं आ गया है; नहीं तो मुनियों के आश्रम से राम-भ्रमण के पते का इङ्गित भर किया गया है। दूसरे अड्डे से लंका पहुँचने तक बहुत ही कम नाम लिखे गए हैं।

यद्यपि बाल-कांड में राम-विवाह तक का वर्णन है, तथापि उसमें प्रायः सभी स्थानों का नाम आ गए हैं; क्योंकि आदि में तुलसीदास ने कथा-प्रसंग से रामायण का सार ही वर्णन कर दिया है।

सबसे मुख्य स्थान अयोध्या है; जहाँ राम का जन्म हुआ। अयोध्या इसी नाम से अब भी वर्तमान है, यद्यपि उसका विस्तार बहुत छोटा हो गया है और वहाँ अब कोई ऐसे चिह्न विद्यमान नहीं हैं, जो राम के समय के हों। जन्म-स्थान पर एक चबूतरा बना है।

रामायण से अवध शब्द का बहुत उपयोग किया गया है। अयोध्या शब्द

केवल उत्तर-कांड में एक वार ही उपयोग में लाया गया है। किष्किधा-कांड को छोड़कर कोई कांड ऐसा नहीं, जिसमें अवध का नाम किसी रूप में न आया हो। किष्किधा-कांड में भी 'कोशलेश' शब्द आया है; जो राम की जन्म-भूमि का स्मरण कराता है। राम का विवाह मिथिला में हुआ, इसलिए उसका जिक्र बाल-कांड में कई बार मिथिला, विदेहपुर, जनकपुर और तिरहुत के रूप में किया गया है। इनकी स्थिति नैपाल की तराई में बतलाई जाती है। लोग वहाँ तीर्थ-यात्रा को जाया करते हैं।

बाल-कांड में जिन दो-चार देशों के नाम आए हैं, वे गुण-अवगुण दिखलाने के लिए लिखे गए हैं, न कि भौगोलिक सम्बन्ध से, यथा—'कासी-मग सुरसरि कर्मनासा; मरु मालव, महिदेव गवासा।' अयोध्या-कांड में भी 'कर्मनास जल सुरसरि परई; तेहि को कहउ, सीस न धरई।' जैसे गंगा तारने वाली और कर्मनाशा नदी कर्म का नाश करने वाली है, वैसे ही काशी मोक्ष देती है। और, 'मगहर मरै, सो गदहा होई।' यदि मग का अर्थ मगध है, तो वह भी कुदेश का सूचक है। कर्मनाशा नदी कैमोर पर्वत से निकलकर चौसा के पास गङ्गा में मिली है। राजपूताने का मरुस्थल और उसी से लगा हुआ मालवा देश, ये ऊसर और उपजाऊ की सीमा दिखाते हैं। ऐसी ही उपमाओं के प्रसंग में नर्मदा और सोन का नाम आ गया है। तुलसीदास लिखते हैं—राम-कथा शिव को 'मेकलशैल-सुता-सी' प्रिय है। अयोध्या-कांड में बड़ी नदियों के सम्बन्ध से 'मेकल-सुता' का नाम लिखा गया है—'सुरसरि, सरस्वति, दिनकर-कन्या; मेकल-सुता, गोदावरि धन्या। सब सर, सिन्धु, नदी, नद नाना, मंदाकिनी कर करहिं बखाना।' ऐसे ही सरयू की प्रशंसा में सोन का नाम आ गया है—'राम, भक्ति-सुरसरि तहि जाई; मिली सुकीरति-सरजु सुहाई। सानुज राम-समर यश पावन; मिलेउ महानद सोन सुहावन।' नर्मदा और सोन, दोनों अमरकंटक से निकली है, और एक खम्भात की खाड़ी में तथा दूसरी गङ्गा में जा मिली है। सोन पुरुषवाची महानद कहलाता है। वह नर्मदा से विवाह करना चाहता है; परन्तु नर्मदा की अप्रसन्नता हो जाने से सम्बन्ध न हो सका। रामावतार का हेतु-वर्णन करते समय 'तीरथवर नैमिष विख्याता' का नाम भी आ गया है; जहाँ स्वायंभुव मनु तप करने के लिए 'पहुँचे जाइ धेनु-मति तीरा।' नैमिषारण्य, अवध में, सीतापुर से बीस मील, गोमती के बाएँ किनारे पर है। अब इसको नीमसार या नेमसार कहते हैं। रामावतार-वर्णन के सिलसिले ही में प्रतापभानु का जिक्र आता है। वह केकय-देश का राजा था। केकय-देश काश्मीर राज्य में है। उसका वर्तमान नाम कक्का है।

अयोध्या के उत्तरीय अंचलस्थ चार और स्थानों के नाम आते हैं—हिम-गिरि, कैलास, बदरी-वन और मानसरोवर। हिम-गिरि, हिमाचल, हिमवंत, गिरीश, गिरिपति आदि हिमालय के नाम हैं। उसका ज़िक्र पार्वती के पिता के रूप में अनेक बार किया गया है। कैलास या शिव-शैल इसी पर्वत की एक चोटी है, और बदरी-वन वर्तमान बदरीनाथ हैं। मानसरोवर हिमालय श्रेणी ही में प्रख्यात झील है। मालवा की प्रख्यात उज्जयिनी का नाम कागभुशुंड के भ्रमण में, न कि राम-चरित के सम्बन्ध में आया है। इन स्थानों का निबटारा होने से अब केवल वे ही स्थान बच रहते हैं जो राम-वनवास के समय राम के मार्ग में पड़े, या प्रवास के सम्बन्ध से उनकी चर्चा उठी।

राम अवध से चित्रकूट तक जिस मार्ग से गए, उसके विषय में मतभेद नहीं है। अवध से चलकर 'तमसा-तीर निवास किय, प्रथम दिवस रघुनाथ।' तमसा या टौंस एक छोटी सी नदी है; जो अयोध्या के पश्चिम से निकलकर बलिया के पास गङ्गा में मिली है। दूसरा मुक़ाम गङ्गा के किनारे शृङ्गवेरपुर (वर्तमान सिंगरौर) में हुआ। तीसरा मुक़ाम एक वट-वृक्ष के नीचे, और चौथा मुक़ाम तीर्थराज प्रयाग में हुआ। वहाँ से चलकर पाँचवाँ मुक़ाम शायद यमुना के किनारे और छठा वाल्मीकि के आश्रम में हुआ। परन्तु वहाँ ठहरने का कुछ पता नहीं लगता। वाल्मीकि ने उन्हें चित्रकूट में वास करने का उपदेश दिया। यदि आश्रम में रात-भर ठहर गए होंगे, तो वह सातवें मुक़ाम में चित्रकूट पहुँचे होंगे।

राम ने पहले मंदाकिनी में स्नान किया; जो एक छोटी सी नदी है, और चित्रकूट के तले पयोष्णी में मिल गई है। चित्रकूट बाँदा जिले में, प्रयाग (इलाहाबाद) से ७१ मील दूर है। इस प्रकार यदि चित्रकूट में सातवाँ मुकाम हुआ हो, तो प्रायः २०-२५ मील नित्य चलना पड़ा होगा। चित्रकूट में भरत आकर मिले। वह ६ मुकाम करके वहाँ पहुँचे। उनका प्रथम दिवस तमसा-तट पर, और दूसरे दिन गोमती के तीर पर निवास हुआ। तीसरे दिन सई नदी के किनारे डेरा पड़ा। यह नदी गोमती और गंगा के बीच में पड़ती है, और जौनपुर के निकट गोमती में मिल गई है। चौथे दिन गंगा के किनारे शृंगवेरपुर में ठहरे। पांचवें दिन प्रयाग में प्रवेश किया, और त्रिवेणी में स्नान करके भरद्वाज के अतिथि बने। वहाँ से चलकर छठा मुकाम किसी अज्ञात जगह में हुआ। फिर सातवाँ मुकाम यमुना के किनारे हुआ। इसके पीछे आठवाँ और नवाँ मुकाम बीच में करके दसवें में चित्रकूट पहुँचना ज्ञात होता है। जान पड़ता है, लौटने पर भरत बड़ी फुर्ती से गए। चार ही मुकाम में

अयोध्या पहुँच गए और निकटस्थ नंदिग्राम में रहना निश्चित किया। रामायण में चित्रकूट को कामद और राम-गिरि कहा है। वहीं अगस्त्य का आश्रम था। वहाँ भी राम कुछ दिन ठहरे थे। चित्रकूट और रामटेक के बीच के स्थानों के नाम रामायण में नहीं मिलते। केवल कुछ थोड़े से आश्रमों के नाम लिखे हैं। यथा चित्रकूट से कूच करके वह अत्रि के आश्रम को गए, और वहाँ से शरभंग ऋषि के आश्रम को। पश्चात् सुतीक्ष्ण के और फिर अगस्त्य के आश्रम में पहुँचे। इन सबका जिक्र अरण्य-कांड में है। चित्रकूट को छोड़ने पर राम ने अरण्य में प्रवेश किया था। विन्ध्याचल से गोदावरी नदी तक दंडक-वन का विस्तार था।

ऊपर लिख आये हैं कि अगस्त्याश्रम का सदर-स्थान रामटेक था। वह चित्रकूट से तीन सौ मील से अधिक दूर है। इस विस्तीर्ण स्थल में जान पड़ता है। दो ही मुनियों के मुख्य आश्रम थे—अत्रि और शरभंग के। रामटेक से पंचवटी भी ३०० मील दूर पड़ती है। इसके बीच में किसी बड़े मुनि का आश्रम नहीं था। यहाँ पर सघन जंगल अब तक है। यहाँ के निवासी विशेषकर गोंड हैं; जो लगभग पचास वर्ष पूर्व तक किसी जगह बिलकुल नंगे रहते थे। अगस्त्याश्रम को छोड़कर राम पंचवटी ही में रमे। कई लोग नासिक को पंचवटी बतलाते हैं। परन्तु यह भ्रम है। अब यह सिद्ध हो चुका है कि पंचवटी बस्तर-रजवाड़े के दक्षिणी छोर पर, गोदावरी के किनारे है। उस गाँव का नाम अभी तक पर्णशाला चला आता है। जिस स्थान से सीता-हरण हुआ था, वहाँ पर एक पत्थर है; जिसमें सीताजी के दो छोटे-छोटे पैर और रावण का एक बड़ा भारी पैर बना है।

सीता-हरण होने के पश्चात् पम्पा-सरोवर का नाम आता है। यह स्थान भी पंचवटी से ३०० मील से कम दूर नहीं है। पम्पा-सरोवर निजाम के राज्य में, दक्षिण के छोर पर, अनगुण्डी-गाँव के निकट है। वहाँ तुङ्गभद्रा का किनारा है। उस पार विजयनगर की उजाड़ बस्ती है। वहीं पर प्रवर्षण गिरि है; जहाँ एक चट्टान पर राम का मन्दिर बना है। पम्पा से लगा हुआ ऋष्यमूक पर्वत है। ये सब स्थान किष्किन्धा में है। यहाँ पर राम ने अपनी सेना सजाई फिर चलकर समुद्र के किनारे सेतु बाँधा और रामेश्वर की स्थापना की। यहीं चार धामों में दक्षिण का धाम 'रामेश्वरम्' है। रामेश्वरम् से १२ मील पर धनुष्कोटि है। अब वहाँ से लंका को रेल बन गई है। जान पड़ता है, राम के सेतु ही की सीध में यह बनाई गई है। इस मार्ग से समुद्र केवल ४० ही मील पड़ता है। राम की सेना सुवेल पर्वत पर ठहरी थी। इस पर्वत का पता कहीं

नहीं लगता। न रावण की राजधानी का पता है। अलबत्ता अशोक-वन 'नुबराएलिया' में बतलाया जाता है। यदि यह राजधानी के निकट था, तो राम की सेना को 'जैफना' के पास उतरकर स्थल-मार्ग से, वहाँ पहुँचने को २०० मील के ऊपर चलना पड़ा होगा। इस स्थान के निकट 'पिडुरू-तला-गला' नामक लंका का सबसे ऊँचा पर्वत है। उसकी ऊँचाई मदरास के नीलि-गिरि के बराबर है। इसके निकट दो और बड़ी चोटियाँ हैं। शायद इसी पर्वत-श्रेणी का प्राचीन नाम त्रिकूट रहा हो। लंका की स्थिति त्रिकूट-गिरि पर बतलाई गई है। फौजों के छिपाने के लिए तो शायद विरला ही स्थान इससे अच्छा और सुभीते का निकलेगा। क्या आश्चर्य, जो यह दुर्गम स्थान दुर्ग के काम में लाया जाता रहा हो।

रामायण में सिंहल की राजधानी लंका बतलाई गई है। परन्तु लंका नाम का कोई नगर नहीं है। इस सिंहल-द्वीप में 'पोलन-नरुआ' नामक प्राचीन पुर है, जो पौलस्त्य-नगर का अपभ्रंश जान पड़ता है। यदि पोलन-नरुआ राजधानी रही हो, तो सुबेल-पर्वत निकट ही रहा होगा। तीन-चार मील पर एक पर्वत-श्रेणी है, जिसका सिरा जैफना और पोलन-नरुआ के बीच पड़ता है। यह मर्म-सूचक गिरितल्ला-नामक झील के पास है। बहुत करके इसी के निकटस्थ गिरि का प्राचीन नाम सुबेल रहा होगा, जिस पर राम की सेना जाकर ठहरी थी। समुद्र-तट से यहाँ तक पहुँचने के लिए राम-सेना को प्रायः पौने दो सौ मील चलना पड़ा होगा। यदि समुद्र-तट राजधानी से इतनी दूर न होता, तो कदा-चित् रावण के पहरुये सेतु बाँधने में बहुत सी बाधाएँ डालते। वे लोग अपनी राजधानी ही में सोते रह गए और इधर राम की सेना सुबेल पर आ धमकी। यथार्थ बात चाहे जो हो, वर्तमान समय में लंका में पोलन-नरुआ के सिवा ऐसा कोई दूसरा स्थान नहीं दीख पड़ता, जो रावण की राजधानी होने का दावा कर सके।"

महर्षि वाल्मीकि का आश्रम कहाँ था ? इस विषय में भी बड़ा मतभेद चला आता है। रामायण के सुप्रसिद्ध पंडित श्रीअवधवासी लाला सीताराम ने उक्त आश्रम के सम्बन्ध में विशेष रूप से खोज की है। उनके एक लेख का सारांश यह है :

"वाल्मीकि रामायण के अनुसार महर्षि वाल्मीकि श्रीरघुनाथजी से चित्र-कूट में मिले थे। इसका अभिप्राय यह भी हो सकता है कि वे चित्रकूट के आस-पास दो-चार कोस पर कहीं रहते हों और महाराज दशरथ के साथ मेल-व्यवहार होने के कारण श्रीरघुनाथजी का आगमन सुनकर मिलने के लिए

चले गए हों। जिस पहाड़ी पर वाल्मीकि का आश्रम बतलाया जाता है उसको भौंरी या लालापुर की पहाड़ी कहते हैं और गुरौली घाट, जिससे श्रीरामचन्द्रजी का यमुना-पार करना बतलाया जाता है, और चित्रकूट के बीच में है। गोस्वामी तुलसीदासजी ने भी रामायण के अयोध्या-कांड में इसी स्थान पर वाल्मीकि का आश्रम माना है, जहाँ सीता और लक्ष्मण समेत :

देखत बन सर सैल सुहाये। बालमीकि आश्रम प्रभु आये।
राम दीख मुनि बास सुहावन। सुन्दर गिरि कानन जल पावन।

बिठूर में वन और सर तो हो सकते हैं पर सैल का वहाँ क्या, वहाँ से दस-बीस कोस इधर-उधर भी अत्यन्ताभाव है। यहीं वाल्मीकिजी से श्रीरघुनाथजी ने कहा था :

अब जहँ राउर आयसु होई। मुनि उदवेगु न पावइ कोई।
अस जिय जानि कहिअ सुइ ठाऊँ। सिय सौमित्र सहित जहँ जाऊँ।
तहँ रुचि रुचिर परन तृनशाला। बासु करउँ कछु काल कृपाला।

इसके उत्तर में वाल्मीकिजी ने कहा :

चित्रकूट गिरि करहु निवासू। तहँ तुम्हार सब भाँति सुपासू।

दूसरा वाल्मीकि का आश्रम बिठूर में माना जाता है। 'रघुवंश' में भी शत्रुघ्नजी का मथुरा जाते हुए इसी आश्रम में ठहरना ठीक जँचता है। परन्तु हमारे मित्र पण्डित हरिहरदत्त शास्त्री ने इसकी जांच की है। शास्त्री जी लिखते हैं :

"लवकुशोत्पत्ति-स्थान कानपुर से पश्चिम सात कोस बी० बी० सी० आई० रेलवे के स्टेशन चौबेपुर से तीन मील उत्तर मौजा बेलारुद्र में है। यह स्थान बिठूर से ६ मील पश्चिम में है, जहाँ पर वाल्मीकि मुनि का स्थान, सीता जी का निवास-स्थान और वाल्मीकीय रामायण-प्रणयन-स्थान युक्त वाल्मीकि-कुण्ड है। यहाँ से दक्षिण एक मील तमसा और उत्तर एक मील गङ्गाजी हैं। जो वाल्मीकीय के उत्तर-कांड में रामचन्द्रजी ने लक्ष्मणजी से सीताजी के परित्याग का स्थान बतलाया था।

तीसरा वाल्मीकि-स्थान केवल संस्कृत पढ़ने वाले नहीं जानते। वह गङ्गा-तट पर बनारस-राज में है। उसकी भी मैंने जांच कराई और एक नक्शा भी भी बना है। इसको भी वाल्मीकि का आश्रम गोस्वामी तुलसीदासजी ने माना है। यद्यपि रामायण के अयोध्या-कांड में, जैसा ऊपर लिखा गया, वाल्मीकि का आश्रम प्रयाग से चित्रकूट की राह में है और वहाँ पहाड़ी के ऊपर आश्रम बताया जाता है और इस आश्रम के आस-पास पहाड़ी का नाम नहीं है। इसका

वर्णन लिखने से पहले 'कवितावली' से इस विषय के कवित्त उद्धृत किये जाते हैं :

जहाँ वाल्मीकि भये ब्याध ते मुनीन्द्र साधु
मरा मरा जपे सिख सुनि ऋषि सात की।
सीय को निवास लवकुश को जनम थल
तुलसी छुवत छाँह ताप गरै गात की॥
विटप महीप सुरसरित समीप सोहै
सीतावट पेखत पुनीत होत पातकी।
वारीपुर डीघपुर वीच बिलसत भूमि
अंकित जौ जानकी चरण जलजात की॥

इस स्थान को आजकल सीतामढ़ी कहते हैं और यह बनारस-राज्य में गंगाजी के उत्तर तट पर है। यहाँ से बारीपुर एक मील पूर्व और दीग (दिगपुर) तीन मील दक्खिन है। सीतामढ़ी इलाहाबाद से बनारस को जो छोटी लैन (B. N. W.) जाती है, उस रेलवे के भीटी स्टेशन से छः मील पर है। सड़क कच्ची है परन्तु सूखे दिनों में इक्का जा सकता है।

वाल्मीकि का चौथा स्थान फैजाबाद के जिले में तमसा (मड़हा) के तट पर है।

अब बताइये कौन सा स्थान ठीक माना जाय ? सम्भव है कि वाल्मीकिजी रमते योगी की भाँति अपना स्थान बदलते रहे हों, परन्तु यह असम्भव है कि लव-कुश का जन्म बिठूर में भी हुआ हो और सीतामढ़ी में भी।"

कवितावली

तुलसीदास के ग्रन्थों में 'रामचरितमानस' के बाद 'कवितावली' को एक प्रमुख स्थान दिया जाता है। केवल इसीलिए नहीं कि इसमें नवों रसों में उच्चकोटि की कविता है, बल्कि इसलिए भी कि इससे तुलसीदास की जीवनी और तत्कालीन अन्य घटनाओं पर भी अच्छा प्रकाश पड़ता है। 'कवितावली' में हम तुलसीदास की दीन-दशा का जितना ही गहरा अध्ययन करते हैं, उतना ही उनका गौरव बढ़ता जाता है। राम के लिए 'रामचरितमानस' जितना आवश्यक है, उतना ही तुलसीदास के लिए यह 'कवितावली' है।

'कवितावली' सात कांडों में विभक्त है। इसके प्रत्येक कांड की छन्द-संख्या इस प्रकार है :

बाल-कांड	२२
अयोध्या-कांड	२८
अरण्य-कांड	१
किष्किंधा-कांड	१
सुन्दर-कांड	३२
लंका-कांड	५८
उत्तर-कांड (हनुमान-बाहुक-सहित)	२२७
	३६६

इसके अरण्य और किष्किन्धा-कांड में एक ही छन्द है। जान पड़ता है, इनके अन्य छन्दों के भाव तुलसीदास ने 'मानस' में ले लिये और उन्हें 'कविता-वली' में से निकाल दिया।

'कवितावली' में तुलसीदास की छात्रावस्था से लेकर उनके जीवन के अन्त समय तक की रचनाएँ, जो समय-समय पर होती रहीं, संगृहीत हैं। इससे इसमें तुलसीदास की कवित्व-शक्ति के विकास का एक मनोरंजक इतिहास भी सन्नि-विष्ट है। जो रचनाएँ तुलसीदास के प्रारम्भिक दिनों की हैं, उनमें शब्दाडम्बर खूब है। पर जैसे-जैसे कवि का अनुभव बढ़ता गया, कवित्व-शक्ति विकसित होती गई, वैसे-वैसे अर्थ-गाम्भीर्य बढ़ता गया है। पहले के छन्द समस्या-पूर्ति की तरह लिखे गए जान पड़ते हैं, इससे उनमें तोड़े-मरोड़े शब्दों में भावों को फँसाने का प्रयास किया गया दिखाई पड़ता है। पर आगे के छन्दों में कवि की शब्द-संकीर्णता जाती रही थी और वह धारा-प्रवाह की भाँति मन के भावों को इच्छित शब्दों में प्रकट करने में समर्थ हो चुका था। उत्तर-कांड का अधिकांश कवि की जीवनी से सम्बन्ध रखता है।

यह नहीं कहा जा सकता कि 'कवितावली' का सम्पादन तुलसीदास ने स्वयं किया था या उनके बाद किसी अन्य ने किया; पर यह निश्चय जान पड़ता है कि 'कवितावली' में जितने छन्द इस समय उपलब्ध हैं, सब तुलसीदास ही के रचे हुए हैं।

यहाँ 'कवितावली' के कुछ छन्द उदाहरण के तौर पर दिये जाते हैं—

राम के धनुष तोड़ने का वर्णन तुलसीदास ने कैसे जोरदार शब्दों में किया है :

डिगति उर्वि अति गुर्वि, सर्व पब्बै समुद्र सर।
ब्याल बधिर तेहि काल, विकल दिग्पाल चराचर ॥

दिग्गयन्द लरखरत, परत दसकंठ मुक्खभर।
सुर विमान हिमभानु, भानु संघटित परस्पर॥
चौंके बिरंचि संकर सहित, कोल कमठ अहि कलमल्यो।
ब्रह्मांड खंड कियो चंड धुनि, जबहिं राम सिव-धनु दल्यो॥

राम के साथ सीता विवाह-मंडप में बैठी हैं। राम का प्रतिबिम्ब सीता के कंकरण में जड़े हुए नग में पड़ रहा है। सीता उसे ध्यान से देख रही हैं। उस दृश्य का वर्णन तुलसीदास ने बड़ी सरसता से किया है :

दूलह श्री रघुनाथ बने, दुलही सिय सुन्दर मन्दिर माहीं।
गावति गीत सबै मिलि सुंदर, वेद जुवा जुरि विप्र पढ़ाहीं॥
राम को रूप निहारति जानकी कङ्कन के नग की परछाहीं।
यातें सबै सुधि भूल गई, कर टेकि रही पल टारति नाहीं॥

राम वन को जा रहे हैं। सीता और लक्ष्मरण साथ हैं। कोमलांगिनी सीता दो ही कदम चलने पर थक जाती हैं और पूछने लगती हैं—अभी और कितना चलना है? पर्णकुटी कहाँ बनाओगे? सीता की आतुरता देखकर राम की आँखों से आँसू चू पड़ते हैं। कवि ने यहाँ बड़ा ही कौशल दिखलाया है। वह राम के मुख से कुछ उत्तर दिलवाता, तो उसमें वह रस नहीं आता जो राम के आँसुओं में आया है :

✓ पुर तें निकसी रघबीर बधू, धरि धीर दये मग में डग द्वै।
झलकीं भरि भाल कनी जल कीं, पट्ट सूखि गये मधुराधर वै॥
फिरि बूझति हैं 'चलनो अब केतिक, पर्नकुटी करिहौ कित ह्वै'।
तिय की लखि आतुरता पिय की अँखियाँ अति चारु चली जल च्वै॥

हनुमान ने लंका में आग लगा दी। उसके वर्णन में तुलसीदास ने लंका-निवासियों की जो व्याकुलता प्रकट की है, वह उनकी बहुज्ञता का एक सुन्दर प्रमाण है :

जहाँ तहाँ बबक बिलोकि बबकारी देत
"जरत निकेत धाओ धाओ लागि आगि रे।
कहाँ तात,मात,भ्रात, भगिनी, भामिनी,भाभी,
ढाटे छोटे छोहरा अभागे भोरे भागि रे॥
हाथी छोरो, घोरा छोरो, महिप बृषभ छोरो,
छेरि छोरो, सोवै सो जगावो जागि-जागि रे।"
तुलसी बिलोकि अकुलानी जातुधानी कहैं,
"बार-बार कह्यो पिय कपि सों न लागि रे"॥

रानी अकुलानी सब डाढ़त परानी जाहिं,
सकैं ना विलोकि बेष केसरीकुमार को।
मींजि मींजि हाथ, धनि माथ दसमाथ तिय,
तुलसी तिलौ न भयो बाहिर अगार को॥
सब असबाब डाढ़ो, मैं न काढ़ो तैं न काढ़ो,
जिय की परी सँभार, सहन भँडार को।
खीझति मँदोवै सविषाद देखि मेघनाद,
"बयो लुनियत सब याही दाढ़ीजार को"॥
हाट, बाट, कोट, ओट, अट्टिन, अगार, पौरि,
खोरि-खोरि दौरि-दौरि दीन्ही अति आगि है।
आरत पुकारत, सँभारत न कोउ काहू,
व्याकुल जहाँ सो तहाँ लोग चले भागि है॥
बालधी फिरावै बार-बार झहरावै झरैं,
बूँदिया सी, लङ्क पघिलाइ पाग-पागि है।
तुलसी विलोकि अकुलानी जातुधानी कहै,
"चित्रहू के कपि सों निसाचर न लागि है"॥
"लागि-लागि आगि" भागि-भागि चले जहाँ तहाँ,
धीय को न माय, बाप पूत न सँभारही।
छूटे बार, बसन उघारे, धूम धुन्ध अंध,
कहै बारे बूढ़े 'बारि-बारि' बार-बार हीं॥
हय हिहिनात भागे जात, घहरात गज,
भारी भीर ठेलि-पेलि रौंदि-खौंदि डारही।
नाम लै चिलात, बिललात अकुलात अति,
"तात तात! तौसियत, झौंसियत झारही"॥
वीथिका बजार प्रति, अटनि अगार प्रति,
पँवरि पगार प्रति बानर विलोकिये।
अध ऊर्ध्व बानर, विदिसि दिसि बानर है,
मानहु रह्यो है भरि बानर तिलोकिये॥
मूँदे आँखि हीय में, उघारे आँखि आगे ठाढ़ो,
धाइ जाइ जहाँ-तहाँ और कोऊ को किये?
'लेहु अब लेहु, तब कोऊ न सिखायो मानो,
सोई सतराइ जाइ जाहि-जाहि रोकिये'॥

एक करै धौज, एक कहै काढ़ो सौंज,
एक औंजि पानी पी कै कहै 'बनत न आवनो'।
एक परे गाढ़े, एक डाढ़त ही काढ़े, एक
देखत हैं ठाढ़े, कहैं 'पावक भयावनो'॥
तुलसी कहत एक 'नीके हाथ लाये कपि,
अजहूँ न छाँड़ै बाल गाल को बजावनो'।
'धाओ रे, बुझाओ रे कि बावरे हौ रावरे, या
औरै आगि लागी, न बुझावै सिंधु सावनो'॥

हनुमान के युद्ध का वर्णन तुलसीदास ने बड़े वीरता-व्यञ्जक शब्दों में किया है :

कतहुँ विटप भूधर उपारि परसेन वरक्खत।
कतहुँ बाजि सों बाजि, मर्दि गजराज करक्खत॥
चरन चोट चटकन चकोट अरि उर सिर वज्जत।
बिकट कटक बिद्दरत बीर वारिद जिमि गज्जत॥
लंगूर लपेटत पटकि भट,'जयति राम जय' उच्चरत।
तुलसीस पवननंदन अटल जुद्ध क्रुद्ध कौतुक करत॥

युद्ध की भीषणता का वर्णन करते हुए तुलसीदास ने वीभत्स रस का कैसा सचित्र कर दिया है :

लोथिन सों लोहू के प्रबाह चले जहाँ-तहाँ,
मानहु गिरिन गेरु झरना झरत हैं।
सोनित सरित घोर, कुञ्जर करारे भोर,
कूल तें समूल बाजि बिटप परत हैं॥
सुभट सरीर नीरचारी भारी-भारी तहाँ,
सूरनि उछाह, कूर कादर डरत हैं।
फेकरि-फेकरि फेरु फारि-फारि पेट खात,
काक कंक बालक कोलाहल करत हैं॥
ओझरी की झोरी काँधे, आँतिन की सेल्ही बाँधे,
मूँड़ के कमंडलु, खपर किये कोरि कै।
जोगिनी झुटुङ्ग झुण्ड-झुण्ड बनी तापसी-सी,
तीर-तीर बैठी सो समरसरि खोरि कै॥
सोनित सों सानि-सानि गूदा खात सतुआ से,
प्रेत एक पियत बहोरि घोरि-घोरि कै।

तुलसी बैताल भूत साथ लिये भूतनाथ,
हेरि-हेरि हँसत हैं हाथ-हाथ जोरि कै ॥

अपने विषय में तुलसीदास राम से कहते हैं :

छार ते सँवारि कै पहार हू तें भारो कियो,
गारो भयो पंच में पुनीत पच्छ पाइकै ।
हौं तो जैसो तव तैसो अव, अधमाई कै-कै,
पेट भरौं राम रावरोई गुन गाइकै ॥
आपने निवाजे की पै कीजै लाज, महाराज !
मेरी ओर हेरिकै न बैठिए रिसाइकै ।
पालिकै कृपालु व्याल-बाल को न मारिए,
औ काटिए न, नाथ ! विपहू को रूख लाइकै ॥

जाति के, सुजाति के, कुजाति के, पेटागि-वस,
खाए टूक सबके विदित बात दुनी सो ।
मानस वचन काय किये पाप सति भाय,
राम को कहाय दास दगावाज पुनी सो ॥
रामनाम को प्रभाउ, पाउ महिमा प्रताप,
तुलसी से जग मानियत महामुनी सो ।
अतिही अभागो अनुरागत न रामपद,
मूढ़ एतो बड़ो अचरज देखि सुनी सो ॥

जायो कुल मंगन, बधावनो बजायो सुनि,
भयो परिताप पाप जननी जनक को ।
बारें तें ललात बिललात द्वार-द्वार दीन,
जानत हो चारि फल चारि ही चनक को ॥
तुलसी सो साहिब समर्थ को सुसेवक है,
सुनत सिहात सोच विधिहू गनक को ।
नाम, राम ! रावरो सयानो किधौं बावरो,
जो करत गिरी तें गरु तृन तें तनक को ॥

अपनी बाहु-वेदना से व्यथित होकर तुलसीदास हनुमानजी को उलाहना देते हैं :

आपने ही पाप तें त्रिताप तें, कि साप तें,
बढ़ी है बाहु-वेदन, कही न सहि जाति है ।

औषध अनेक जंत्र-मंत्र-टोटकादि किये,
बादि भए देवता, मनाए अधिकाति है ॥
करतार, भरतार, हरतार, कर्म, काल,
को है जग-जाल जो न मानत इताति है।
चेरो तेरो तुलसी 'तू मेरो' कह्यो रामदूत,
ढील तेरी, वीर, मोहिं पीर तें पिराति है ॥

राम के कर की विशेषता बतलाने के लिए तुलसीदास ने बड़े ही सुन्दर शब्दों में यह रूपक बाँधा है :

कनककुधर केदार बीज सुन्दर सुरमुनिवर।
सींचि कामधुक धेनु सुधामय पय बिसुद्धतर ॥
तीरथपति अंकुर सरूप यच्छेस रच्छ तेहि।
मरकतमय साखा सुपत्र मंजरिय लच्छ जेहि ॥
कैवल्य सकल फल कलपतरु सुभ सुभाव सब सुख बरिस।
कह तुलसिदास रघुवंसमनि तौ कि होहि तुव कर सरिस ॥

तुलसीदास के नीति के ये वचन अनुभव के प्राण से अनुप्राणित हो रहे हैं :

जाय सो सुभट समर्थ पाइ रन रारि न मंडै।
जाय सो जती कहाय विषय वासना न छंडै ॥
जाय धनिक बिनु दान जाय निर्धन बिनु धर्महिं।
जाय सो पंडित पढ़ि पुरान जो रत न सुकर्महिं।
सुत जाय मातु-पितु भक्ति बिनु सो जाइ जेहि पति न हित।
सब जाय दास तुलसी कहैं जो न राम-पद नेह नित ॥
को न क्रोध निरदह्यो, काम वस केहि नहिं कीन्हों ?
को न लोभ दृढ़ फन्द बाँधि आसन करि दीन्हों ?
कौन हृदय नहिं लाग कठिन अति नारि नयनसर ?
लोचनजुत नहिं अन्ध भयो श्री पाय कौन नर ?
सुर नाग लोक महिं मण्डलहु को जु मोह कीन्हों जय न ?
कह तुलसिदास सो ऊबरै जेहि राम राम राजिवनयन ॥

अपने समय के मिथ्याडम्बर वाले भक्तों का सच्चा चित्र तुलसीदास ने इन शब्दों में खींचा है :

भेप सुबनाइ सुचि वचन कहैं चुवाइ
जाइ तौ न जरनि धरनि धन धाम की।

कोटिक उपाय करि लालि पालियत देह
मुख कहियत गति राम ही के नाम की ॥
प्रगटैं उपासना दुरावैं दुरवासनाहि
मानस निवासभूमि लोभ मोह काम की ।
राग रोष ईरषा कपट कुटिलाई भरे
तुलसी से भगत भगति चहैं राम की ॥

आजकल भी ऐसे भक्तों की कमी नहीं है ।

प्रह्लाद के प्रेम का वर्णन तुलसीदास ने बड़ी ही भावुकता से किया है :

आरतपालु कृपालु जो राम, जेही सुमिरे तेहि को तहँ ठाढ़े ।
नाम प्रताप महा महिमा, अकरे किये खोटेउ, छोटेउ वाढ़े ॥
सेवक एक तें एक अनेक भये तुलसी तिहुँ ताप न डाढ़े ।
प्रेम वदौं प्रहलादहि को जिन पाहन तें परमेश्वर काढ़े ॥
काढ़ि कृपान, कृपा न कहूँ, पितु काल कराल विलोकि न भागे ।
'राम कहाँ' 'सब ठाँउ है' 'खंभ में'? 'हाँ' सुनि हांक नृकेहरि जागे ॥
वैरी विदारि भये विकराल, कहे प्रहलादहि के अनुरागे ।
प्रीति प्रतीति वढ़ी तुलसी तवतें सव पाहन पूजन लागे ॥
अन्तर्जामिहु तें वड़ वाहरजामि हैं राम, जे नाम लिये तें ।
धावत धेनु पन्हाइ लवाइ ज्यों वालक वोलनि कान किये तें ॥
आपनि बूझि कहै तुलसी, कहिये की न वावरि वात विये तें ।
पैंज परे प्रहलादहु को प्रगटे प्रभु पाहन तें, न हिये तें ॥

शब्दालङ्कार की शोभा इस छन्द में देखिये :

भूतनाथ भय हरन, भीम भय भवन भूमिधर ।
भानुमन्त भगवन्त, भूति भूपन भुजंगवर ॥
भव्य भाव वल्लभ, भवेस भवभार विभंजन ।
भूरि भोग भैरव कुजोग गञ्जन जन रञ्जन ॥
भारती वदन, विपअदन सिव. ससि पतंग पावक नयन ।
कह तुलसिदास किन भजसि मन भद्रसदन मर्दनमयन ॥

गीतावली

'गीतावली' तुलसीदास के स्फुट गीतों का संग्रह है । इसका एक नाम 'पदावली' भी है । यह भी 'मानस' की तरह सात कांडों में विभाजित है । कांड के अनुसार सम्पूर्ण पदों की संख्या इस प्रकार है—

बाल-कांड	१०८
अयोध्या-कांड	८९
अरण्य-कांड	१७
किष्किधा-कांड	२
सुन्दर-कांड	५१
लङ्का-कांड	२३
उत्तर-कांड	३८
	३२८

'गीतावली' की कविता बड़ी ही ललित है। कथा की दृष्टि से इसकी रचना 'वाल्मीकि रामायण' के आधार पर हुई है। इससे कहीं-कहीं 'मानस' और इसकी कथा में अन्तर आ गया है।

इसकी भाषा मँजी हुई और भाव-प्रवण है। तुलसीदास ने इसमें बड़ा ही अद्भुत कवि-कौशल दिखलाया है। इसमें राम के वन जाने पर कौशल्या की मनोदशा का बड़ा ही करुण वर्णन है, जो 'मानस' में नहीं है। सीता के वनवास की कथा भी इसमें दी गई है, जो 'मानस' में नहीं है।

'गीतावली' के गीत गाने के लिए रचे गए हैं। इससे स्वर और लय का अधिक मधुर बनाने वाले शब्दों के सहयोग से तुलसीदास ने प्रत्येक पद में रस भरकर वर्षा की है। यहाँ कुछ उदाहरण दिये जाते हैं—

राम के रूप-वर्णन में उत्प्रेक्षा का आनन्द लीजिये :

प्रातकाल रघुवीर वदन छवि चितै चतुर चित मेरे।
होहिं विवेक बिलोचन निर्मल सुफल सुसीतल तेरे॥
भाल बिसाल बिकट भृकुटी विच तिलक रेख रुचि राजै।
मनहुँ मदन तम तकि मरकत धनु जुगुल कलक सर साजै॥
रुचिर पलक लोचन जग तारक स्याम अरुन सित कोये।
जनु अलि नलिन कोस महँ वंधुक सुमन सेज सजि सोये॥
विलुलित ललित कपोलनि पर कच मेचक कुटिल सुहाये।
मनो विधु महँ वनरुह बिलोकि अलि विपुल सकौतुक आये॥
सोभित स्रवन कनक कुण्डल कल लम्बित बिवि भुजमूले।
मनहुँ केकि तकि गहन चहत जुग उरग इन्दु प्रतिकूले॥
अधर अरुन तर दसन पाँति वर मधुर मनोहर हासा।
मनहुँ सोन सरसिज महँ कुलिसनि तड़ित सहित कृत वासा॥

चारु चिबुक सुक तुण्ड विनिंदक सुभग सुउन्नत नासा।
तुलसिदास छविधाम राममख सुखद समन भवत्रासा॥

शब्दालंकार से जगमगाते हुए इस मधुर गीत को पढ़िये :

देख सखि आजु रघुनाथ सोभा वनी।
नील नीरद वरन वपुप, भुवनाभरन,
पीत अम्बर धरन हरन दुति दामिनी॥
सरजु मज्जन किये, संग सज्जन लिये,
हेतु जन पर हिये, कृपा कोमल घनी।
सजनि आवत भवन, मत गजवर गवन,
लंक मृगपति ठवनि, कुँवर कोसलधनी॥
सघन चिक्कन कुटिर चिकुर विलुलित मृदुल,
करनि विवरत चतुर सरस सुपमा जनी।
ललित अहि सिसु निकर मनहुँ ससि सन समर,
लरत, धरहरि करत रुचिर जनु जुग फनी॥
भाल भ्राजत तिलक, जलज लोचन, पलक
चारु भ्रू नासिका सुभग सुक आननी।
चिवुक सुन्दर, अधर अरुन, द्विज दुति सुघर,
वचन गम्भीर, मृदुहास भव भाननी॥
स्रवन कुण्डल, विमल गण्ड मंडित चपल,
कलित कल कांति अति भाँति कछु तिन्ह तनी।
जुगल कंचन मकर मनहुँ विधुकर मधुर,
पियत पहिचानि करि सिंधुकीरति भनी॥
उरसि राजत पदिक, ज्योति रचना अधिक,
माल सुविसाल, चहुँ पास वनि गजमनी।
स्याम नव जलद पर निरखि दिनकर कला,
कौतुकी मनहुँ रही घेरि उडुगन अनी।
मन्दिरनि पर खरी नारि आनँद भरी,
निरखि बरसहिं विपुल कुसुम कुंकुम कनी।
दास तुलसी राम परम करुनाधाम,
काम सत कोटि मद हरन छवि आपनी॥

अब उत्प्रेक्षाओं की और बहार देखिये :

आँगन फिरत घुटुरुवनि धाये।
नील जलद तनु स्याम राम सिसु जननि निरखि मुख निकट बोलाये॥
बन्धुक सुमन अरुन पद-पङ्कज अंकुस प्रमुख चिह्न बनि आये।
नूपुर जनु मुनिवर कलहंसनि रचे नीड़ दै बाँह बसाये॥
कटि मेखल, बर हार, ग्रीव दर, रुचिर बाँह भूषन पहराये।
उर श्रीवत्स मनोहर हरिनख हेम मध्य मनिगन बहु लाये॥
सुभग चिबुक द्विज अधर नासिका बन कपोल मोहीं अति भाये।
भ्रू सुन्दर करुनारस पूरन, लोचन मनहुँ जुगल जल जाये॥
भाल बिसाल ललित लटकन वर, बाल दसा के चिकुर सोहाये।
मनु दोउ गुरु सनि कुज आगे करि ससिहि मिलन तम के गन आये॥
उपमा एक अभूत भई तब जब जननी पट पीत ओढ़ाये।
नील जलद पर उडुगन निरखत तजि सुभाव मनो तड़ित छपाये॥
अंग अंग पर मार निकर मिलि छवि समूह लैलै जनु छाये।
तुलसिदास रघुनाथ रूप गुन तौ कहौं जो विधि होहिं बनाये॥

राम वन जाने के लिए तैयार होकर पिता से आज्ञा माँग रहे हैं। उस समय का चित्र तुलसीदास ने इन शब्दों में खींचा है :

मोको विधुवदन विलोकन दीजै ?
राम लषन मेरी यहै भेंट, बलि जाउँ जहाँ मोहिं मिलि लीजै।
सुनि पितु वचन चरन गहे रघुपति, भूप अंक भरि लीन्हें।
अजहुँ अवनि विदरत दरार मिस सो अवसर सुधि कीन्हें॥
पुनि सिर नाइ गवन कियो प्रभु, मुरछित भयो भूप न जाग्यो।
करम चोर नृप पथिक मारि मानो राम रतन लै भाग्यो॥
तुलसी रविकुल रवि रथ चढ़ि चले तकि दिसि दखिन सुहाई।
लोग नलिन भए मलिन अवध सर, विरह विषम हिम पाई॥

उस समय कौशल्या का विलाप सुनकर कौन सा हृदय है, जो न रो देगा ?

राम ! हौं कौन जतन घर रहिहौं ?
बार-बार भरि अंक गोद लै ललन कौन सों कहिहौं॥
इहि आँगन विहरत मेरे बारे ! तुम जो संग सिसु लीन्हें।
कैसे प्रान रहत सुमिरत सुत बहु विनोद तुम्ह कीन्हें॥
जिन्ह स्रवननि कल बचन तिहारे सुनि-सुनि हौं अनुरागी।
तिन्ह स्रवननि बन-गवन सुनति हौं, मो तें कौन अभागी ?

जुग सम निमिष जाहिं रघुनंदन वदन कमल बिनु देखे ।
जौ तनु रहै बरस बीते, बलि, कहा प्रीति इहि लेखे ?
तुलसीदास प्रेमवस श्रीहरि देखि विकल महतारी ।
गदगद कंठ, नयन जल, फिरि-फिरि आवन कह्यो मुरारी ॥

राम के वन जाने पर कौशल्या की जो दशा हुई, उसके वर्णन के वहाने मातृ-हीन तुलसीदास ने इस पद में प्रत्येक माता का हृदय काढ़कर रख दिया है :

जननी निरखति बान धनुहियाँ ।
बार-बार उर नैननि लावति प्रभुजू की ललित पनहियाँ ॥
कबहुँ प्रथम ज्यों जाइ जगावति कहि प्रिय वचन सवारे ।
उठहु तात ! बलि मातु वदन पर, अनुज सखा सब द्वारे ॥
कबहुँ कहति यों "बड़ी बार भइ जाहु भूप पहँ, भैया ।
बंधु बोलि जेइय जो भावै गई निछावरि मैया ॥"
कबहुँ समझि वन-गवन राम को रहि चकि चित्र लिखी-सी ।
तुलसिदास वह समय कहे तें लागति प्रीति-सिखी-सी ॥

× × ×

जब-जब भवन बिलोकति सूनो ।
तब-तब विकल होति कौसल्या दिन-दिन प्रति दुख दूनो ।
सुमिरत बाल-विनोद राम के सुन्दर मुनि मनहारी ।
होत हृदय अति सूल समुझि पद-पंकज अजिर बिहारी ॥
को अब प्रात कलेऊ माँगत रुठि चलैगो, माई !
स्याम तामरस नैन स्रवत जल काहि लेउँ उर लाई ॥
जीवौं तौ विपति सहौं निसि-वासर मरौं तो मन पछितायो ।
चलत विपिन भरि नयन राम को वदन न देखन पायो ॥
तुलसिदास यह दुसह दसा अति दारुन विरह घनेरो ।
दूरि करै को भूरि कृपा बिनु सोक-जनित रुज मेरो ? ॥

वनवासी राम के विरह से व्यथित उनके घोड़ों की अन्तर्वेदना की कल्पना तुलसीदास को कवि समाज में बहुत ऊँचा उठा देती है :

आली ! हौं इन्हहिं बुझावौं कैसे ?
लेत हिये भरि-भरि पति को हित मातु हेतु सुत जैसे ॥
बार-बार हिहिनात हेरि उत जो बोलै कोउ द्वारे ।
अंग लगाइ लिये बारे तें करुनामय सुत प्यारे ॥

लोचन सजल, सदा सोवत से, खान-पान बिसराये।
चितवत चौंकि नाम सुनि सोचन राम सुरति उर आये॥
तुलसी प्रभु के विरह वधिक हठि राजहंस से जोरे।
ऐसेहु दुखित देखि हौं जीवति राम-लषन के घोरे॥

× ×

राघौ ! एक वार फिरि आवौ।
ए वर वाजि विलोकि आपने वहुरो वनहिं सिधावौ॥
जे पय प्याइ पोखि कर पंकज वार-वार चुचुकारे।
क्यों जीवहिं, मेरे राम लाड़िले! ते अव निपट विसारे॥
भरत सौगुनी सार करत हैं अति प्रिय जानि तिहारे।
तदपि दिनहिं-दिन होत झाँवरे मनहुँ कमल हिम मारे॥
सुनहु पथिक! जो राम मिलहिं वन कहियो मातु सँदेसो।
तुलसी मोहिं और सवहिन तें इन्हको वड़ो अँदेसो॥

त्रिजटा से सीता अपने मन की दशा कह रही हैं :

अवलौ मैं तोसों न कहे री।
सुन त्रिजटा ! प्रिय प्राननाथ विनु वासर निसि दुख दुसह सहे री॥
बिरह बिषम विप वेलि वढ़ी उर, ते सुख सकल सुभाय दहे री।
सोइ सींचिवे लागि मनसिज के रहँट नयन नित रहत रहे री॥
सर सरीर सूखे प्रान वारि चर जीवन आस तजि चलनु चहे री।
तैं प्रभु सुजस सुधा सीतल करि राखे तदपि न तृप्ति लहे री॥
रिपु रिस घोर नदी विवेक वल, धीर सहित हुते जात वहे री।
है मुद्रिका टेक तेहि अवसर, सुचि समीरसुत पैर गहे री॥
तुलसिदास सव सोच पोच मृग मन कानन भरि पूरि रहे री।
अव सखि सिय सँदेह परिहरु हिय आइ गये दोउ वीर अहेरी॥

सीता हनुमान से कहती हैं :

तात ! तोहूँ सों कहत होति हिये गलानि।
मन को प्रथम पन समुझि अछत तनु
लखि नइ गति भइ मति मलानि।
प्रिय को वचन परिहरचो जिय के भरोसे,
संग चली वन वड़ो लाभ जानि॥
पीतम विरह तौ सनेह सरवसु, सुत !
औसर को चूकिवो सरिस न हानि।

आरज सुवन के तो दया दुवनहुँ पर,
मोहि सोच मोनें सब विधि नसानि ॥
आपनी भलाई भलो कियो नाथ सबही को,
मेरे ही दिन सब विसरी बानि ।
नेम तो पपीहा ही के, प्रेम प्यारो मीन ही के,
तुलसी कही है नीके हृदय आनि ॥

हनुमान ने आकर सीता की दशा का वर्णन राम से इस प्रकार किया :

सुनहु राम बिस्रामधाम ! हरि जनकसुता अति बिपति जैसे सहति ।
है सौमित्र बन्धु करुनानिधि मन महँ रटति प्रगट नहिं कहति ॥
निजपद जलज बिलोकि सो करत नयननि बारि रहत न एक छन ।
मनहुँ नील नीरज ससि संभव रवि वियोग दोउ स्रवत सुधाकन ॥
बहु राक्षसी सहित तरु के तर तुम्हरे बिरह निज जनम बिगोवति ।
मनहुँ दुष्ट इन्द्रिय संकट महँ बुद्धि बिवेक उदय मगु जोवति ॥
सुनि कपि बचन बिचारि हृदय हरि अनपायनी सदा सो एकमन ।
तुलसिदास दुख सुखातीत हरि सोच करत मानहुँ प्राकृत जन ॥

विभीषण से राम अपने स्वभाव का मर्म कहते हैं :

सत्य कहौं मेरो सहज सुभाउ ।
सुनहु सखा कपिपति लंकापति तुम्हसन कौन दुराउ ॥
सब बिधि हीन दीन अति जड़मति जाको कतहुँ न ठाउँ ।
आयो सरन भजौं न तजौं तिहि यह जानत ऋषिराउ ॥
जिन्हके हौं हित सब प्रकार चित नाहिन और उपाउ ।
तिनहिं लागि धरि देह करौं सब डरौं न सुजस नसाउ ॥
पुनि-पुनि भुजा उठाइ कहत हौं सकल सभा पतिआउ ।
नहि कोऊ प्रिय मोहि दास सम कपट प्रीति बहि जाउ ॥
सुनि रघुपति के बचन बिभीषन प्रेम मगन मन चाउ ।
तुलसिदास तजि आस त्रास सब ऐसे प्रभु कहँ गाउ ॥

हनुमान संजीवन-मूल लेकर लौट रहे थे, तब उनको अयोध्या में उतरना पड़ा था। उनके मुख से लक्ष्मण के आहत होने का समाचार पाकर वीर माता सुमित्रा ने जो उत्तेजना प्रकट की थी, वह लक्ष्मण-जैसे तेजस्वी पुत्र की माता के उपयुक्त ही थी :

सुनि रन घायल लखन परे हैं ।
स्वामि काज संग्राम सुभट सों लोहे ललकारि लरे हैं ।

सुवन सोक सन्तोष सुमित्रहिं रघुपति भगति वरे हैं॥
छिन-छिन गात सुखात छिनहिं छिन हुलसत होत हरे हैं॥
कपि सों कहति सुभाय अंवके अंवक अंवु भरे हैं।
रघुनन्दन विनु वन्धु कुअवसर जद्यपि धनु दुसरे हैं॥
तात जाहु कपि संग रिपुदमन उठि कर जोरि खरे हैं।
प्रमुदित पुलकि पैंत पूरे जनु विधिवस सुढर ढरे हैं॥
अंव अनुज गति लखि पवनज भरतादि गलानि गरे हैं।
तुलसी सव समुझाइ मातु तेहि समय सचेत करे हैं॥

लक्ष्मण को शक्ति लगी थी। औषधोपचार से वे अच्छे हुए। होश में आने पर उन्होंने जो हृदयोद्गार प्रकट किये हैं, उन्हें इस छन्द में गूंथकर तुलसीदास महान् हो गए हैं :

हृदय घाउ मेरे, पीर रघुवीरै।
पाइ सजीवन जागि कहत यों प्रेम-पुलकि विसराय सरीरै॥
मोहिं कहा वूझत पुनि-पुनि जैसे पाठ अरथ चरचा कीरै।
सोभा सुख छति लाहु भूप कहँ केवल कान्ति मोल हीरै॥
तुलसी सुनि सौमित्र वचन सव धरि न सकत धीरौ धीरै।
उपमा-राम लपन की प्रीति को क्यों दीजै खीरै नीरै॥

वनवास की अवधि समाप्त हो गई है। राम के लिए कौशल्या का और लक्ष्मण के लिए सुमित्रा का हृदय उमड़ रहा है। उस समय की उनकी स्वाभाविक दशा का वर्णन कवि ने वड़ी ही मार्मिकता से किया है :

वैठी सगुन मनावति माता।
कव ऐहैं मेरे वाल कुसल घर करहु काग फुरि वाता॥
दूध भात की दोनी दैहौं सोने चोंच मढ़ैहौं।
जव सिय सहित विलोकि नयन भरि राम लपन उर लैहौं॥
अवधि समीप जानि जननी जिय अति आतुर अकुलानी।
गनक वोलाइ पाँय परि पूछति प्रेम मगन मृदु वानी॥
तेहि अवसर कोउ भरत निकट तें समाचार लै आयो।
प्रभु आगमन सुनत तुलसी मनो मीन मरत जल पायो॥

भरत के उज्ज्वल चरित का यह अन्तिम चित्र है, जिससे तुलसीदास ने 'गीतावली' को अलंकृत कर दिया है :

कैकेई जौ लौं जियति रही।
तौ लौं वात मातु सों मुँह भरि भरत न भूलि कही॥

मानी राम अधिक जननी तें जननिहु गँस न गही।
सीय लषन रिपुदवन-राम रुख लखि सबकी निवही ॥
लोक वेद मरजाद दोष गुन गति चित चखन चही।
तुलसी भरत समुझि सुनि राखी राम सनेहु सही ॥

वैराग्य-संदीपिनी

'वैराग्य-संदीपिनी' दोहे, चौपाइयाँ और सोरठे मिलाकर कुल ६२ छन्दों की एक पुस्तिका है। इसमें संत-मत का समर्थन किया गया है और स्पष्टतः यह उस समय की रचना है, जब तुलसीदास का झुकाव संत-मत की ओर रहा होगा। इसके कुछ उदाहरण यहाँ दिये जाते हैं :

रैनि को भूषन इन्दु है, दिवस को भूषन भानु।
दास को भूषन भक्ति है, भक्ति को भूषन ज्ञानु ॥
ज्ञान को भूषन ध्यान है, ध्यान को भूषन त्याग।
त्याग को भूषन शान्तिपद, तुलसी अमल अदाग ॥

× × ×

राग द्वेष की अगिनि बुझानी। काम-क्रोध-वासना नसानी ॥
तुलसी जबहिं सांति गृह आई। तब उर ही उर फिरी दोहाई ॥

अन्त में यह दोहा है :

यह विराग संदीपिनी, सुजन सुचित सुनि लेहु।
अनुचित बचन विचारिकै, जस सुधारि तस देहु ॥

दोहावली

दोहावली ५७३ दोहों का संग्रह है। इन दोहों में ७५ दोहे 'मानस' के, ३५ दोहे 'रामाज्ञा प्रश्न' के, १३२ दोहे 'तुलसी-सतसई' के और ७ दोहे 'वैराग्य-संदीपिनी' के मिले हुए हैं। यह स्वतन्त्र-ग्रन्थ नहीं कहा जा सकता। तुलसीदास की अन्य ग्रवलियों की तरह वह सात कांडों में विभाजित भी नहीं है। इसके कुछ चुने हुए दोहे यहाँ दिये जाते हैं :

रामहिं सुमिरत, रन भिरत, देत परत गुरु पाय।
तुलसी जिनहिं न पुलक तनु, ते जग जीवत जाय ॥१॥
तुलसी परिहरि हरि हरहि, पाँवर पूजहिं भूत।
अन्त फजीहत होहिंगे, गनिका के से पूत ॥२॥
प्रीति राम सों, नीतिपथ, चलिय राग रिस जीति।
तुलसी संतन के मते, इहै भगति की रीति ॥३॥

सेइ साधु गुरु समुझि, सिखि , रामभगति थिरताइ ।
लरिकाई को पैरिबौ , तुलसी बिसरि न जाइ ॥४॥
कहा बिभीषन लै मिलो , कहा बिगार्यो बालि? ।
तुलसी प्रभु सरनागतहि , सब दिन आए पालि ॥५॥
बलकल भूषन, फल असन , तृन सज्या, द्रुम प्रीति ।
तिन्ह समयन लंका दई , यह रघुबर की रीति ॥६॥
सभा सभासद निरखि पय , पकरि उठायो हाथ ।
तुलसी कियो इगारहों , बसन बेप जदुनाथ ॥७॥
सधन चोर मग मुदित मन , धनी गही ज्यों फेंट ।
त्यों सुग्रीव बिभीषनहिं , भई , भरत की भेंट ॥८॥
राम सराहे भरत उठि , मिले राम सम जानि ।
तदपि बिभीषन कीसपति , तुलसी गरत गलानि ॥९॥
कहिबे कहँ रसना रची , सुनिबे कहँ किय कान ।
धरिबे कहँ चित हित सहित , परमारथहि सुजान ॥१०॥
सीस उघारन किन कहेउ , बरजि रहे प्रिय लोग ।
घरही सती कहावती , जरती नाह वियोग ॥११॥
जनम पत्रिका बरति कै, देखहु मनहिं बिचार ।
दारुन बैरी मीचु कै, बीच बिराजति नारि ॥१२॥
केहि मग प्रविसति जाति केहि, कहु दर्पन में छाँह ।
तुलसी त्यों जग जीव गति, करी जीव के नाँह ॥१३॥
सुलभ प्रीति प्रीतम सबै, कहत करत सब कोइ ।
तुलसी मीन पुनीत ते, त्रिभुवन बड़ो न कोइ ॥१४॥
सदा न जे सुमिरत रहहिं, मिलि न कहहिं प्रिय बैन ।
तेपै तिन्हके जाहिं घर, जिनके हिये न नैन ॥१५॥
मनि भाजन मधु पारई, पूरन अमी निहारि ।
का छाँड़िय का संग्रहिय, कहहु बिबेक बिचारि ॥१६॥
उत्तम मध्यम नीच गति, पाहन सिकता पानि ।
प्रीति परिच्छा तिहुँन की, बैर बितिक्रम जानि ॥१७॥
जासु भरोसे सोइये, राखि गोद में सीस ।
तुलसी तासु कुचाल तें, रखवारो जगदीस ॥१८॥
कौरव पांडव जानिये, क्रोध छमा के सीम ।
पाँचहि मारि न सौ सके, सयो सँहारे भीम ॥१९॥

जो परि पाय मनाइये, तासों रूठि विचारि।
तुलसी तहाँ न जीतिये, जहँ जीतेहू हारि ॥२०॥
जा रिपु सों हारेहु हँसी, जिते पाप परिताप।
तासों रारि निवारिये, समय सँभारिय आपु ॥२१॥
रोष न रसना खोलिये, वरु खोलिय तरवारि।
सुनत मधुर परिनाम हित, बोलिय वचन विचारि ॥२२॥
छिद्यो न तरुनि कटाछ सर, करेउ न कठिन सनेहु।
तुलसी तिनकी देह को, जगत कवच करि लेहु ॥२३॥
पेट न फूलत विनु कहे, कहत न लागै ढेर।
सुमति विचारे बोलिये, समुझि कुफेर सुफेर ॥२४॥
राम लपन विजयी भये, वनहु गरीबनिवाज।
मुखर बालि रावन गये, घर ही सहित समाज ॥२५॥
अतुलित महिमा वेद की, तुलसी किये विचार।
जो निंदत निंदित भयो, विदित बुद्ध अवतार ॥२६॥
तूठहिं निज रुचि काज करि, रूठहिं काज बिगारि।
तीय, तनय, सेवक, सखा, मन के कंटक चारि ॥२७॥
विनु आँखिन की पानही, पहिचानत लखि पाय।
चारि नयन के नारि नर, सूझत मीचु न माय ॥२८॥
जो सुनि समुझि अनीतिरत, जागत रहइ जु सोइ।
उपदेसिबो जगाइबो, तुलसी उचित न होइ ॥२९॥
वहु मुख, वहु रुचि, वहु वचन, वहु अचार व्यवहार।
इनको भलो मनाइबो, यह अज्ञान अपार ॥३०॥
लही आँखि कब आँधरे, बाँझ पूत कब ल्याइ।
कब कोढ़ी काया लही, जग बहराइज जाइ ॥३१॥
व्यालहु तें विकराल वड़, व्याल फेन जिय जानु।
वहि के खाए मरत है, वह खाये विन प्रानु ॥३२॥
माली भानु किसान सम, नीति निपुन नरपाल।
प्रजा भागवस होहिंगे, कबहुँ-कबहुँ कलिकाल ॥३३॥
बरपत हरपत लोग सब, करपत लखै न कोइ।
तुलसी प्रजा सुभाग ते, भूप भानु सो होइ ॥३४॥
घरनि धेनु चारिनु चरत, प्रजा सुवच्छ पेन्हाइ।
हाथ कछू नहिं लागिहै, किये गोड़ की गाइ ॥३५॥

काल तोपची, तुपक महि, दारू अनय कराल।
पाप पलीता, कठिन गुरु, गोला पुहुमीपाल ॥३६॥
सत्रु सयानो सलिल ज्यों, राख सीस रिपु नाउ।
बूड़त लखि पग डगत लखि, चपरि चहूँ दिसि धाउ ॥३७॥
लकड़ी डौआ करछुली, सरस काज अनुहारि।
सुप्रभु संग्रहहि परिहर्रहि, सेवक सखा विचारि ॥३८॥
सधन, सगुन, सधरम, सगन, सबल सुसाइँ महीप।
तुलसी जे अभिमान बिनु, ते त्रिभुवन के दीप ॥३९॥
तुलसी निज करतूति बिनु, मुकत जात जब कोइ।
गयो अजामिल लोक हरि, नाम सक्यो नहि धोइ ॥४०॥
आपन छोड़ो साथ जब, ता दिन हितू न कोइ।
तुलसी अंबुज अंबु बिन, तरन तासु रिपु होइ ॥४१॥
तुलसी तृन जल कूल को, निरधन, निपट निकाज।
कै राखै, कै सँग चलै, बाँह गहे की लाज ॥४२॥
साखी सबदी दोहरा, कहि किहनी उपखान।
भगति निरूपहिं भगत कलि, निंदहिं वेद पुरान ॥४३॥

'दोहावली' के अतिरिक्त तुलसीदास की एक अन्य रचना 'तुलसी-सतसई' के नाम से प्रसिद्ध है। स्वर्गीय पंडित सुधाकर द्विवेदी इस सतसई को तुलसीदास की रचना नहीं मानते। वे इसे गाजीपुर-निवासी किसी कायस्थ तुलसीदास की रचना मानते हैं।

पंडित बन्दन पाठक ने 'रामललानहछू' की टिप्पणी में तुलसीदास के बारह ही ग्रन्थों का उल्लेख किया है। जिसमें 'तुलसी- सतसई' गिनती में नहीं आती। 'तुलसी-सतसई' में दृष्टिकूट दोहे बहुत हैं, और फारसी के शब्दों का भी प्रचुर प्रयोग है। इससे अनुमान होता है कि या तो तुलसीदास ने अपने फारसी ज्ञान की छटा दिखलाने के लिए ऐसे दोहे रचे हैं, या वास्तव में यह किसी कायस्थ तुलसीदास की करामात है। नमूने के लिए यहां कुछ दोहे सतसई के भी दिये जाते हैं :

हरे चरहि तापहिं बरे, फरें पसारहि हाथ।
तुलसी स्वारथ मीत जग, परमारथ रघुनाथ ॥१॥
तुलसी राम भरोस थिर, लिये पाप धरि मोट।
ज्यों व्यभिचारी नारि कहँ, बड़ी खसम की ओट ॥२॥

दुगुने तिगुने चौगुने, पंच, षष्ठ औ सात।
आठौं ते पुनि नौ गुने, नौ के नौ रहि जात ॥३॥
तुलसी राम सनेह करु, त्यागु सकल उपचार।
जसे घटत न अंक नव, नव कर लिखत पहार ॥४॥
यद्यपि अवनि अनेक सुख, तोय तामरस ताल।
संतत तुलसी मानसर, तदपि न तजहिं मराल ॥५॥
रावन रावन को हन्यो, दोष राम कहँ नाहिं।
निजहित अनहित देखु किन, तुलसी आपहिं माहिं ॥६॥
इत कुल की करनी तजे, उत न भजे भगवान्।
तुलसी अधवर के भये, ज्यों बघूर को पान ॥७॥
गुरु करिबो सिद्धान्त यह, होय जथारथ बोध।
अनुचित उचित लखाय उर, तुलसी मिटै विरोध ॥८॥
रहैं जहाँ विचरैं तहां, कमी कहूँ कुछ नाहिं।
तुलसी तहँ आनन्द सँग, जात यथा सँग छाहिं ॥९॥
राग रोष गुण दोष को, साखी हृदय सरोज।
तुलसी विकसत मित्र लखि, सकुचत देखि मनोज ॥१०॥

पार्वती-मङ्गल

'पार्वती-मंगल' की रचना 'जय' नामक संवत् में हुई, जैसा कि 'पार्वती-मंगल' के पाँचवें छन्द में तुलसीदास ने स्वयं लिखा है :

जय संवत फागुन सुदि पाँचै गुरु दिनु।
अस्विनी विरचेउँ मंगल सुनि सुख छिनु-छिनु ॥

संवत् १६४३ में फागुन सुदी पंचमी को बृहस्पतिवार पड़ा था और उस संवत् का नाम 'जय' था।

'पार्वती-मंगल' को प्रारम्भ करने से पहले तुलसीदास ने 'रामचरितमानस' को अवश्य ही समाप्त कर लिया होगा। यह बात केवल इसी अनुमान पर अवलम्बित नहीं है कि 'रामचरितमानस'-ऐसा महत्त्वपूर्ण विशालकाय काव्य रचते समय तुलसीदास ने अपना ध्यान छोटे-मोटे चुटकुलों की ओर न बहकने दिया होगा; बल्कि 'पार्वती-मंगल' की वर्णन-शैली और उसका प्रसाद-गुण इस बात का द्योतक है कि तुलसीदास उस समय किसी बड़े काम से खाली ही नहीं थे, बल्कि सरल और कवित्वपूर्ण पद्य-रचना में अभ्यस्त भी हो गए थे। 'पार्वती-मंगल' केवल १६४ छन्दों की एक पुस्तिका है, पर उसका एक भी छन्द शिथिल नहीं, उसकी एक भी पंक्ति भरती की नहीं, उसका एक भी शब्द

स्थानान्तरित नहीं किया जा सकता। ऐसे छोटे काव्य में कवि की यह सचमुच बहुत बड़ी सफलता है।

'पार्वती-मंगल' का विषय शिव-पार्वती का विवाह है। 'रामचरितमानस' में भी यह प्रसंग आया है। 'मानस' की छाया 'पार्वती-मंगल' में सर्वत्र विद्यमान है। जैसे :

रामचरितमानस

पुनि परिहरे सुखानेउ परना। उमहि नाम तब भयउ अपरना॥

पार्वती-मंगल

नाम अपरना भयउ परन जब परिहरे।

रामचरितमानस

अब सुख सोवत सोंच नहिं, भीख माँगि भव खाहिं।

पार्वती-मंगल

भीख माँगि भव खाहिं, चिता नित सोवहि।

रामचरितमानस

बर अनुहारि बरात न भाई।

पार्वती-मंगल

बर अनुहरति बरात बनी हरि हँसि कहा।

इसी प्रकार कहीं-कहीं तो 'मानस' के आधे या पूरे चरण-के-चरण उठाकर 'मंगल' में रख दिये गए हैं। इससे स्पष्ट है कि 'पार्वती-मंगल' की रचना के पहले तुलसीदास 'रामचरितमानस' को समाप्त कर चुके थे।

'पार्वती-मंगल' के कथानक में 'मानस' के कथानक से अन्तर है। 'मानस' में काम-दहन का एक लम्बा वर्णन है, 'पार्वती-मंगल' में एक ही छन्द में उसका काम तमाम कर दिया गया है :

वामदेव सन काम वाम होइ बरतेउ।
जय जग मद निदरेसि हर पायसि फर तेउ॥

मानस में शिव का विवाह उनके असली रूप ही में कराया गया है, पर 'पार्वती-मंगल' में शिव ने अपना वेश बहुत सुन्दर बना लिया था।

'पार्वती-मंगल' में विवाह की अनेक रस्मों की भी चर्चा है, जो 'मानस' में नहीं हैं। जैसे :

मदनमत्त गजगवनि चली वर परिछन।

× ×

साखोच्चार समय सब सुर मुनि बिहँसहिं।

× ×

दूलह दुलहिन गे तव हास अवासहिं।
× ×
जुवा खेलावत गारि देहिं गिरिनारिहिं।
× +
सनमाने सुर सकल दीन्ह पहिरावनि।

'पार्वती-मंगल' की रचना तुलसीदास ने केवल स्त्री-समाज के कल्याण के लिए की है। सती-शिरोमणि पार्वती के आदर्श को वे प्रत्येक हिन्दू-गृहस्थ के घर में पहुँचा देने को अत्यन्त आतुर जान पड़ते थे। इसी से उन्होंने 'पार्वती-मंगल' की रचना भी ऐसे छन्द में की है, जो विवाह के अवसर पर गाया जाता है।

'पार्वती-मंगल' में तुलसीदास ने स्थान-स्थान पर उपमाएँ भी बड़ी अनोखी दी हैं। जैसे :

साँच सनेह साँच रुचि जो हठि फेरइ।
सावन सरित सिंधु रुख सूप सों घेरइ॥
× ×
कहहु काह पटतरिअ गौरि गुन रूपहि।
सिंधु कहिअ केहि भाँति सरित सर कूपहिं॥
× ×
प्रेमपाट पट डोरि गौरि हर गुन मनि।
मंगलहार रचेउ कविमति मृगलोचनि॥

भाषा, भाव, छन्द और प्रभाव सब प्रकार से यह छोटा सा काव्य सर्वांग-सुन्दर और तुलसीदास-जैसे महाकवि की कीर्ति के अनुरूप ही है।

रामललानहछू

यह बीस छन्दों की तुलसीदास की सबसे छोटी रचना है। इसमें एक उप-संस्कार का वर्णन है, जो यज्ञोपवीत और विवाह दोनों संस्कारों के साथ होता है। तुलसीदास ने अन्त में लिखा भी है :

उपवीत ब्याह उछाह जे सियराम मंगल गावहीं।
तुलसी सकल कल्यान ते नर-नारि अनुदिन पावहीं॥

पर यह 'रामललानहछू' मुख्यतः विवाह-संस्कार के साथ होने वाले उप-संस्कार के लिए रचा गया है। क्योंकि इसमें कई ऐसे वर्णन मिलते हैं, जो यज्ञोपवीत-संस्कार के समय नहीं होते। जैसे :

सोहति बदन सकोचनि हीरा मांगन हो।
पनहि लिये कर सोभनि सुन्दर आँगन हो॥

'यज्ञोपवीत' में जूता (पनही) नहीं पहना जाता; खड़ाऊँ पहना जाता है। और :

नख काटन मुसुकाहिं बरनि नहिं जातहि हो।
पदुम पराग मनि मानहुँ कोमल गातहिं हो॥

नख काटने की क्रिया भी प्रायः विवाह ही के अवसर पर होती है। 'नख काटना' यज्ञोपवीत-संस्कार का कोई विशेष अंग नहीं है। तथा :

गोद लिहे कोसिल्या बैठी रामहिं वर हो।
सोभित दूलह राम सीस पर आँचर हो॥

इससे तो स्पष्ट ही है कि तुलसीदास ने यह 'नहछू' दूलह के लिए लिखा है।

यज्ञोपवीत में स्त्रियों का वह जमघट नहीं होता, जो विवाह के 'नहछू' में होता है। 'रामललानहछू' में युवती और चटकीली-मटकीली स्त्रियों के बन-ठनकर आने का बड़ा शृंगारिक वर्णन है :

बनि-बनि आवति नारि जानि गृह मायन हो।
बिहँसत आउ लोहारिन हाथ बरायन हो॥

× × ×

अहिरिनि हाथ दहेंड़ि सगुन लेइ आवइ हो।
उनरत जोबन देखि नृपति मन भावइ हो॥

× × ×

रूप सलोनि तँबोलिनि बीरा हाथहि हो।
जाकी ओर बिलोकहि मन तेहि हाथहि हो॥

× × ×

दरजिनि गोरे गात लिहे कर जोरा हो।
केसरि परम लगाइ सुगन्धन बोरा हो॥

× × ×

बतिया कै सुघर मलिनिया सुन्दर गातहि हो।
कनक रतन मनि मौर लिहे मुसुकातहि हो॥

× × ×

कटिकै छीनि बरिनिया छाता पानिहि हो।
चन्द्रबदनि मृगलोचनि सब रस खानिहि हो॥

× × ×

नैन बिसाल नउनियाँ भौं चमकावइ हो।
देइ गारी रनिवासहि प्रमुदित गावइ हो॥

'रामलला' का यह 'नहछू' तब का है, जब विवाहोपरांत सीता को लेकर राम अयोध्या आये हैं। उनका यह उप-संस्कार विवाह के बाद अयोध्या में हुआ था।

'नहछू' के वर्णनों में कहीं-कहीं शृंगार का खुला वर्णन है, जिससे कुछ विद्वज्जन अनुमान करते हैं कि यह तुलसीदास का रचा हुआ न होगा। पर वे यह भूल जाते हैं कि तुलसीदास कवि थे और उन्होंने इसे स्त्रियों के लिए लिखा है, न कि संतों के लिए। जिस प्रसंग का जैसा वर्णन होना चाहिए, कवि ने उसे वैसा ही किया है। यही तो उसकी सफलता है। 'रामचरितमानस' की रचना का उद्देश्य ही और है। उसमें विशुद्ध शृंगार ही की आवश्यकता है, क्योंकि वह धर्म-ग्रन्थ है और 'विनय-पत्रिका' में तो शृंगार की आवश्यकता ही नहीं है।

'रामललानहछू' की रचना 'जानकी-मंगल के बाद की जान पड़ती है। 'जानकी-मंगल' में जनकपुर में विवाहोत्सव का और 'रामललानहछू' में अयोध्या में विवाहोत्सव के रीति-रस्मों का वर्णन है।

इसका छन्द 'सोहर' है। यह छन्द पुत्रोत्पत्ति, यज्ञोपवीत और विवाह के प्रसंगों के लिए नारी-समाज में प्रचलित है। प्रसंग के अनुसार इसके छन्द और गाने के स्वर में भी विभिन्नता होती है।

इसकी कविता में शिथिलता नहीं है और इसके वर्णनों को देखते हुए यह तुलसीदास के विस्तृत व्यावहारिक ज्ञान का एक सुन्दर प्रमाण है।

जानकी-मंगल

'जानकी-मंगल' में १९२ मंगल छन्द और २४ अन्य छन्द हैं। इसमें राम-जानकी के विवाह का वर्णन है। इसमें रचना का समय नहीं दिया हुआ है, पर यह 'पार्वती-मंगल' के बाद ही रचा गया होगा; क्योंकि दोनों का भाव-प्रवाह एक है, दोनों में एक ही प्रकार का सोहर छन्द भी प्रयुक्त है और दोनों की भाषा भी विशुद्ध अवधी है।

इसकी रचना 'वाल्मीकि-रामायण' के आधार पर हुई है। इससे 'मानस' और इसकी कथा में कहीं-कहीं अन्तर आ गया है। जैसे—'मानस' में परशुराम का आगमन धनुर्भंग के अवसर पर दिखाया गया है, पर 'जानकी-मंगल' में विवाहोपरांत विदाई के बाद परशुराम आये हैं, जैसा 'वाल्मीकि-रामायण' में है।

'जानकी-मंगल' में फुलवाड़ी में राम-सीता का प्रथम दर्शन भी नहीं है। 'मानस' में इसका बहुत ही सरस वर्णन है।

पर 'मानस' और 'जानकी-मंगल' की भाषा और भाव में बड़ा साम्य है। कहीं-कहीं तो शब्द और वाक्य ज्यों-के-त्यों रख दिये गए हैं। यहाँ कुछ उदाहरण दिये जाते हैं :

मानस

जहँ बिलोकु मृग सावक नैनी।
जनु तहँ बरस कमल सित स्रेनी॥

जानकी-मंगल

रूप-रासि जेहि ओर सुभाय निहारइ।
नील कमल सर स्रेनि मयन जनु डारइ॥

मानस

कोउ न बुझाय कहै नृप पाहीं। ये बालक अस हठ भल नाहीं॥
कहँ धनु कुलिसहुँ चाहि कठोरा। ये स्यामल मृदुगात किसोरा॥
सो धनु राजकुँवर कर देहीं। बाल मराल कि मन्दर लेहीं॥

जानकी-मंगल

एक कहहिं कुँवर किसोर कुलिस कठोर सिव धनु है महा।
किमि लेहिं बाल मराल मंदर नृपहिं अस काहु न कहा॥

मानस

बिधि केहि भाँति धरइ उर धीरा। सिरिस सुमन कन बेधिअ हीरा॥

जानकी-मंगल

सो धनु कहि अवलोकन भूप किसोरहि।
भेद कि सिरिस सुमन कन कुलिस कठोरहि॥

मानस

हिमवंत जिमि गिरिजा महेसहिं हरिहि श्री सागर दई।
तिमि जनक रामहि सिय समरपी बिस्व कल कीरति नई॥

जानकी-मंगल

संकल्पि सिय रामहि समर्पी सील सुख सोभा मई।
जिमि संकरहि गिरिराज गिरिजा हरिहिं श्री सागर दई॥

× × ×

'जानकी-मंगल' की कविता में कहीं शैथिल्य नहीं दिखाई पड़ता। भाषा और भाव दोनों में तुलसीदास ने अपना मस्तिष्क और हृदय ढाल दिया है। कुछ उदाहरण लीजिये :

लागि झरोखन झांकहिं भूपति भामिनि।
कहत बचन रद लसहिं दमक जनु दामिनि॥

× ×

नृप रानी पुरलोग राम तन चितवहिं।
मंजु मनोरथ कलस भरहि अरु रितवहिं॥

× ×

राम सीय वय समौ सुभाय सुहावन।
नृप जोवन छवि पुरइ चहत जनु आवन॥

× ×

साय सनेह सकुच बस पिय तन हेरइ।
सुर तरु रुख सुरबेलि पवन जनु फेरइ॥

× ×

लसत ललित कर कमल माल पहिरावत।
काम फंद जनु चंदहि बनज फँदावत॥

× ×

वर विराज मण्डप महँ विस्व विमोहइ।
ऋतु बसन्त वन मध्य मदन जनु सोहइ॥

श्रीकृष्ण-गीतावली

'श्रीकृष्ण-गीतावली' में श्रीकृष्ण के चरित-सम्बन्धी ६१ पद भिन्न-भिन्न राग-रागिनियों में हैं। पदों की भाषा विशुद्ध व्रज-भाषा है। वर्णन-शैली मँजी-मँजाई और एक सत्कवि की कीर्ति के अनुकूल है।

उदाहरण के लिए यहां कुछ पद दिये जाते हैं —

बालक कृष्ण कुछ नटखट हो चले हैं। मां से झगड़ते हैं, साथियों को मुंह चिढ़ाते हैं और गृह-जीवन में आनन्द भरते हैं :

'छोटी-मोटी मीसी रोटी चिकनी-चुपरि कै तू देरी मैया'
'लै कन्हैया' 'सो कब ?' 'अबहिं तात'।
'सिपरियै हौं ही खैहौं, बलदाऊ को न दैहौं,'
सो क्यों भटू तेरो कहा कहि इत-उत जात॥
बाल बोलि डहकि विरावत, चरित लखि,
गोपीगन महरि मुदित पुलकित गात।

नूपुर की धुनि किंकिनि के कलरव सुनि,
कूदि-कूदि किलकि-किलकि ठाढ़े ठाढे खात।
तनियाँ ललित कटि, विचित्र टेपारो सीस,
मुनि मन हरत वचन कहै तोतरात।
तुलसी निरखि हरपत वरसत फूल,
भूरिभागी व्रजवासी विबुध सिद्ध सिहात ॥

× ×

कृष्ण को माँ भुलावा देकर सुलाने की चेष्टा कर रही है। पर नटखट लड़के सहज में कहाँ सोते हैं :

छाँड़ो मेरे ललित ललन लरिकाई।
ऐहैं सुत देखुवार कालि तेरे, बवै व्याह की बात चलाई ॥
डरिहैं सासु-ससुर चोरी सुनि, हँसिहैं नई दुलहिया सुहाई।
उबटौं, न्हाहु, गुहौ चोटिया वलि, देखि भलो वर करिहि बड़ाई ॥
मातु कह्यो करि कहत वोलि दै, भई बड़ि वार कालि तौ न आई।
जव सोइवो तात यों हाँ कहि; नयन मीचि रहे पौढ़ि कन्हाई ॥
उठि कह्यो भोर भयो झँगुली दै, मुदित महरि लखि आतुरताई।
विहँसी ग्वालि जानि तुलसी प्रभु, सकुचि लगे जननी उर धाई ॥

× × ×

उत्प्रेक्षाओं की वहार देखिये :

देख सखी हरिवदन इन्दु पर।
चिक्कन कुटिल अलक अवली छवि, कहि न जाइ सोभा अनूप वर ॥
वाल भुअंगिनि निकर मनहुँ मिलि रही घेरि रस जानि सुधाकर।
तजि न सकहिं नहिं करहिं पान कहो कारन कौन विचारि डरहिं डर ॥
अरुन वनज लोचन, कपोल, सुभ, स्नुति मंडित कुण्डल अति सुन्दर।
मनहुँ सिंधु निज सुतहि मनावन पठए जुगल वसीठि वारिचर ॥
नँदनदन मुख की सुन्दरता कहि न सकत स्नुति सेप उमावर।
'तुलसिदास' त्रैलोक्य विमोहन रूप कपट नर त्रिविध सूल हर ॥

× × ×

रूपक वाँधने में तुलसीदास अद्वितीय हैं। 'मानस' में उन्होंने रूपकों की पंक्ति-की-पंक्ति खड़ी कर दी है। 'श्रीकृष्ण-गीतावली' में भी वे अपना सहज रंग दिखाकर ही रहे :

जब तें ब्रज तजि गये कन्हाई।
तबतें विरह रवि उदित एक रस सखि बिछुरनि वृष पाई॥
घटत न तेज, चलत नाहिंन रथ, रह्यो उर नभ पर छाई।
इन्द्रिय रूप-रासि सोचहिं सुठि, सुधि सबकी बिसराई॥
भयो सोक भय कोक कोकनद भ्रम भ्रमरनि सुखदाई।
चित चकोर, मन मोर, कुमुद मुद सकल विकल अधिकाई॥
तनु तड़ाग बल बारि सूखन लाग्यो परी कुरूपता काई।
प्रान मीन दिन दीन दूबरे दसा दुसह अब आई॥
'तुलसीदास' मनोरथ मन मृग मरत जहाँ तहँ धाई।
रामस्याम सावन-भादों बिनु जिय की जरनि न जाई॥

रामाज्ञा-प्रश्न

'रामाज्ञा-प्रश्न' में सात सर्ग हैं और प्रत्येक सर्ग में सात-सात दोहों के सात-सात सप्तक हैं। ग्रन्थारम्भ के दो दोहे मिलाकर सातों सर्गों में कुल दोहों की संख्या ३४५ होती है। इस पुस्तक में घट-बढ़ होने की संभावना बिलकुल नहीं है। क्योंकि सारी पुस्तक निश्चित संख्या के सर्गों, सप्तकों और दोहों में निबद्ध है।

इस पुस्तक की रचना का कारण बताने वाली एक दन्त-कथा भी है। कहते हैं कि काशी में प्रह्लाद-घाट पर पंडित गंगाराम जोशी नाम के एक सज्जन थे, जिनके यहाँ तुलसीदास ठहरा करते थे। उन दिनों काशी के राजघाट के राजा एक गहरवार क्षत्रिय थे। एक दिन उनका कुमार शिकार खेलने गया और लौटकर नहीं आया। राजा ने पंडित गंगाराम जोशी को बुलाकर प्रश्न किया। जोशीजी गणित करके उत्तर देने का वादा करके घर आये और चिन्तित होकर बैठ गए। वे प्रतिदिन सन्ध्या-समय तुलसीदास के साथ नाव पर गंगा-पार शौच के लिए जाया करते थे। उस दिन नहीं गये। तुलसीदास ने कारण जानकर उनको सान्त्वना दी और छः घण्टे के लगातार परिश्रम से 'रामाज्ञा-प्रश्न' तैयार कर दिया। जोशीजी ने उससे अपने प्रश्न का फल निकाला, तो उन्हें विदित हुआ कि अगले दिन सन्ध्या होते-होते राजकुमार लौट आयगा। उन्होंने राजा को सूचना दी। दूसरे दिन सचमुच उनका कथन सत्य निकला और राजा ने जोशीजी को पूर्व प्रतिज्ञानुसार एक लाख रुपया दिया। जोशीजी ने सब रुपये लाकर तुलसीदास के चरणों पर रख दिए। तुलसीदास ने उन्हें छूने से भी इन्कार किया। बहुत आग्रह करने पर तुलसीदास ने उसमें से बारह हजार रुपये अलग करा दिए और उनसे हनुमानजी के

बारह मन्दिर बनवा दिए।

यह कहानी कहाँ तक सच है, ईश्वर जाने। 'रामाज्ञा-प्रश्न' के प्रथम सर्ग के उनचासवें दोहे में जो एक गंगाराम शब्द आया है, उसके चाहे जो अर्थ लगा लीजिये। या तो वह किसी व्यक्ति-विशेष का नाम है या गंगा और राम दो अलग-अलग सार्थक शब्द हैं।

कुछ महानुभाव अनभिज्ञता से 'रामाज्ञा-प्रश्न' और 'राम-शलाका' को एक समझते हैं। पर 'रामाज्ञा-प्रश्न' और 'राम-शलाका' दो भिन्न चीजें हैं। मेरा अनुमान है कि 'राम-शलाका'ही को तुलसीदास ने छः घण्टे के लगातार परिश्रम से तैयार किया होगा। 'रामाज्ञा-प्रश्न' के ३४५ दोहे छः घंटे के लिए अत्यन्त अधिक हैं। एक घंटे में ५७ दोहे का औसत पड़ता है। एक मिनट से अधिक तो एक दोहे के लिखने में लग जायँगे। अतएव निश्चय ही 'रामाज्ञा-प्रश्न' उजलत में बैठकर लिखा हुआ नहीं हो सकता। हाँ, 'राम-शलाका' के लिए छः घंटे काफी हैं। यद्यपि उसमें भी बुद्धि का बड़ा खर्च है, पर तुलसीदास के लिए वह साधारण सी बात मानी जा सकती है। अगले पृष्ठ पर 'राम-शलाका' की प्रतिलिपि दी जाती है—

सु	प्र	उ	वि	हो	मु	ग	व	सु	नु	वि	घ	घि	इ	ब.
र.	रु	फ	सि	सि	रैं	बस	है	मं	ल	न	ल	य	न	अं
सज	सो	ग	सु	कु	म	स	ग	त	न	ई	ल	धा	वे	नो
त्य	र	न	कु	जो	म	रि	र	र	अ	की	हो	सं	रा	य
पु	सु	थ	सी	जे	इ	ग	म	सं	क	रे	हो	स	स	नि
ति	र	त	[illegible]	स	इ	ह	व	व	प	चि	स	य	स	तु
म	का	।	र	र	मा	मि	मी	म्हा	।	जा	हू	हीं	।	जू
ता	रा	रे	री	हृ	का	फ	खा	जि	ई	र	रा	पू	द	लु
नि.	को	मि	गो	न	म	ज	य	ने	मनि	क	ज	प	स	लु
हि	रा	मु	स	रि	ग	व	न	ष	म	खि	जि	मनि	त	जं
सिं	मु	न	न	को	मि	जु	र	ग	धु	ख	सु	का	स	र
गु	क	म	अ	ध	नि	म	लु	।	नु	व	तो	न	त्रि	भ
ना	पु	व	अ	ढा	र	ल	का	ए	तु	र	न	नु	व	थ
सि	इ	सु	म्ह	रा	र	स	हि	र	त	न	प	।	जा	।
र	सा	।	ला	धी	।	री	ज	हू	हीं	षा	जू	ई	रा	रे

प्रश्न निकालने की रीति यह है—

प्रश्न-कर्ता किसी कोठे में उँगली रखे। उसमें जो अक्षर हो, उसे अलग कागज पर लिख ले। फिर उसे छोड़कर नवाँ-नवाँ अक्षर ले-लेकर लिखता जाय। जब एक चौपाई बन जाय, तब उसके अनुसार अपने प्रश्न का फल समझ ले। यदि प्रश्नकर्ता ने किसी नीचे के कोठे में उँगली रखी और चौपाई पूरी बनने के पहले ही सब कोठे समाप्त हो गए, तब शेष के लिए ऊपर के पहले कोठे से गिनती करके चौपाई पूरी कर लेनी चाहिए।

रामशलाका-चक्र में कुल नौ चौपाइयां हैं। वे ये हैं :

सुनु सिय सत्य असीस हमारी। पूजहि मनकामना तुम्हारी॥
प्रविसि नगर कीजै सब काजा। हृदय राखि कौसलपुर राजा॥
उघरे अन्त न होइ निबाहू। कालनेमि जिमि रावन राहू॥
बिधिबस सुजन कुसंगति परहीं। फनिमनि सम निज गुन अनुसरहीं॥
होइहैं सोइ जो राम रचि राखा। को करि तरक बढ़ावहि साखा॥
मुद मङ्गलमय सन्त समाजू। जिमि जग जंगम तीरथराजू॥
गरल सुधा रिपु करै मिताई। गोपद सिंधु अनल सितलाई॥
बरुन कुबेर सुरेस समीरा। रन सनमुख धरि काहु न धीरा॥
सफल मनोरथ होइँ तुम्हारे। राम लषन सुनि भये सुखारे॥

पता नहीं, इनमें से किस चौपाई के आधार पर तुलसीदास ने राजकुमार के सकुशल लौटने का समय बताया था। इससे इतना अर्थ तो हम भी निकाल सकते हैं कि तुलसीदास केवल कवि ही नहीं थे, अच्छे गणितज्ञ भी थे।

'रामाज्ञा-प्रश्न' का अन्तिम सप्तक इस प्रकार है :

सुदिन साँझ पोथी नेवति, पूजि प्रभात सप्रेम।
सगुन बिचारब चारु मति, सादर सत्य सनेम॥
मुनि गनि, दिन गनि, धातु गनि, दोहा देखि बिचारि।
देस करम करता बचन, सगुन समय अनुहारि॥
सगुन सत्य ससि नयन गुन, अवधि अधिक नयवान।
होइ सुफल सुभ जासु जसु, प्रीति प्रतीति प्रमान॥
गुरु गनेस हरु गौरि सिय, रामु लषनु हनुमानु।
तुलसी सादर सुमिरि सब, सगुन बिचार बिधानु॥
हनूमान सानुज भरत, राम सीय उर आनि।
लषन सुमिरि तुलसी कहत, सगुन बिचारु बखानि॥
जो जेहि काजहि अनुहरइ, सो दोहा जब होइ।
सगुन समय सब सत्य सब, कहब रामगति गोइ॥
गुन, बिस्वास, सचित्र मनि, सगुन मनोहर हार।
तुलसी रघुबर भगत उर, बिलसत बिमल बिचारु॥

'रामाज्ञा-प्रश्न' की छपी हुई प्रति में प्रश्न निकालने का नियम दोहे में दिया गया है, वह स्पष्ट नहीं है। उसे हम यहां निम्न लिखित अङ्क-चक्र द्वारा स्पष्ट कर देते हैं। जिसे फल निकालना हो, वह 'रामाज्ञा-प्रश्न' की पुस्तक देखकर

इस चक्र से लाभ उठा सकता है। —

पहला चक्र
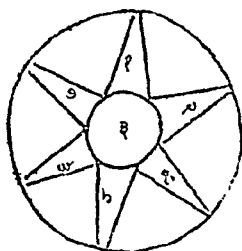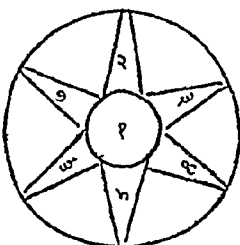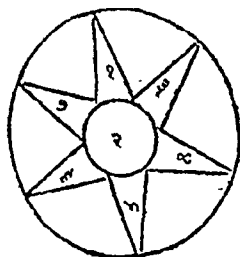
दूसरा चक्र

१	२	३	४	५	६	७
२४	२५	२६	२७	२८	२६	८
२३	४०	४१	४२	४३	३०	६
२२	३६	४८	४६	४४	३१	१०
२१	३८	४७	४६	४५	३२	११
२०	३७	३६	३५	३४	३३	१२
१६	१८	१७	१६	१५	१४	१३

प्रश्न निकालने की रीति यह है कि पहले ऊपर के किसी एक अङ्क-चक्र में किसी अङ्क पर उँगली रखिए, वह अङ्क सर्ग का बोधक होगा। उसे अलग लिख लीजिए। फिर दूसरे अङ्क-चक्र में किसी अङ्क पर उँगली रखिए;

जो अङ्क हो, यदि वह सात से कम हो तो अलग लिखे हुए सर्ग के पहले सप्तक में उसी संख्या का दोहा देखकर अपना फल समझ लीजिए। सात से अधिक हो तो सात से भाग दीजिए, भागफल जो आय, उतने सप्तक छोड़कर अगले सप्तक में शेष बची हुई संख्या का दोहा देखकर फल निकाल लीजिए। ऊपर के तीनों चक्रों में तीन बार अलग-अलग प्रश्न करके फल निकालना चाहिए।

बरवै-रामायण

अकबर के प्रधान मन्त्री अब्दुर्रहीम खानखाना ने बरवै छन्द में नायिका-भेद पर एक पुस्तक लिखी थी। कहा जाता है कि तुलसीदास ने उसके छन्द को पसन्द करके उसी में 'बरवै-रामायण' लिखा। पता नहीं, इस कथन में कितना तथ्य है। मेरी आत्मा तो इसे कभी स्वीकार नहीं करती कि तुलसीदास कभी रहीम से प्रभावित हुए होंगे।

बरवै छन्द के नाम के साथ भी एक कथा लगी हुई है। कहा जाता है कि रहीम का कोई नौकर छुट्टी पर गया। अपनी नवविवाहिता स्त्री के साथ उसकी छुट्टी के दिन चुपचाप निकल गए। इच्छा न रहने पर भी नौकरी के भय से उसे घर त्यागना ही पड़ा। जाते समय उसकी स्त्री ने यह छन्द लिख-कर उसे रहीम को देने के लिए दिया :

प्रेम प्रीति को बिरवा चलेहु लगाय।
सींचन की सुधि लीजो मुरझि न जाय॥

पति ने पत्नी की चिट्ठी अपने स्वामी को दी। रस से लहलहाता हुआ एक नवीन छन्द पाकर रहीम का कवि-हृदय फड़क ही तो उठा। उन्होंने नौकर को एक लम्बी छुट्टी दी और उसकी स्त्री के लिए बहुमूल्य उपहार भी भेजा और उसी छन्द में उन्होंने एक नायिका-भेद भी लिख डाला। बिरवा शब्द इन्हें इतना प्रिय लगा कि छन्द का नाम ही उन्होंने 'बिरवा' रख दिया जो बाद को 'बरवै' हो गया।

पर यह छन्द रहीम के लिए नया हो सकता था, तुलसीदास के लिए नया नहीं रहा होगा। यह छन्द विहार के ग्राम-गीतों में खूब चलता है। बिहार का एक ग्राम-गीत लगभग इन्हीं शब्दों में यहाँ दिया जाता है :

प्रेम पिरित रस बिरवा रे, तुम पिय चलेहु लगाय।
सींचन की सुधि लीजो, देखेउ मुरझि न जाय॥
जेठा छवावइँ आपन बँगला रे, देवरा छवावइ़ चौपारि।
मोरा मँदिलवा केन छवइहइँ, जेकर पियवा बिदेस॥

इसका तो राग ही जुदा है। संगीत के धुरन्धर ज्ञाता तुलसीदास इस राग

को न जानते रहे हों, यह स्वीकार नहीं किया जा सकता। तुलसीदास विहार की तरफ आते-जाते रहते थे, वहीं से उन्होंने यह छन्द लिया होगा।

'बरवै-रामायण' की जो प्रति इस समय उपलब्ध है, उसमें सात कांड और दो-दो पंक्तियों का एक-एक छन्द मानकर कुल ६९ छन्द हैं। जन-श्रुति के अनुसार यह रामायण बहुत बड़ा था, पर अब सम्पूर्ण नहीं मिलता।

'बरवै-रामायण' के छन्दों में तुलसीदास ने बहुत मधुर रस भरा है। राग-सहित गाने में उसकी सरसता और भी बढ़ जाती है।

यहां उसके कुछ छन्द दिये जाते हैं :

केस मुकुत सखि मरकत मनिमय होत।
हाथ लेत पुनि मुकुता करत उदोत॥

× × ×

सम सुबरन सुखमाकर सुखद न थोर।
सीय अंग सखि कोमल कनक कठोर॥

× × ×

सिय मुख सरद कमल जिमि किमि कहि जाइ।
निसि मलीन वह निसिदिन यह बिगसाइ॥

× × ×

चंपक हरवा अंग मिलि अधिक सोहाइ।
जानि परै सिय हियरे जब कुँभिलाइ॥

× × ×

सिय तुम अंग रङ्ग मिलि अधिक उदोत।
हार बेलि पहिरावौ चम्पक होत॥

× × ×

का घूंघट मुख मूंदहु नवला नारि?
चांद सरग पर सोहत यहि अनुहारि॥

× × ×

उठी सखी हँसि मिस करि कहि मृदु बैन।
सिय रघुबर के भये उनींदे नैन॥

× × ×

बेद नाम कहि अँगुरिन खंडि अकास।
पठयो सूपनखाहि लपन के पास॥

× × ×

बिरह आगि उर ऊपर जब अधिकाइ।
ये अँखियाँ दोउ बैरिनि देहिं बुताइ॥

× × ×

तप, तीरथ, मख, दान, नेम उपवास।
सब तें अधिक राम जपु तुलसीदास॥

× × ×

महिमा राम नाम कै जान महेस।
देत परम पद कासी करि उपदेस॥

× × ×

तुलसी सुमिरत राम सुलभ फल चारि।
वेद पुरान पुकारत कहत पुरारि॥

× × ×

केहि गिनती महँ गिनती जस बनघास।
राम जपत भये तुलसी तुलसीदास॥

× × ×

नाम भरोस नाम बल नाम सनेहु।
जनम-जनम रघुनन्दन तुलसिहि देहु॥

विनय-पत्रिका

'रामचरितमानस' के बाद 'विनय-पत्रिका' ही तुलसीदास की सबसे बड़ी महत्त्वपूर्ण रचना है। इसमें कुल २७९ पद हैं। सभी पदों का सम्बन्ध संगीत से है और वे अनेक राग-रागिनियों में विभाजित हैं।

यह तुलसीदास का अन्तिम ग्रन्थ है। इससे यहाँ तक पहुँचते-पहुँचते उनके भाव, अनुभाव और कवित्व का जितना विकास हो चुका था, सबका लाभ इस ग्रन्थ को मिला है। इस ग्रन्थ में तुलसीदास ने मनोभावों को सुललित, सुबोध और सरल शब्दों में व्यक्त करने की अद्भुत कला दिखलाई है। तुलसीदास को इस ग्रन्थ के पद लिखने में जैसी सफलता मिली है, उस अनुपात से वह उनके और किसी ग्रन्थ में नहीं है। 'मानस' में, खासकर अयोध्या-कांड में, उनकी कवित्व-शक्ति सावन-भादों की नदी की भाँति उमड़ी हुई दिखाई पड़ती है। पर अरण्य, किष्किंधा, सुन्दर और लंका-कांडों में वह घटते-घटते जेठ-बैसाख की नदी की तरह छिछली हो गई है। कहीं-कहीं उसमें गड्ढे हैं, जिनमें कुछ अधिक जल जमा हुआ मिलता जरूर है। पर 'विनय-पत्रिका' में आदि से अन्त तक कवि की रस-धारा एक-सी प्रवाहित है। उसमें उसके प्रचुर ज्ञान, गम्भीर

अनुभव, भाषा और भाव पर उसके अबाध अधिकार का रोचक इतिहास कमल की तरह सर्वत्र विकसित मिलता है।

'विनय-पत्रिका' में तुलसीदास ने प्रत्येक पद में मानव-जीवन को कल्याण की ओर आकर्षित करने का प्रयास किया है। लोक-हित की ऐसी प्रबल प्रेरणा हिन्दी के अन्य किसी कवि के अन्तःकरण में अब तक कभी जागृत नहीं हुई।

तुलसी-साहित्य के परम मर्मज्ञ काशी-निवासी श्रीविजयानन्द त्रिपाठी के एक लेख से विदित होता है कि रामनगर, (काशी) में चौधरी छुन्नीसिंहजी के पास 'रामगीतावली' की एक हस्तलिखित प्रति सुरक्षित है, जो संवत् १६६६ की है। उसमें केवल १७५ पद हैं। उसके अन्तिम पन्ने के अन्त में यह पाठ है:

"इति श्रीतुलसीदास विरचित······(पढ़ा नहीं जाता) वली समाप्ता।"

यदि रघुपतिभक्तिर्मुक्तिदा प्रेक्ष्यते सा
सकलकलुपहर्त्री सेवनीया प्रयासात्।
शृणुत सुमति पुंसो निर्मितारामभक्तै—
जंगति तुलसिदासै रामगीतावलीयम्॥

"शुभम् संवत् १६६ समये······बुधवासर लिखितं भगवान् ब्रह्मणेन। शुभ भवतु।"

उक्त 'राम-गीतावली' के १७१ पद 'विनय-पत्रिका' में मिलते हैं। शेष चार पद 'गीतावली' में हैं। श्रीवेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई से सं० १२५१ में प्रकाशित 'विनय-पत्रिका' के अन्त में भी उक्त श्लोक दिया हुआ है। इससे श्रीत्रिपाठीजी का यह अनुमान सच जान पड़ता है कि तुलसीदास ने 'कृष्ण-गीतावली' के जोड़ की एक 'राम-गीतावली' भी अलग लिखी थी। और विनयावली एक अलग ही पुस्तक थी। पीछे से तुलसीदास ने स्वयं या अन्य किसी ने दोनों को एक कर दिया। पर 'विनय-पत्रिका' नाम तुलसीदास ही का रखा हुआ है:

विनय पत्रिका दीन की बापु आपुहि बांचो।

इससे यह अनुमान भी किया जा सकता है कि स्वयं तुलसीदास ने दोनों को एक कर दिया होगा। एक करने के पहले 'राम-गीतावली' की जितनी प्रतियाँ हस्तलिखित हो चुकी थीं, वे अपने असली रूप ही में रह गईं। उनको तुलसीदास 'विनय-पत्रिका' का रूप कैसे दे सकते थे?

यहाँ 'विनय-पत्रिका' के कुछ पद दिये जाते हैं। पर सुरुचि-सम्पन्न कल्याणेच्छुक सज्जनों को सम्पूर्ण ग्रन्थ पढ़ जाने ही पर सच्चा आनन्द प्राप्त होगा:

दीन को दयालु दानि दूसरो न कोऊ।
जासों दीनता कहौं, हौं देखौं दीन सोऊ॥
सुर नर मुनि असुर नाग साहिब तो घनेरे।
तौलौं, जौलौं रावरे न नेकु नयन फेरे॥
त्रिभुवन तिहुँ काल विदित वदति वेद चारी।
आदि अंत मध्य राम ! साहिबी तिहारी॥
तोहि माँगि माँगनो न माँगनो कहायो।
सुनि सुभाउ सील सुजस जाचन जन आयो॥
पाहन, पसु, विटप, विहँग अपने कर लीन्हें।
महाराज दसरथ के ! रंक राय कीन्हें॥
तू गरीब को निवाज, हौं गरीब तेरो।
बारक कहिये कृपालु ! 'तुलसिदास मेरो'॥

× ×

अस कछु समुझि परत रघुराया।
बिनु तव कृपा दयालु दास हित मोह न छूटै माया॥
वाक्य ज्ञान अत्यन्त निपुन भव पार न पावै कोई।
निसि गृह मध्य दीप की वातन्हि तम निवृत्त नहिं होई॥
जैसे कोइ इक दीन दुखित अति असन हीन दुख पावै।
चित्र कल्पतरु कामधेनु गृह लिखे न विपति नसावै॥
षट्‌रस बहु प्रकार भोजन कोउ दिन अरु रैनि बखानै।
बिनु बोले संतोष-जनित सुख खाइ सोइ पै जानै॥
जब लगि नहिं निज हृदि प्रकास, अरु विषय आस मन माहीं।
तुलसिदास तब लगि जग जोनि भ्रमत सपनेहु सुख नाहीं॥

× × ×

जानत प्रीति रीति रघुराई।
नाते सब हाते करि राखत राम सनेह सगाई॥
नेह निवाहि देह तजि दसरथ कीरति अचल चलाई।
ऐसे हू पितु तें अधिक गीध पर ममता गुन गरुआई॥
तिय विरही सुग्रीव सखा लखि प्रानप्रिया बिसराई।
रन पर्‌यो बन्धु विभीषन ही को सोच हृदय अधिकाई॥
घर, गुरु गृह, प्रिय सदन, सासुरे, भई जब जहँ पहुनाई।
तब तहँ कहि सबरी के फलन की रुचि माधुरी न पाई॥

सहज सरूप कथा मुनि बरनत रहत सकुचि सिर नाई।
केवट मीत कहे सुख मानत बानर बन्धु बड़ाई ॥
तुलसी राम सनेह सील लखि जो न भगति उर आई।
तौ तोहि जनमि जाय जननी जड़ तनु तरुनता गँवाई ॥

× × ×

कौन जतन बिनती करिये।
निज आचरन विचारि हारि हिय मानि जानि डरिये।
जेहि साधन हरि द्रवहु जानिजन सो हठि परिहरिये।
जाते विपति जाल निसि दिन दुख तेहि पथ अनुसरिये ॥
जानत हूँ मन बचन करम परहित कीन्हें तरिये।
सो विपरीत देखि पर सुख बिनु कारन ही जरिये ॥
स्रुति पुरान सबको मत यह सतसंग सुदृढ़ धरिये।
निज अभिमान मोह इरषा बस तिन्हहिं न आदरिये ॥
संतत सोइ प्रिय मोहिं सदा जाते भवनिधि परिये।
कहो अब नाथ, कौन बल ते संसार सोग हरिये ॥
जब कब निजु करुना सुभाउ ते द्रवहु तो निस्तरिये।
तुलसिदास विस्वास आन नहिं, कत पचि-पचि मरिये ॥

× × ×

कबहुँक हो यहि रहनि रहौंगो।
श्रीरघुनाथ कृपालु कृपा तें सन्त सुभाव गहौंगो ॥
जथा लाभ संतोष सदा काहू सों कछु न चहौंगो।
पर हित निरत निरन्तर मन क्रम बचन नेम निबहौंगो ॥
परुष वचन अति दुसह स्रवन सुनि तेहि पावक न दहौंगो।
विगत मान सम सीतल मन पर गुन अवगुन न कहौंगो ॥
परिहरि देह जनित चिन्ता दुख सुख समबुद्धि सहौंगो।
तुलसिदास प्रभु यहि पथ रहि अविचल हरिभक्ति लहौंगो ॥

× × ×

सकुचत हौं अति राम कृपानिधि, क्यों करि विनय सुनावौं।
सकल धरम विपरीत करत, केहि भाँति नाथ मन भावौं ॥
जानत हौं हरि रूप चराचर में हठि नैन न लावौं।
अंजन केस सिखा जुवती तहँ लोचन सुलभ पठावौं ॥

स्रवननि को फलकथा तुम्हारी यह समुझौं समुझावौं।
तिन्ह स्रवननि परदोष निरन्तर सुनि-सुनि भरि-भरि तावौं॥
जेहि रसना गुन गाइ तिहारे विनु प्रयास सुख पांवौं।
तेहि मुख पर अपवाद भेक ज्यौ रटि-रटि जनम नसावौं॥
'करहु'हृदय अति विमल वसहिं हरि,कहि-कहि सबहिं सिखावौं।
हौं निज उर अभिमान मोह मद खल मण्डली बसावौं॥
जो तनु धरि हरि पद साधहिं जन सो बिनु काज गँवावौं।
हाटक घट भरि धरचो सुधा गृह तजि नभ कूप खनावौं॥
मन क्रम बचन लाइ कीन्हें अघ ते करि जतन दुरावौं।
पर प्रेरित इरषा बस कबहुँक किय कछु सुभ कै जनावौं॥
विप्र द्रोह जनु बाँट पर्‌यो हठि सब सों वैर बढ़ावौं।
ताहू पर निज मत बिलास सब संतन माँझ गनावौं॥
निगम सेस सादर निहोरि जो अपने दोष कहावौं।
तौ न सिराहि कलप सत लगि प्रभु कहा एक मुख गावौं॥
जो करनी आपनी विचारौं तौ कि सरन हौं आवौ।
मृदुल सुभाव सील रघुपति को, सो बल मनहिं दिखावौं॥
तुलसिदास प्रभु सो गुन नहिं जेहि सपनेहुँ तुम्हहिं रिझावौं।
नाथ कृपा भवसिन्धु धेनु पद सम जो सानि सिरावौं॥

× × ×

रघुवर रावरि यहै बड़ाई।
निदरि गनी, आदर गरीब पर, करत कृपा अधिकाई॥
थके देव साधन करि सब सपनेहु नहिं देत दिखाई।
केवट कुटिल भालु कपि कौनप कियो सकल सँग भाई॥
मिलि मुनिवृन्द फिरत दंडक वन सो चरचौ न चलाई।
बारहि बार गीध सबरी की बरनत प्रीति सुहाई॥
यहि दरबार दीन को आदर रीति सदा चलि आई।
दीनदयालु दीन तुलसी की काहु न सुरति कराई॥

× × ×

नाहिन आवत आन भरोसो।
यहि कलिकाल सकल साधनतरु है स्रम फलनि फरो सो॥
तप, तीरथ, उपवास, दान, मख जेहि जो रुचै करो सो।
पायेहि पै जानिवो करम फल भरि-भरि वेद परोसो॥

आगम विधि जप जाग करत नर सरत न काज खरो सो।
सुख सपनेहु न जोग सिधि साधन रोग वियोग धरो सो॥
काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह मिलि ग्यान विराग हरो सो।
विगरत मन संन्यास लेत जल नावत आम घरो सो॥
बहु मत सुनि बहु पन्थ पुराननि जहाँ-तहाँ झगरो सो।
गुरु कह्यो राम भजन नीको मोहिं लगत राज डगरो सो॥
तुलसी बिनु परतीति प्रीति फिर-फिर पचि मरै मरो सो।
रामनाम वोहित भवसागर चाहै तरन तरो सो॥

× × ×

लाभ कहा मानुप-तनु पाये।
काय बचन मन सपनेहुँ कबहुँक घटत न काज पराये॥
जो सुख सुरपुर नरक गेह बन आवत विनहिं बुलाये।
तेहि सुख कहँ बहु जतन करत मन समुझत नहिं समुझाये॥
भय, निद्रा, मैथुन, अहार सब के समान जग जाये।
सुर दुरलभ तनु धरि न भजे हरि मद अभिमान गँवाये॥
गई न निज पर बुद्धि सुद्ध ह्वै रहे न राम लय लाये।
तुलसिदास यह अवसर बीते का पुनि के पछिताये॥

× × ×

भरोसो जाहि दूसरो सो करो।
मोको तो राम को नाम कलपतरु कलि कल्यान करो॥
करम उपासन ज्ञान वेदमत सो सब भाँति खरो।
मोहिं तो सावन के अन्धहि ज्यों सूझत हरो-हरो॥
प्रीति प्रतीति जहां जाकी तहँ ताको काज सरो।
मेरे तो माय बाप दोऊ आखर हौं सिसु अरनि अरो॥
संकर साखि जो राखि कहउँ कछु तौ जरि जीह गरो।
अपनो भलो रामनामहि ते तुलसिहिं समुझि परो॥

× × ×

ऐसी मूढ़ता या मन की।
परिहरि राम-भक्ति सुर-सरिता आस करत ओस-कन की॥
धूम-समूह निरखि चातक ज्यों तृषित जानि मति घन की।
नहिं तहँ सीतलता, न बारि, पुनि हानि होति लोचन की॥

ज्यों गच काँच विलोकि सेन जड़ छाँह आपने तन की।
टूटत अति आतुर अहारवस छति विसारि आनन की॥
कहँ लौं कहौं कुचाल कृपानिधि जानत हो गति जन की।
तुलसिदास प्रभु ! हरहु दुसह दुख करहु लाज निज पन की॥
कृपा डोरि, बनसी पद अंकुस, परम प्रेम मृदु चारो।
एहि विधि बेधि हरहु मेरो दुख कौतुक राम तिहारो॥

× × ×

कबहुँक अब अवसर पाइ।
मेरिऔ सुधि द्याइबी कछु करुन कथा चलाइ॥
दीन सब अँगहीन छीन मलीन अघी अघाइ।
नाम लै भरै उदर एक प्रभु दासी दास कहाइ॥
बूझिहैं 'सो है कौन ?' कहिबी नाम दसा जनाइ।
सुनत राम कृपालु के मेरी बिगारऔ बनि जाइ॥
जानकी जग जननि जन की किए बचन सहाइ।
तरै तुलसीदास भव तव नाथ गुन-गन गाइ॥

× × ×

कबहुँ समय सुधि द्याइबी मेरी मातु जानकी।
जन कहाइ नाम लेत हौं किये पन चातक ज्यों, प्यास प्रेम पान की॥
सरल प्रकृति आपु जानिये करुनानिधान की।
निज गुन अरि कृत अनहितौ दास दोप सुरति चित रहत न दिये दान की॥
बानि बिसारनसील है मानद अमान की।
तुलसीदास न बिसारियै मन क्रम बचन जाके सपनेहुँ गति न आन की॥

× × ×

मारुति मन रुचि भरत की लखि लपन कही है।
कलिकालहुँ नाथ ! नाम सों प्रतीति प्रीति एक किंकर को निबही है॥
सकल सभा सुनि लै उठी जानी रीति रही है॥
कृपा गरीबनिवाज की, देखत गरीब को साहब बाँह गही है॥
बिहँसि राम कह्यो 'सत्य है सुधि मैं हूँ लही है।'
मुदित माथ नावत बनी तुलसी अनाथ की परी रघुनाथ हाथ सही है॥

अन्य रचनाएँ

ऊपर तुलसीदास के बारह ग्रन्थों का संक्षिप्त परिचय दिया गया है, उनके अतिरिक्त उनके नाम से और भी कई पुस्तकें पुस्तक-विक्रेताओं के यहाँ

मिलती हैं। पर वे मानसकार तुलसीदास की लिखी हुई हैं या किसी अन्य तुलसीदास की यह कहना कठिन है? उनकी भाषा और शैली सभी कुछ निम्न श्रेणी के कवियों की-सी है। यदि तुलसीदास ही को उनका रचयिता मानना पड़ेगा, तो यह भी मान लेना पड़ेगा कि वे रचनाएँ तुलसीदास की छात्रावस्था के समय की हैं।

उन रचनाओं में 'हनुमान-चालीसा', 'कलि-धर्माधर्म-निरूपण', 'कुण्डलिया-रामायण' और 'छप्पय-रामायण' के सम्बन्ध में यह धारणा दृढ़ होती है कि ये तुलसीदास की आदि की रचनाएँ होंगी। यद्यपि न इनके समय का पता है, न इनके हस्तलिखित प्रमाण ही कहीं प्राप्त हैं।

'कुण्डलिया-रामायण' पर श्रीवैजनाथदास की टीका है, इससे प्रकट है कि तुलसीदास के खास-खास व्यक्ति भी इस पुस्तक को तुलसीदास ही की रचना मानते आ रहे हैं।

इन रचनाओं का विशेष परिचय देने की मैं आवश्यकता नहीं समझता हूँ। इनका तो अस्तित्व ही मुझे अनावश्यक जान पड़ता है।

२

रचनाओं का काल-क्रम

तुलसीदास की रचनाओं के काल-क्रम के सम्बन्ध में बहुत पहले से मतभेद चला आ रहा है। चरित-लेखकों ने अपनी-अपनी कल्पनाओं के आधार पर रचनाओं का भिन्न-भिन्न समय निर्धारित किया है। 'रामचरितमानस' और 'पार्वती मंगल' में ग्रन्थकार ने समय दे रखा है इससे उनके लिए तो कोई विवाद ही नहीं है। शेष ग्रन्थों में समय नहीं दिया हुआ है। इससे उनकी भाषा, वर्णन-शैली और वर्णित विषयों के साथ कवि की आयु की अनुकूलता देखकर उनका समय निर्धारित करना पड़ता है।

तुलसीदास की रचनाओं को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। एक वर्ग में 'मानस', 'पार्वती-मंगल', 'जानकी-मंगल','रामाज्ञा-प्रश्न,' 'गीतावली', 'रामललानहछू','बरवै रामायण' और 'कवितावली' आदि प्रबन्ध-काव्य हैं। दूसरे वर्ग में 'दोहावली','विनय-पत्रिका', 'श्रीकृष्ण गीतावली', 'वैराग-संदीपिनी' आदि संग्रह-ग्रन्थ।

प्रबन्ध काव्यों में केवल दो ग्रन्थों का रचना-काल उनमें दिया हुआ मिलता है। 'मानस' की रचना संवत् १६३१ में हुई और 'पार्वती-मंगल' की जय-संवत् (१६४३) में। शेष के लिए हमें अनुमान से काम लेना पड़ेगा।

तुलसीदास का रचना-काल, मेरी राय में, सं० १६१५ से मानना चाहिए उस समय उनकी आयु पचीस-छब्बीस वर्ष की थी, और संभवतः वे वैवाहिक जीवन व्यतीत कर रहे थे। वे बचपन ही से राम के भक्त थे और उनके गुरु ने उनको राम के वातावरण ही में पाला-पोसा भी था। इससे चाहे छात्रावस्था हो, चाहे वैवाहिक जीवन, तुलसीदास राम की सीमा से बाहर कभी नहीं गये। उनकी रचनाओं को ध्यानपूर्वक पढ़ने से यह विश्वास दृढ़ हो जाता है कि 'मानस' के पहले ही से वे राम-चरित्र की चर्चा में निमग्न रहते और छन्द-रचना किया करते थे।

मुझे तुलसीदास की सबसे पहली रचना 'वैराग्य-संदीपिनी' जान पड़ती

हैं। यह उस समय की रचना है, जब तुलसीदास का झुकाव संत मत की तरफ रहा होगा। संत मत का प्रचार उन दिनों जोरों पर था। पर इसका कोई ठीक संवत् बताना असंभव है। अनुमान से इसकी रचना संवत् १६२० की कही जा सकती है। तुलसीदास के नाम से एक 'बारहमासा' भी प्रसिद्ध है। संभवतः वह भी उसी समय के आस-पास का है।

'मानस' में तुलसीदास ने यह प्रतिज्ञा की है, कि 'गुरु-मुख से मैंने जो राम की कथा सुनी है, उसे मैं भाषा में लिखूंगा।' यह प्रतिज्ञा छात्रावस्था के समय की है। छात्रावस्था से निकलने के बाद राम-चरित लिखने का उनका पहला प्रयास 'मानस' ही नहीं रहा होगा बल्कि उन्होंने पहले राम-चरित को विविध राग-रागिनियों में गाने के लिए या विविध छन्दों में कवि-समाज में आदर पाने के लिए लिखने का प्रयत्न किया होगा। 'गीतावली' और 'कविता-वली' का प्रारम्भ उन्हीं दिनों का जान पड़ता है। यही क्यों, तुलसीदास के रचे हुए कहे जाने वाले 'झूलना-रामायण', 'कुण्डलिया-रामायण', 'छप्पै रामायण', 'रोला-रामायण', 'छन्दावली-रामायण' आदि कई रामायण तथा बारहमासा कवि की उन्हीं दिनों की तरंगों के परिणाम होंगे। 'मानस' के बाद तुलसीदास ने अन्य किसी छंद में कोई रामायण नहीं लिखा। 'मानस' तक पहुँचते-पहुँचते वे विचारों ही से परिपक्व नहीं हो चुके थे, बल्कि उनकी प्रबन्ध-रचना-शक्ति भी परिमार्जित हो चुकी थी।

'गीतावली' और 'मानस' की कथाओं में कई स्थानों पर मौलिक अन्तर है। 'गीतावली' का आधार 'वाल्मीकि-रामायण' है, और 'मानस' में 'अध्यात्म-रामायण' की छाया है। इससे 'गीतावली' का संशोधन 'मानस' में किया हुआ सा लगता है।

दोनों की कथाओं में सबसे बड़ा अन्तर तो यह है कि 'गीतावली' में सीता-वनवास की कथा बड़े ही करुणोत्पादक शब्दों में हुई है, पर 'मानस' में यह प्रसंग जान-बूझकर छोड़ दिया गया है। क्योंकि इस कथा से राम के चरित्र पर लांछन आता था और इससे 'रामचरितमानस' एक दुःखान्त काव्य हो जाता, जो भक्त कवि तुलसीदास को कभी अभीष्ट न था। इससे ऐसा लगता है कि मानस में तुलसीदास ने अपने विचारों का अन्तिम संशोधित स्वरूप ही चित्रित किया है। मैं 'गीतावली' का प्रारम्भ और अन्त दोनों 'मानस' की रचना के पहले का मानता हूँ। और यह भी कहने का साहस करता हूँ कि 'गीतावली' की रचना तुलसीदास ने गृह-त्याग के पहले कर ली थी जब वे कवि ही थे, भक्त नहीं हो पाये थे। न इसके प्रारम्भ में किसी देवता की प्रार्थना है और न अन्त

में दीनता-प्रदर्शन की बाढ़। अन्त में सारी राम-कथा की सूची बना देने के बाद तुलसीदास ने :

'जानि सुअवसर भगति दान तब माँगि लियो ।'

और यहीं 'गीतावली' समाप्त कर दी। उस समय उनके मन में न अपनी दीनता की स्मृति थी, न वे भक्ति ही में सराबोर हो पाए थे। 'गीतावली' में एक कवि की आत्मा बोल रही है और 'विनय-पत्रिका' में एक भक्त की। संगीत का सुन्दर शरीर उन्होंने दोनों को दिया है, पर दोनों की अन्तरात्माएँ भिन्न-भिन्न हैं।

'गीतावली' की कविता बहुत उच्च कोटि की है। इसे पढ़कर समाप्त करने के बाद यह धारणा होने लगती है कि कवि ने इसके पश्चात् शीघ्र ही 'मानस' प्रारम्भ किया होगा, क्योंकि 'गीतावली' का काव्य-प्रवाह 'मानस' का रूप धारण किये बिना रुक नहीं सकता था।

'गीतावली' को मैं संवत् १६२५ से २८ तक की रचना मानता हूँ।

'रामाज्ञा-प्रश्नावली' की रचना सं० १६२० और २५ के बीच की जान पड़ती है। इसमें भी 'वाल्मीकि-रामायण' के आधार पर राम-कथा वर्णित है। डॉक्टर ग्रियर्सन ने इसका रचना-काल सं० १६५५ माना है, पर इसकी भाषा और विषय को उपस्थित करने का कवि का ढंग 'मानस' से बहुत पहले का है।

'कवितावली' का प्रारम्भ भी सं० १६१५ के आस-पास हो चुका था। पर इसकी समाप्ति संवत् १६८० के आस-पास कभी हुई होगी। इसमें तुलसीदास के अन्तिम दिनों का इतिहास संचित है।

'कवितावली' का प्रारम्भ मैं सं० १६१५ के आस-पास से इसलिए मानता हूँ कि इसमें कुछ पद्य ऐसे हैं, जो तुलसीदास की छात्रावस्था के मालूम देते हैं, जब कि उनकी प्रवृत्ति समस्या-पूर्ति की तरफ़ अधिक रही होगी। भाषा में भी सहज सौन्दर्य नहीं है। जान-बूझकर उसे सजाने की चेष्टा दिखाई पड़ती है। छन्दों की रचना में भी त्रुटियाँ पाई जाती हैं। जैसे :

तुलसी सो राम के सरोज पानि परसत ही,
टूट्यो मानो बारे ते पुरारि ही पढ़ायो है।

इसमें पहली पंक्ति में एक वर्ण अधिक है। किसी कवि के प्रारम्भिक दिनों में ऐसी भूलें प्रायः हो जाती हैं। 'कवितावली' में रुद्रबीसी और मीन के शनैश्चर का वर्णन है। इससे हमें यह मानने में कोई रुकावट नहीं दिखाई पड़ती कि 'कवितावली' का संकलन कम-से-कम सं० १६७१ तक होता रहा है। इसके बाद 'क्षेमकरी' का सवैया यदि तुलसीदास के अन्तिम काल का

माना जाय, तब तो 'कवितावली' का गर्भ-काल १६८० तक पहुँच जाता है।

'दोहावली' के कुछ दोहे भी संवत् १६२० से १६३१ के बीच के हैं। ऐसे दोहों की भाषा और भाव स्वयं अपने जन्म के साक्षी हैं :

काल तोपची तुपक महि, दारू अनय कराल।
पाप पलीता कठिन गुरु, गोला पुहुमीपाल॥

ऐसे दोहे छात्रावस्था ही के समय के जान पड़ते हैं। अतएव 'दोहावली' के दोहे सं० १६२० से बनने शुरू हुए और सं० १६७१ तक बनते और संग्रह होते रहे। 'दोहावली' के तीन दोहों में तुलसीदास के बाहु-मूल की पीड़ा की चर्चा भी आई है, जो सं० १६६९ और ७१ के बीच में हुई थी।

संवत् १६४० से १६४२ तक का समय तुलसीदास के जीवन में अद्भुत है, क्योंकि इन्हीं दो-तीन वर्षों में उनके कई ग्रन्थ समाप्त हुए और दन्त-कथाओं के अनुसार कई घटनाएँ भी घटीं। सम्भवतः संवत् १६३१ से १६५० तक तुलसीदास की कविता का यौवन-काल था। संवत् १६४२ तक पहुँचते-पहुँचते गीतों, पदों, दोहों, कवित्तों और अन्य छन्दों में बिखरी हुई रचनाओं को अलग-अलग संग्रह का रूप दे दिया गया जान पड़ता है।

मैं 'रामचरितमानस' के प्रसंग में पहले यह लिख चुका हूँ कि अयोध्या-कांड पहले लिखा जा चुका था, तब 'मानस' का प्रारम्भ हुआ और पीछे से वह उसमें अपने स्थान पर जोड़ दिया गया। मेरा अनुमान है कि अयोध्या-कांड सं० १६२५ से १६२८ या ३० तक तुलसीदास के गृह-त्याग के पश्चात् रचा गया है। अयोध्या-कांड को तुलसीदास ने बड़े मनोयोग से लिखा है। उसमें संस्कृत के लगभग डेढ़ सौ ग्रन्थों के भाव मिलते हैं। अतएव उसकी रचना के समय कवि का गहरा अध्ययन भी चलता रहा होगा।

अयोध्या-कांड की रचना अयोध्या में करके वे उसे लेकर काशी आये। गृह-त्याग के बाद एक बार वे काशी में रह चुके थे। उस समय उनकी 'गीतावली', 'कवितावली' के प्रारम्भिक अंश, 'दोहावली' और 'सतसई' के तब तक बने हुए दोहों का प्रचार काशी वालों में होने लगा था। अयोध्या-कांड की रचना करके जब वे फिर काशी आये, तब काशी के शैवों, संन्यासियों और वल्लभ-कुल के गोसाइयों ने उनका विरोध करना प्रारम्भ किया। विरोध का एक रूप यह भी था कि भाषा में कविता क्यों करते हो? संस्कृत में क्यों नहीं करते? इस विरोध का भी एक कारण यह था कि भाषा की कविता होने से सर्व-साधारण ने उसे शीघ्र ही अपना लिया था। इससे संस्कृतज्ञों के स्वार्थों को धक्का लगने की संभावना हो चली थी। अयोध्या-कांड की रचना के बाद

तुलसीदास को काशी में शारीरिक और मानसिक दोनों प्रकार के बहुत कष्ट दिये गए। तब तुलसीदास ने कवि का मार्ग छोड़कर भक्त और सुधारक का मार्ग पकड़ना उचित समझा और वे काशी से अयोध्या जाकर सं० १६३१ में 'मानस' की रचना में प्रवृत्त हुए, और बाल-कांड पूर्ण करके उसी में अयोध्या-कांड को मिला दिया। पहले वे 'वाल्मीकि-रामायण' के आधार पर राम-चरित्र लिखते थे, जैसा कि उन्होंने 'गीतावली' में किया है। बाद को उन्होंने भक्ति-सम्बन्धी प्राचीन ग्रन्थों को समयानुकूल समझकर उनका अनुकरण किया। 'मानस' की रचना संवत् १६३१ से १६३६-३७ तक हुई होगी। इसका कुछ अंश अयोध्या में, कुछ काशी में और कुछ चित्रकूट में भी लिखा गया होगा। और क्या आश्चर्य है, उन्होंने उन्हीं दिनों राजापुर को अपना निवास-स्थान बना लिया हो और वहाँ भी 'मानस' का कुछ अंश लिखा हो।

'मानस' की रचना के बाद हम उसके कवि को विश्राम के लिए दो-तीन वर्ष का अवसर अवश्य देंगे। इस बीच में 'मानस' का प्रचार और उसकी कड़ी-से-कड़ी परीक्षा होती रही। अंत में उसका प्रताप-रवि सब प्रकार के झंझावातों, घन-घटाओं और नीहारों से मुक्त होकर अपनी प्रखर ज्योति से चमक पड़ा और फिर उस पर तुलसीदास का कोई विरोधी आवरण न डाल सका।

'मानस' के बाद की सबसे निकट की रचना 'पार्वती-मंगल' है। 'पार्वती-मंगल' में 'मानस' के भाव ही नहीं, शब्द और वाक्य भी रख लिये गए हैं। 'पार्वती-मंगल' में उसका रचना-काल :

'जय संवत् फागुन सुदि पाँचै गुरु दिन'

दिया हुआ है। स्व० पंडित सुधाकर द्विवेदी की गणना के अनुसार उक्त योग-सहित 'जय'-संवत् सं० १६४३ में पड़ा था अतएव 'पार्वती-मंगल' की रचना सं० १६४३ में समझनी चाहिए।

'जानकी-मंगल' की रचना 'पार्वती-मंगल' की रचना के समाप्त होने के दो ही दिन बाद रविवार को हुई थी। 'जानकी-मंगल' में तुलसीदास स्वयं लिखते हैं :

'सुभ दिन रच्यौ स्वयंवर मंगलदायक'

'सुभ-दिन' से उनका अभिप्राय रविवार से है। क्योंकि 'पंचनामे' में भी यह इसी अर्थ में व्यवहृत हुआ है :

"संवत् १६६९ समय कुआर सुदि तेरसी वार शुभदिने लिपीतं"

मेरे एक ज्योतिषी मित्र ने गणना करके मुझे बताया है कि यह शुभ दिन रविवार को पड़ा था।

अतएव 'पार्वती-मंगल' को वृहस्पतिवार को समाप्त करके लगे हाथों तुलसीदास ने दो दिन के परिश्रम से 'जानकी-मंगल' भी समाप्त कर लिया। इसी से उन्होंने उसमें संवत् आदि न देकर केवल दिन लिख दिया जान पड़ता है। दो-ढाई दिन में 'जानकी-मंगल' का लिखा जाना तुलसीदास-जैसे सिद्ध कवि के लिए कठिन नहीं है। 'जानकी-मंगल' को 'पार्वती-मंगल' से दस-बीस वर्ष पहले की रचना मानना कवि-स्वभाव की अनभिज्ञता का द्योतक है। 'पार्वती-मंगल' और 'जानकी-मंगल' दोनों एक ही विचार-धारा में बैठकर लिखे गए हैं। यह उनके विषय ही से नहीं, उनकी कविता से भी प्रकट है।

यहीं पर 'रामललानहछू' का रचना-काल भी आ पड़ता है। 'पार्वती-मंगल', 'जानकी-मंगल' और 'रामललानहछू' के प्रसंग इतने निकट के हैं कि इनकी रचनाओं में लम्बे समय का अन्तर डालना इस बात को स्वीकार करना है कि तुलसीदास ऐसे कवि को इनके लिए तीन बार, सो भी एक ही वर्ष या महीने में नहीं, पन्द्रह-बीस वर्षों के अन्तर से आतुर होने की बड़ी आवश्यकता जान पड़ी थी। ये तीनों छोटे-छोटे प्रबन्ध हैं और कवि की एक ही बैठक में लिखे गए जान पड़ते हैं। 'रामललानहछू' तुलसीदास की रचनाओं में सबसे छोटा बीस ही चौपदों का एक प्रबन्ध-काव्य है। इसके लिखने में दो-एक घण्टों से अधिक समय नहीं लग सकता। 'जानकी-मंगल' की अन्तिम दो पंक्तियों में इसकी ओर एक संकेत भी है :

> उपवीत ब्याह उछाह जे सियराम मङ्गल गावहीं।
> तुलसी सकल कल्यान ते नर-नारि अनुदिन पावहीं॥

'पार्वती-मंगल' की अन्तिम पंक्तियाँ केवल यह प्रकट करती हैं कि 'कल्यान काज उछाह ब्याह' के लिए उसकी रचना हुई थी, उसमें उपवीत का नाम न होने से यह तो निर्विवाद ही है कि तुलसीदास ने उसे मुख्यतः विवाह के लिए रचा था। यज्ञोपवीत के लिए 'जानकी-मंगल' भी नहीं रचा गया था। अतएव 'जानकी-मंगल' की उक्त सूचना के अनुसार तुलसीदास उपवीत के लिए कोई एक 'राम-मंगल' भी लिख चुके होंगे। यह उनके कथन से स्पष्ट ध्वनित होता है और वह 'रामललानहछू' के सिवा और क्या हो सकता है? अतएव मेरी राय में 'पार्वती-मंगल' के बीच में 'रामललानहछू' का रचना-काल मानना चाहिए।

संवत् १६४३ और १६५० के बीच में 'श्रीकृष्ण-गीतावली' का रचना-काल है। यह गीति-काव्य तुलसीदास ने या तो वृन्दावन में, जब वे नाभादास और नन्ददास से मिलने गये थे तब, या व्रज से लौट आने के बाद रचा होगा।

ब्रजभाषा में उनकी यह एक सफल रचना है।

इसके बाद अब केवल दो ग्रन्थ बचते हैं, जिनका रचना-काल हमें निश्चित करना है। एक 'बरवै-रामायण' और दूसरा 'विनय-पत्रिका'।

कहा जाता है कि 'बरवै-रामायण' को तुलसीदास ने रहीम का बरवै-नायिका-भेद देखकर और उसके छंद पर मुग्ध होकर रचा था। मुझे इस कथन में कुछ सार नहीं दिखाई पड़ता। अभी तो इसी बात का निश्चय नहीं हो पाया कि रहीम से तुलसीदास का परिचय था भी या नहीं। मेरा तो अनुमान है कि तुलसीदास तत्कालीन राज-कर्मचारियों से दूर रहना ही पसन्द करते थे। 'रामचरितमानस' के बाल-कांड की ये चौपाइयाँ कुछ गूढ़ार्थ भी रखती हैं :

देखत भीम रूप सब पापी। निसिचर निकर देव परितापी॥
करहिं उपद्रव असुर निकाया। नाना रूप धरहिं करि माया॥
जेहि बिधि होइ धरम निरमूला। सो सब करहिं वेद प्रतिकूला॥
जेहि-जेहि देस धेनु दिज पावहिं। नगर गाँउँ पुर आगि लगावहिं॥
सुभ आचरन कतहुँ नहिं होई। देव-विप्र-गुरु मान न कोई॥
नहिं हरि-भगति जग्य जप दाना। सपनेहुँ सुनिअ न वेद-पुराना॥

जप जोग बिरागा तप मख भागा स्रवन सुनै दससीसा।
आपुन उठि धावै रहै न पावै धरि सब घालै खीसा॥
अस भ्रष्ट अचारा भा संसारा धरम सुनिय नहिं काना।
तेहि बहु बिधि त्रासै देह निकासै जो कह वेद-पुराना॥

बरनि न जाइ अनीति, घोर निसाचर जो करहिं।
हिंसा पर अति प्रीति, तिन्ह के पापहिं कवनि मिति॥

बाढ़े खल बहु चोर जुआरा। जे ताकहिं परधन परदारा॥
मानहिं मातु पिता नहिं देवा। साधुन्ह सन करवावहिं सेवा॥
जिन्हके ये आचरन भवानी। ते जानहु निसिचर सब प्रानी॥

ऊपर के छंदों में तुलसीदास ने शिवजी के मुख से अपने समय की दशा का वर्णन कराया है। ऐसे मनोभाव लेकर तुलसीदास 'निसिचर सम प्रानियों' से दूर ही रहते होंगे, इसमें संदेह ही क्या है ? मेरा अनुमान है कि तुलसीदास का अकबर या उसके किसी दरबारी से प्रत्यक्ष परिचय नहीं था। रहीम से परिचय होता तो यह सम्भव नहीं था कि अबुलफज़ल या अकबर से न होता। रहीम तो अकबर के महामन्त्री थे। वे अकबर से तुलसीदास को अवश्य मिलाये होते।

अतएव यह अनुमान करना कि तुलसीदास ने रहीम का अनुकरण करके

बरवै लिखे, मुझे सत्य नहीं जान पड़ता। रहीम ही ने तुलसीदास का अनुकरण किया हो, यह संभव हो सकता है। बरवै नायिका-भेद में एक बरवै है :

> छीन मलिन विषभैया, अवगुन तीन।
> मोहिं कहत विधु बदनी, पिय मति हीन॥

इसी से मिलता-जुलता बाल-कांड में तुलसीदास का यह दोहा है :

> जनम सिंधु पुनि बंधु विपु, दिन मलीन सकलंक।
> सिय मुख समता पाव किमि, चंद बापुरो रंक॥

यह दोहा सं० १६३१ में लिखा गया और बरवै नायिका-भेद के लिए कहा जाता है कि वह सं० १६५६ या १६६० के आस-पास का है। अतएव तुलसीदास ने रहीम के भाव का अपहरण किया, यह कैसे संभव है; ऐसे ही और भी तुलसीदास के कई दोहों के भाव रहीम बरवै में आये हैं। वे दोहे बरवै से बीसों वर्ष पहले लिखे जा चुके थे; तब रहीम के बरवै को प्रधानता देना कहाँ तक उचित है? यह विचारणीय है।

मेरे अनुमान से भी 'बरवै-रामायण' की रचना सं० १६६० के आस-पास की जान पड़ती है।

'विनय-पत्रिका' तुलसीदास का अन्तिम ग्रन्थ है। इसका संकलन तुलसीदास ने स्वयं किया था। इसमें किसी अन्य का हाथ नहीं लगा होगा; क्योंकि यह आदि से अन्त तक एक उद्देश्य को लक्ष्य में रखकर लिखा गया है। इसमें दूसरों के हाथ लगाने की गुञ्जाइश ही नहीं थी। इसकी रचना कवि की एक बैठक की नहीं जान पड़ती। संभव है, संवत् १६४० में इसके कुछ पद बने हों और फिर सबको मिलाकर संवत् १६६६ के बाद 'पत्रिका' पूर्ण कर दी गई हो। इसमें काशी की महामारी का कहीं भी संकेत नहीं है। इससे निश्चय ही यह संवत् १६६९ के पहले बन चुकी थी।

'नागरी-प्रचारिणी-पत्रिका' के प्रथम वर्ष के प्रथम अङ्क में इसके सम्बन्ध में श्रीश्यामसुन्दरदास का एक लेख निकला है, जिसमें 'विनयावली' नाम की एक हस्त-लिखित पुस्तक की प्राप्ति की सूचना है, जो संवत् १६६६ की लिखी हुई थी और जिसमें केवल १७५ पद थे। प्रायः वे सब पद 'विनय-पत्रिका' में मिलते हैं। इस समय 'विनय-पत्रिका' में २७९ पद हैं। अतएव शेष १०४ पद या तो संवत् १६६६ तक बने ही नहीं थे, या नकल करने वाले ने १७५ ही पद चुन-चुनकर लिखे थे। यदि पदों की कमी का पहला ही कारण मान लिया जाय, तो यह भी स्वीकार कर लेना पड़ेगा कि तुलसीदास ने 'गीतावली', 'दोहावली,' 'कवितावली' की तरह पहले एक 'विनयावली' लिखी थी; पीछे उसे

'पत्रिका' का रूप दे दिया था। यह रूप उन्होंने तब दिया, जब वे अन्तिम बार केवल मरने ही के लिए काशी में जा बैठे थे। मेरी राय में 'विनय-पत्रिका' को तुलसीदास के हाथ से संवत् १६६८ के आस-पास वर्तमान रूप प्राप्त हुआ है। संवत् १६६८ के बाद वृद्धावस्था में तुलसीदास ने जो कुछ लिखा, वह 'कवितावली' में है।

यहाँ अपने मत के अनुसार पाठकों की सुविधा के लिए तुलसीदास की रचनाओं के काल-क्रम की एक तालिका देता हूँ—

कवितावली	सं० १६१५ से १६८० तक
दोहावली	,, १६२० से १६७१ तक
वैराग्य-सन्दीपिनी	,, १६२०
गीतावली	,, १६२५
रामाज्ञा-प्रश्न	,, १६२० से १६२५ तक
अयोध्या-कांड	,, १५२५ से १६२८ तक
रामचरितमानस	,, १६३१
पार्वती-मंगल	,, १६४३
रामललानहछू	,, १६४३
जानकी-मंगल	,, १६४३
श्रीकृष्ण-गीतावली	,, १६४४ से १६५० तक
बरवै रामायण	,, १६६० के लगभग
विनय-पत्रिका	,, १६६८

रचनाओं की भाषा, शैली और उनमें वर्णित कथाओं के आधार पर उनका काल-क्रम निश्चित करने में कई कठिनाइयाँ हैं। एक तो यह है कि जितने संग्रह-ग्रन्थ हैं, वे किसी एक समय के रचे हुए नहीं हैं; इससे सम्पूर्ण ग्रन्थ की भाषा एक-सी नहीं हो सकती और संग्रह-कर्ता अपनी रुचि के अनुसार पदों को आगे-पीछे भी रख सकता है; इससे भाषा का एक क्रमिक प्रवाह किसी संग्रह-ग्रन्थ में नहीं मिल सकता। भाषा और शैली का सम्बन्ध विषय से भी तो रहता है। किसी कवि की सफलता इसी में है कि वह विषय के अनुसार भाषा और शैली का उपयोग करे। 'पार्वती-मंगल,' 'जानकी-मंगल,' और 'राम-'ललानहछू' स्त्रियों के लिए लिखे गए थे। इससे इनकी भाषा 'मानस' या 'विनय-पत्रिका'-जैसी नहीं है और होनी भी क्यों चाहिए ?

यह भी आक्षेप किया जाता है कि 'मानस' के बाद तुलसीदास को वैसा खुला शृङ्गार नहीं लिखना चाहिए, जैसा उन्होंने 'रामललानहछू' में लिखा

है। मेरी राय में ऐसा तर्क करने वाले यह बात भूल जाते हैं कि तुलसीदास एक कवि थे और वे जीवन के अन्त समय तक कवि बने रहे। जो विषय उन्होंने जिस समय लिखा,-कवि की हैसियत से उसी में तन्मय होकर उन्होंने उसे लिखा। 'बरवै रामायण' को भी उन्होंने कवि की हैसियत ही से लिखा था। उसमें भी शृङ्गार-रस की यथेष्ट मात्रा है।

कथाओं पर भी विचार कर लेना चाहिए। कोई कथा किसी संग्रह में नहीं है, इसी से वह आगे या पीछे का मान लिया जाय, यह युक्ति-संगत नहीं है। ऐसा जान पड़ता है कि 'मानस' से पहले तुलसीदास ने 'गीतावली' और 'कवितावली' में जितने पद्य लिखे थे, उनमें से जिनके भावों को उन्होंने 'मानस' में ले लिया, उन्हें 'गीतावली' या 'कवितावली' में से बिलकुल निकाल दिया। इसीसे उनके कई काण्ड बहुत छोटे-छोटे हो गए है।

कहा जाता है कि 'बरवै रामायण' एक बड़ा ग्रन्थ था। मुझे इसमें सचाई मालूम होती है। मैंने संवत् १८७३ के 'बरवै रामायण' की हस्त लिखित प्रति जौनपुर के राजा श्रीकृष्णदत्त दुबेजी के पुस्तकालय में देखी है। उसमें नागरी-प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित, 'बरवै रामायण' से बहुत अधिक छंद हैं। अतएव 'बरवै रामायण' के वर्तमान रूप के आधार पर कोई निर्णय सत्य-मूलक नहीं हो सकता।

३

अरबी-फ़ारसी के शब्द

तुलसीदास ने अपनी रचनाओं में इतने अधिक अरबी-फ़ारसी के शब्दों का उपयोग किया है, जितना शायद हिन्दी के किसी पुराने और नये कवि ने नहीं किया है। तुलसीदास-जैसे हिन्दू-संस्कृति के प्रबल समर्थक और धार्मिक कवि के लिए यह कम आश्चर्य की बात नहीं है।

मेरा अनुमान ही नहीं, दृढ़ विश्वास भी है कि तुलसीदास अपने समय की राज-भाषा से अभिज्ञ थे। और यही कारण है कि उन्होंने अपनी कविता में स्वतन्त्रतापूर्वक राज-भाषा के शब्दों का व्यवहार किया है। उन्होंने जो यह लिखा है :

फूलइ फलइ न बेंत, जदपि सुधा बरसहिं जलद।

यह तो शेखसादी की इन पंक्तियों का अक्षरशः अनुवाद ही है :—

अब्र गर आब ज़िन्दगी बारद,
हरगिज़ अज़ शाख बेद बर नखुरीं।

राज-भाषा का प्रभाव तुलसीदास ही पर पड़ा हो, यह बात नहीं है, संस्कृत-कवि भी उससे अछूते नहीं बचे थे। लोलिम्बराज ने 'वैद्यावतंस' में 'सुलतान' और 'पादशाह' शब्दों को बड़े गर्व के साथ ग्रहण किया है :

हुतवहहुतजंघाजानुमांसप्रभावा—
दधिगतगिरिजायाः स्तन्यपीयूषपानः।
रचयति चरकादीन् वीक्ष्य वैद्यावतंसम्
कविकुलसुलतानो लाललोलिम्बराजः॥

समस्त पृथ्वीपति पूजनीयो
दिगङ्गनाश्लिष्टयशःशरीरः
गुणिप्रिय ग्रन्थममुं व्यतानी—
ल्लोलिम्बराजः कविपादशाहः॥

यहाँ मैं अरबी-फ़ारसी के उन शब्दों की सूची देता हूँ, जिन्हें मैंने तुलसी-

दास को पढ़ते समय पकड़ लिया था। इनमें 'तुलसी-सतसई' के शब्द मैंने कम लिये हैं। और सम्भव है अन्य रचनाओं में आये हुए कुछ और भी शब्द छूट गए हों। बहुत से शब्द तो ऐसे भी छूट गए होंगे, जिन्हें मैं जानता ही न होऊंगा कि वे अरबी-फ़ारसी के हैं या हिन्दी के। जैसे—एक 'तराक' शब्द को मैं हिन्दी का देहाती शब्द समझता था; पर फ़ारसी के कोश में देखा, तो वह अरबी का निकला। ऐसे ही और भी होंगे।

रामचरितमानस—

बाल-काण्ड

अ० =अरबी; फ़ा० =फ़ारसी; हि० =हिन्दी।

शब्द प्रमाण

१—जहाना—(फ़ा) जे जड़ चेतन जीव जहाना।

२—नीक—(नेक—फ़ा) जो जेहि भाव नीक तेहि सोई।

३—पोच—(फ़ा) भलेउ पोच सब विधि उपजाये।

४—कागद—(कागज़—फ़ा) सत्य कहौ लिख कागद कोरे।

५—अन्देसा—(फ़ा) असमंजस अस मोहिं अँदेसा।

६—विबाकी—(वेबाक़—फ़ा) सहित सेन सुन कीन्ह बिबाकी।

७—ग़रीब नेवाज़ (फ़ा)—गई बहोरि गरीबनेवाजू।

८—साहब—(फ़) सरल सबल साहब रघुराजू।

९—गनी—(अ०) गनी गरीब ग्राम नय नागर।

१०—बाग़—(फ़ा) जनु सरि तीर तीर बन बागा।

११—तीर—(फ़ा) तकि तकि तीर महीस चलावा।

१२—बराती (बरात-अ०) उमामहेस विवाह बराती।

१३—विदा (विदा—फ़ा०) मुनि तव विदा माँगि त्रिपुरारी।

१४—लालची (लालच—फ़ा०) मन डर लोचन लालची।

१५—रुख (रुख—फ़ा०) शंकर रुख अवलोकि भवानी।

१६—लायक (लायक—फ़ा०) देखा विधि विचारि सब लायक।

१७—तालाव (ताल हिं+आव—फा० तालाव) संगम करहिं तलाव तलाई।

१८—सही (सही—फ़ा०) मदन अनल सखा सही।

१९—दूलह (दूल्हा—अ०) नहिं बरात दूलह अनुरूपा।

२०—खीस (खीस—फ़ा०) लगे करन मख खीस।

२१—जिनस (फ़ा०) बहु जिनस प्रेत पिसाच जोगि।

२२—जमात (जमाअत—फ़ा०) जमात बरनत नहिं बनै।

२३—असवारा (सवार—फ़ा०) बरु बौराह बरद असवारा।
२४—खबरि (खबर—फ़ा०) असुर तापसहिं खबरि जनाई।
२५—निसान (निशान—फ़ा०) घरेहि नगर निसान बजाई।
२६—बजारु (बाजार—फ़ा०) चारु बजारु विचित्र अँबारी।
२७—अँबारी (अम्मारी—अ०) " "
२८—चाकी (चाक—फ़ा०) तिलक रेख सोभाजनु चाकी।
२९—गच (गच—फ़ा०) अति विस्तर चारु गच ढारी।
३०—जुबान (जवान—फ़ा०) बाल जुबान जरठ नर-नारी।
३१—सक (शंक—फ़ा०) राम चाप तोरब सक नाहीं।
३२—जहाज (जहाज—फ़ा०) संकर चाप जहाज।
३३—ढोल (दुह्ल—अ०) भेरि ढोल दुन्दुभी सुहाई।
३४—बाज (बाज—फ़ा०) बाज झपट जनु हवा लुकाने।
३५—फ़िरोजा (पिरोजा—फ़ा०) मानिक मरकत कुलिस पिरोजा।
३६—गुनह (गुनाह—फ़ा०) गुनह लखन कर हम पर रोसू।
३७—जीन (जीन—फ़ा०) रुचि-रुचि जीन तुरंग तिन्ह साजे।
३८—पाइक (पायक—फ़ा०) सरन करहिं पाइक फहराहीं।
३९—बकसीस (बाख्शिश—फ़ा०) मैं बकसीस जानकन्हि दीन्ही।
४०—लगाम (लगाय—फ़ा०) किंकिन लगाय लगाय ललित।
४१—सिरताज (फ़ा०) जनवासे गवने मुक्तिसकल भूप सिरताज।
४२—मनसा (मंशा—फ़ा०) मनसा विस्व विजय कह कीन्हीं।
४३—चारा (चारा—फ़ा०) चारा चाखु बाम दिसि लेई।
४४—सहनाई (शहनाई—फ़ा०) सरस राग बाजहिं सहनाई।
४५—बायन (बैआनह—फ़ा०) भले भवन अब बायन दीन्हा।
४६—तीर (फ़ा०) ताकि-तकि तीर महीस चलावा।
४७—दाइज (जहेज—फ़ा०) कहिन जाइ कछु दाइज भूरी।
४८—चूकइ (चूक—फ़ा०) भलेउ प्रकृति बस चुकइ भलाई।

अयोध्या-काण्ड

४९—दरबार (फ़ा०) धीर धूप दरबार।
५०—कुलह (कुलाह—फ़ा) कुमति कुबिहँग कुलह जनु खोली।
५१—सजाई (फ़ा०—सजा) तौ बिधि देइहि मोहि सजाई।
५२—सहमि (सहम—फ़ा) गयउ सहमि नहि कछु कहि आवा।
५३—नेब (फ़ा०—नायब) राम लखन कर नेब।

५४—कमान (फ़ा०) जीय क़मान वचन सर नाना ।
५५—बरु (फ़ा०—बल्कि) प्रान जाहु बरु वचन न जाई ।
५६—सोरू (सोरू—फ़ा०) गे रघुनाथ भयउ अति सोरू ।
५७—बेहालू (अ०—बेहाल) जनु बिनु पंख बिहंग बेहालू ।
५८—कवारू (कवार—फ़ा०) नहिं जानेउ कछु और कवारू ।
५९—मजूरी (मजदूरी—फ़ा०) बहुत काल में कीन्ह मजूरी ।
६०—गरदनि (फ़ा०) सो जानइ जनु गरदनि मारी ।
६१—बाहेर (अ०) लोक बेद बाहेर सब भाँती ।
६२—गुदारा (गुजर—फ़ा०) या पिनुसार गुदारा लाना ।
६३—कोतल (अ०) कोतल संग जाहिं डोरि आये ।
६४—बँसूला (बसूला—फ़ा०) तेहि हमार हित कीन्ह बसूला ।
६५—जोरा (जोर—फ़ा०) उत साहिब सेवा बस जोरा ।
६६—कुलि (कुल—फ़ा०) माया जीव करम कुलि काला ।
६७—खुनिस (खुन्स—फ़ा०) खेलत खुनसि न कबहूँ देखी ।
६८—खुआरू (ख्वार—फ़ा०) हमहिं सहित सब होत खुआरू ।
६९—सादे (सारद—फ़ा०) सहित समाज राज सब सादे ।
७०—खाले (खाल—फ़ा०) चलेहु कुमग पग परहिं न खाले ।

अरण्य-कांड

७१—बाज (बाज़—फ़ा०) चातु सदा नो भव खग बाजा ।
७२—तलावा (तालाब—हि० अ०) देखि राम अति रुचिर तलावा ।
७३—ताजी (फ़ा०) पारावत मराल सब ताजी ।
७४—सहनाई (शहनाई—फ़ा०) मधुकर मुखर भेरि सहनाई ।
७५—लायक—बध लायक नहिं पुरुष अनूपा ।

सुन्दर-कांड

७६—बाग (फ़ा०) बन बाग उपवन वाटिका ।
७७—बेचारी (बेचारः—फ़ा०) जिमि दसनन महँ जीभि बेचारी ।
७८—सीसा (सीस—फ़ा०) केहि के बल घालेसि बन खीसा ।
७९—ढोल (दुहुल—अ०) बाजहिं ढोल देहिं सब तारी ।
८०—तन (तमा—फ़ा०) मोह मूल बहु सूलप्रद त्यागहु तम अभिमान ।
८१—सहिदानी (शहिदानी—फ़ा०) दीन्ह राम तुम्ह कहँ सहिदानी ।

लंका-कांड

८२—ख़ामा—राम विमुख ठोरहिं मन ख़ामा ।

८३—चौगाना (चौगान—फ़ा०) खेहिहहिं भालु कीस चौगाना ।
८४—लबार (फ़ा०) मिलि तपसिन्ह तें भयसि लवारा ।
८५—गर्दा (गर्द—फ़ा०) कोटिन्ह मीजि मिलव महि गर्दा ।
८६—हवाले (अ०) आजु करौं खल काल हवाले ।
८७ –पाले (पल्ला—फ़ा०) परेहु कठिन रावन के पाले ।
८८—पयादे (पयाद—फ़ा०) देवन्ह प्रभुहि पयादे देखा ।
८९ – लात—हृदय माँझ तेहि मारेसि लाता ।

उत्तर-कांड

९०—बजाज (फ़ा०—बज्जाज) बैठे बजाज सराफ बनिक
अनेक मनहुँ कुबेर ते ।
९१—सराफ (फ़ा०—सर्राफ) बैठे बजाज सराफ बनिक
अनेक मनहुँ कुबेर ते ।
९२—फराक (फ़ा०—फारिग) दूरि फराक रुचिर सो धारा ।
९३—हुनर (अ०) इन्ह कर हुनर न कउनिहुँ ओरा ।
९४—वा (फ़ा०) पुरुष नपुंसक नारि वा जीव चराचर कोइ ।
९५—दुनी (फ़ा०—दुनिया) कवि वृन्द उदार दुनी न सुनी ।
९६—किरिच—काँच किरिच बदले ते लेहीं ।
९७ —बदले (फ़ा०—बदल) काँच किरिच बदले ते लेहीं ।
९८— दाम (फ़ा०) कामिहि नारि पिआरि जिमि लोमिहि प्रिय जिमि दाम ।

गीतावली

१—अबीर (अ०) वीथिन्ह कुंकुम कीच अरगजा अगर अबीर उड़ाई ।
२—अरगजा (फ़ा० - अरगज) ,, ,,
३—निसान (फ़ा०—निशान) भूपति सदन सोहिलो सुनि बाजैं गहगहे
निसान ।
४—बजार (फ़ा०—बाजार) सींचि सुगंध रचैं चौकें गृह आँगन गली बजार ।
५—गुलाल (फ़ा) कुंकुम अगर अरगजा "छिरकहिं भरहिं" गुलाल अबीर ।
६—सहन (अ०) रानिन दिये बसन मनि भूषन राजा सहन भंडार ।
७—दुनी (अ०—दुनिया) गान निसान कुलाहल कौतुक देखत दुनी सिहानी ।
८—बलाइ (अ०—बला) तनु तिल-तिल करि वारि राम पर लैहौं रोग
बलाइहो ।
९—चौगान (फ़ा) अनुज सखा सिसु संग लै खेलन जैहैं चौगान ।
१०—पासे (फा०—पासा) राखि बचन मुनि कौसिला लखि सुढर पासे ढरनि ।

११—बाग (फ़ा० –बाग) ह्वै वरु विहँग विलोकिय बालक वसि वन उपवन बाग।

१२—चैन (फ़ा०—चैन) मनहुँ प्रभु जन्य सुनि चैन अमरावती।

१३—निहालु (फ़ा०) करत लोक लोचन निहालु।

१४—तरकसी (फ़ा०—तरकश) तैसी तरकसी कटि कसे पट पियरे।

१५—जरकसी (फ़ा०—जरकश) सुन्दर वदन सिर पगिया जरकसी।

१६—सूरति (अ०—सूरत) मूरति की सूरति कही न परै तुलसी पै।

१७—बकसत (फ़ा०—बखशिश) प्रभु वकसत गज वाजि वसन मनि।

१८—सिरताज (फ़ा०—सरताज) भली कही भूपति त्रिभुवन में को सुकृती सिरताज।

१९—बिबाके (फ़ा०—बेबाक) ये सनेह बिबस विदेहता बिबाके हैं।

२०—साहेब (अ० साहब) याग तुलसी को भले साहेब को जनुभो।

२१—खसम (अ०—खसम) राम के प्रसाद गुरु गौतम खसम भये।

२२—रुख (फ़ा०—रुख) मनहु मघा जल उमगि उदधि रुख चले नदी नद नारे।

२३—लायक (फ़ा० –लायक) को सोहि है और को लायक रघुनाथ कहि विहाइ कै।

२४—बरजोर (सं०—बल+फा०—जोर) कंधर बिसाल बाहु बड़े बरजोर है।

२५—गरीब (अ०—गरीब) देखियत भूप मोर कैसे उडुगन गरत गरीब गहानि हैं।

२६—अकस (अ०) बंदि बोले विरद अकस उपजाय कै।

२७—हाल (अ०) आये विधि हरि हारि सोई हाल भई है।

२८—पोच (फ़ा०) सोचत जनक पोच पेंच परि गई है।

२९—पेंच (फ़ा० —पेंचीदन)   "   "   "

३०—खुनिस (फ़ा०—खुन्स) गति कहे प्रगट खुनिस खासी खई है।

३१—खासी (अ०—खास)   "   "   "

३२—डफ (फ़ा०—दफ़) झिल्लि झाँझ झरना डफ नव मृदंग निसान।

३३—दूलह (फ़ा०) छवि तेहि काल की कृपालु सीता दूलह की।

३४—अंदेसो (फ़ा०—अंदेशा) तुलसी मोहि और सबहिन तें इनको बड़ो अंदेसो।

३५—पाले (फ़ा०—पल्ला) सिरनाइ आयसु पाइ गवने परम निधि पाले परी।

३६—हालु (अ०—हाल) दास तुलसी प्रभुहि काहुन कह्यो मेरो हालु।
३७—सक (फ़ा०—शक) विरह अनल स्वासा समीर निज तनु जरिबे कहाँ रही न कछु सक।
३८—सोर (फ़ा०—शोर) चली चमू चहुँ ओर सोर कछु बनै न बरनै भीर।
३९—जहाज (फ़ा० -जहाज) नाहिन मोहिं और कतहूँ कछु जैसे काग जहाज के।
४०—बाज (फ़ा०—बाज) आयो सरन सुख पद पंकज चोथे रावन बाज के।
४१—सई (अ०) खग मृग सबर निसाचर सबकी पूंजी बिनु बाढ़ी सई।
४२—गनी (अ०—गनी) रंक निवाज रंक राजा किये गरे गरब गरि-गरि गनी।
४३—मनी (अ०) होय भलो ऐसे ही अजहुँ गये रामसरन परिहरि मनी।
४४—क़सम (फ़ा०—क़सम) भुजा उठाय साखि संकर करि कसम खाय तुलसी भनी।
४५—सीपर (फ़ा०—सिपर) लगति साँग बिभीषन ही पर सीपर आपु भये हैं।
४६—दरार (फ़ा०—दर्रा) सुमिरि सनेह सुमित्रा-सुत को दरकि दरार न आई।
४७—साहैं (फ़ा०—शाह) सकल भुवन मंगल मंदिर के द्वार बिसाल सुहाई साहैं।
४८—गच (फ़ा०) गृह-गृह रचे हिंडोलना यहि गच काँच सुढार।
४९—परदा (फ़ा०) चित्र विचित्र चहूँदिसि परदा फटिक पगार॥
५०—बंद (फ़ा०—बंदिश) नगर रचना सिखन को विधि तकत बहु विधि बंद।
५१—सजाइ (फ़ा०—सज़ा) जानि जिय विधि बाम दीन्हों मोहिं सपय सजाइ।
५२—विदा (फ़ा०—विदा) माँगि मुनि सों विदा गवने भोरसो सुख पाइ।
५३—सही (अ०—सरीय) तुलसी भरत समुझि सुनि राखी रामसनेह सही।
५४—नग (फ़ा०) सोभासिंधु संभव से नीके-नीके नग हे।
५५—चारो (फ़ा० चारा) तुलसी और प्रीति की चरचा करत कहा कछु चारो।
५६—खाल (खाल) निज कर खाल खेंचि या तनुतें जो पितु पानहि करावो।

कवितावली

१—बाजेबाजे (फ़ा०—बाजबाज) बाजेबाजे बीरबाहु धुनत समाज के।
२—गुमान (फ़ा०) जिनके गुमान सदा सालिम संग्राम को।
३—सालिम (फ़ा०) „ „ „
४—सही (अ०—सहीह) सही भनी लोचन भुसुण्डि बढ़ बारिदो।

५—परदा (फ़ा०—पर्दः) नारद की परदा न नारद सो पारिखो।

६—नग (फ़ा०—नगीनः) राम को रूप निहारति जानकि कंकन के नग की परछाहीं।

७—सरीकता (फ़ा०—शरीक) रावरी पिनाक में सरीकता कहाँ रही।

८—गरूर (फ़ा०—गुरूर) गोरो गरूर गुमान भरो कहो कौसिक छोटो सो ढोटो है काको।

९—लायक (फ़ा०—लायक) लायक है भृगुनायक सों।

१०—बाप (फ़ा०—बाबा) राजिवलोचन राम चले तजि बाप को राज बटाऊ की नाईं।

११—रुख (फ़ा०) प्रभु रुख पाइकै बोलाइ बालि घरनिहि।

१२—पोच (फ़ा०) कहिहै जग पोच न सोच कछू।

१३—बाग (फ़ा०—बाग़) देखे बर बापिका तड़ाग बाग को बनाव।

१४—तहस-नहस (फ़ा०) तहस-नहस कियो साहसी समीर को।

१५—निसान (फ़ा०—निशान) पाछे लोग बाजत निसान ढोल तूर हैं।

१६—ढोल (अ०—दुहल) " " "

१७—कँगूरा (अ०—कंगूरह) कौतुकी कपीस कूदि कनक कँगूरा चढ़ि।

१८—साहब (अ०) जाको ऐसो दूत सो साहब अबै आवनो।

१९—असबाब (फ़ा०) सब असबाब डाढ़ो मैं न काढ़ो तैं न काढ़ो।

२०—सहन (अ०) जिय की परी सँभार सहन भँडार को।

२१—पाइमाल (फ़ा०—पायमाल) परे पाइमाल जात।

२२—बजार (फ़ा०—बाजार) बीथिका बजार प्रति अटनि अगार प्रति।

२३—सौंज—एक करें धौंज, एक कहै काढ़ौ सौंज।

२४—ताज (अ०)—जहाँ बाँका बीर तोसों सूर सिर ताज है।

२५—बलार (फ़ा०) विविध विधान धान बरत बखार ही।

२६—सहदानि (फ़ा०—शाहिद) मातु कृपा कीजै सहिदानि दीजै।

२७—तलफति (अ०—तलफ़) कनक कराहीं लंक तलफति ताय सों।

२८—जहाज (फ़ा०) बूड़त जहाज बच्यो पथिक समाज मानो।

२९—बागबान (फ़ा०—बागबान) मारे बागवान ते पुकारत देवान गे।

३०—देवान (फ़ा०—दीवान) " " "

३१—जहान (फ़ा०) नर्कनि चाकि राखी रासि जाँगर जहान भो।

३२—निवाजिहैं (फ़ा०—निवाजिश) राज दै निवाजिहैं दजाइ कै विभीष पाये जू।

३३—कुलि (अ०—कुल) बँधायो सेतु उतरे कटक कुलि।

३४—सकत (फ़ा०—सख्त) सकत संग्राम दसकंध काध्यो।
३५—हजारी (फ़ा०—हजार) विनु हाथ भये हनि हाथ हजारी।
३६—बजारी (फ़ा०—बाजार) बात बड़ो सो बड़ोई बजारी।
३७—फ़हम (अ०—फहम) पुलक सरीर सेना करत फ़हम ही।
३८—सहम (फ़ा०) तुलसी दुरावै मुख सूखत सहम ही।
३९—रहम (अ०) सबको भलो है राजा राम के रहम ही।
४०—सोर (फ़ा०—शोर) सोर चहुँओर लंक आये जुवराज के।
४१—लवा (फ़ा०) लवा ज्यों लुकात तुलसी झपेटे बाज के।
४२—बाज (अ०—बाज) ,, ,, ,,
४३—बखसीस (फ़ा०—बाख्शिश) बखसीस रेस जू की खीस होत देखियत।
४४—खीस (फ़ा०—खीस) ,, ,, ,,
४५—हाल (अ०) ऐसिय हाल भई तोहि धौं।
४६—बचा (फ़ा०—बच्चा) जग में बलसालि है बालि बचा।
४७—करेजो (फ़ा०—कलेजा) आयो सोई काम, पै करेजो कसकतु है।
४८—बाज (अ०—बअज) कहे की न लाज पिय अजहूँ न आये बाज।
४९—खलक (अ०—खलक) पैयत न छत्री खोज खोजत खलक में।
५०—हलक (अ०—हलक़) सगर समर्थ नाथ हेरिये हलक में।
५१—गौं—समय सयानी कीन्हीं जैसी आइ गौं परी।
५२—कहरी (अ०—कहर) ढाहिबे दाहिबे को कहरी है।
५३—बहरी (अ०—बह्री) समीर को सूनु बड़ो बहरी है।
५४—निसान (फ़ा०—निशान) चली चतुरंग चमू चपरि हने निसान।
५५—सुमार (फ़ा०—शुमार) समर सुमार सूर मारे रघुबीर के।
५६—जोर (फ़ा०—जोर) बड़े बर जोर परे फँग पाये।
५७—फौजें (फ़ा०—फौज) हहरानी फौजें महरानी जातुधान की।
५८—आह (फ़ा०) कुंभकरन आई रह्यो पाइ आह सी।
५९—दील (फ़ा०—दिल) भई आस सिथिल जगन्निवास दील की।
६०—सबील (अ०) कहें में बिभीषन की कछु न सबील की।
६१—निहाल (फा०) तुलसी निहाल कै कै दियो सरखतु है।
६२—सरखतु (फ़ा०—सरखत) ,, ,, ,,
६३—मालुम (अ०—मालुम) कपि थाप्यो सो मालुम है सबही।
६४—दगाबाज (फ़ा०—दगाबाज) कियो अंगीकार ऐसे बड़े दगाबाज को।
६५—गुलाम (अ०—गुलाम) सुभाव समुझत मन मुदित गुलाम को।

६६—पील (फ़ा०—फील) आरति निवारी प्रभु पाहि कहे पील की ।
६७—दादि (फ़ा०—दाद) देव तौ दयानिकेत देत दादि दीनन की ।
६८—तेजी (फ़ा०—तेज) तेजी माटी मगहू की मृगमद साथ जू ।
६९—लालचिन (फ़ा०—लालच) रतिन के लालचिन प्रापति मनक की ।
७०—दुनी (अ०—दुनिया) तुलसी न दूसरो दयानिधान दुनी में ।
७१—खास (अ०—ख़ास) कौने देस किये कीस भालु खास माहली ।
७२—माहली (अ०—महल) " " "
७३—काहली (अ०—काहिल) मोसे दीन दूबरे कुपूत कूर काहली ।
७४—मुलाखि (फ़ा०—सूराख) और भूप परखि मुलाखि तौलि ताइ लेत ।
७५—खसम (अ०—खसम) लसम के खसम तुही पै दसरत्थ के ।
७६—परवाह (अ०—परवा) परवाह है ताहि कहा नर की ।
७७—जान (फ़ा०) जाँचिये जानकी जानहि रे ।
७८—जँजीर (फ़ा०—जंजीर) जँजीर जरे मद अंबु चुचाते ।
७९—दरिया (फ़ा०) दसरत्थ को दानि दया दरिया ।
८०—रवा (फ़ा०) समुझेहि भलो कहिबो न रवा है ।
८१—खर (फ़ा०—खर) हौं तो सदा खर को असवार ।
८२—असवार (फ़ा०—सवार) " " "
८३—कुन्द (फ़ा०) गढ़ि गुढ़ि छोलि छालि कुन्द की सी भाई बातें ।
८४—खुवार (फ़ा०—ख्वार) वचन विकार करतबउ खुवार मन ।
८५—खाल (फ़ा०—खाल) कीजै न विलम्बु बलि पानी भरी खाल है ।
८६—साज (फ़ा०—साज) राग को न साज न विराग जोग जाग जिय ।
८७—लवारु (फ़ा०—लवार) लोक रीति लायक न लंगर लवारु है ।
८८—जवारु (अ०—जवाल) पेट की कठिन जग जीव को जवारु है ।
८९—चाकरी (फ़ा०—चाकर) चाकरी न आकरी न खेती न बनिज भीख ।
९० - किसब (अ०) जानत न कूर कछु किसब कबारु है ।
९१—कबारु (अ०—कबार) " " "
९२— बाजी (फ़ा०—बाजी) तुलसी की बाजी राखी राम ही के नाम ।
९३ - दाम (फ़ा०) तब तें बेसाहो दाम लोह कोह काम को ।
९४ खजानो (फ़ा०—ख़ज़ाना) तुलसी को खुलैगो ख़ज़ानो खोटे दाम को ।
९५—खुनसात (फ़ा०—खुन्स) खात खुनसात सोंधे दूध की मलाई है ।
९६ मलाई (फ़ा०—बालाई) " " "
९७ हराम (अ०) गिरोहिये हहरि हराम हो हराम हन्यो ।

९८—तपाइ (अ०—तमअ) जाप की तप खप कियो न तपाइ जोग।
९९—जाहिर (अ०—ज़ाहिर) जाहिर जहान में जमानो एक भाँति भयो।
१००—जमानो (फ़ा०—ज़माना) „ „ „
१०१—उमरि (अ०—उम्र) उमरि दराज़ रघुराज तेरी चाहिए।
१०२—दराज (फ़ा०—दराज़) „ „ „
१०३—बाप (फ़ा०—बाबा) नाम के प्रताप बाप। आजु लौं निबाही नीके।
१०४—सरकस (फ़ा०—सरकश) काहू की सहत नाहिं सरकस हेतु हैं।
१०५—बैरख (अ०—बैरक़) बैरख बाँह बसाइये पै।
१०६—चूको (फ़ा०—चूक) कलिकाल कराल न चूको।
१०७—दगाई (फ़ा० दग़ा) नाम सुहेतु जो देत दगाई।
१०८—सक (फ़ा०—शक) हम हैं तुम्हारे तुम में सक नाहीं।
१०९—खलल (अ०—ख़लल) कियो कलिकाल कुलि ख़लल ख़लक ही।
११०—खलक (अ०—खलक़) „ „ „
१११—अकस (अ०) एते मान अकस कीबे को आपु आहि को।
११२—जोलाहा (फ़ा०—जुलाहा) जोलहा कहौ कोऊ।
११३—सरनाम (फ़ा०) तुलसी सरनाम गुलाम है राम को।
११४—मसीत (फ़ा०—मसजिद) माँगि के खैबो मसीत को सोइबो।
११५—साह (फ़ा०—शाह) साह ही के गोत गोत होत हैं गुलाम को।
११६—खूब (फ़ा०—खूब) कोऊ कहै राम को गुलाम खरो खूब है।
११७—हबूब (अ०) बानी झूठी साँची कोटि उठत हबूब है।
११८—जमाती (फ़ा०—जमाअत) जागैं जोगी जंगम जती जमाती ध्यान धरैं।
११९—दरजी (फ़ा०—दरजी) ब्यौंत करै बिरहा दरजी।
१२०—गरजी (फ़ा०—ग़रज) अनंग भयो जिय को गरजी।
१२१—चलाकी (फ़ा०—चालाक) सो सठ चेरि की चाल चलाकी।
१२२—हलाकी (अ०—हलाक़) जो घरी नटनागर हेरि हलाकी।
१२३—खवास (अ०—ख़वास) खोजि कै खवास खासी कूबरी-सी बाल को।
१२४—खासी (अ०—ख़ास) „ „ „
१२५—कमान (फ़ा०) मंदाकिनी मंजुल कमान असिवान जहाँ।
१२६—दीन (फ़ा०) सुर साहिब साहब दीन दुनी को।
१२७—गरद (फ़ा०—गर्द) भवन मसान गथ गाँठरी गरद की।
१२८—चाँदनी (फ़ा०) मानो हिमगिरि चारु चाँदनी सरद की।
१२९—करामाति (अ०—करामात) कासी करामाति जोगी जागत मरद की।

१३०—मरद (फ़ा०—मर्द) कासी करामाति जोगी जागत मरद की ।
१३१—जोर (फ़ा०—सोर) एते पर हू जो कोऊ रावरो ह्वै जोर करै ।
१३२—गुदरत (फ़ा०—गुज़ारिश) ताको जोर देव दीन द्वारे गुदरत हौं ।
१३३—सहर (फ़ा०—शहर) बूझिये न ऐसी गति संकर सहर की ।
१३४—जहर (फ़ा०— ज़हर) बानि जानि सुधा तजि पियनि जहर की ।
१३५—कसाई (फ़ा०—क़साई) कासी कामधेनु कलि कुहत कसाई है ।
१३६—चारो (फ़ा०—चारा) कियो तो तहाँ तुलसी को न चारो ।
१३७—हुसियार (फ़ा०—होशियार) हुसियार ह्वैहौ मन तो हिय हारो ।
१३८—मवासो (फ़ा०—मवासा) जारे है लंक से बंक मवासे ।
१३९—तकिया (फ़ा०) मोसे दीन दूबरे को तकिया तिहारियै ।
१४०- पाले (फ़ा०—पल्ला) पाप जाय सबको गुनी के पाले परैगी ।
१४१—इताति (अ०—इताअत) कोहै जगजाल जो न मानत इताति हैं ।
१४२—कनिगर (फ़ा०) देखिये न दास दुखी तो से कनिगर के ।
१४३—दरबार (फ़ा०) रहौं दरबार परौ लटि लूलो ।
१४४—दयानक (फ़ा०) मोहिं पर दवरि दयानक सी दई है ।
१४५—तराक (अ०) मोह बस बैठो तोरि तरक तराक हौं ।
१४६—पाक (फ़ा०) अंजनीकुमार सोध्यो रामपानि पाक हौं ।

श्रीकृष्ण-गीतावली—

१—बेकाम (फ़ा०—बे) आइ बकहि बेकामहि ।
२—बायनो (अ०—बैयानः) है बायनो दियो घर नीके ।
३.- दगा (अ०—दग़ा) जब पलकनि हठि दगा दई ।
४—सूरति (फ़ा०—सूरत) कहि सकत अंग अंग सूरति ।
५—मिलिक (अ०) मदन मिलिक करि पाई ।
६—बैरख (अ०—बैरक़) बैरख तड़ित सोहाई ।
७—नकीब (अ०—नक़ीब) बोलत पिक नकीब ।
८—चारो (फ़ा०—चारा) कहा करम सों चारो ।
९—साहिब (अ०—साहब) सबै साहिबहि सोहै ।
१०—बकुची (अ०—बुक़चा) ये बातें बकुचौही ।
११—बारिक (अ०—बारीक़) है निर्गुन सारो बारिक ।
१२—सही (अ०—सहीह) हम अबलनि सब सही है ।
१३—चलाकी (फ़ा०—चालाकी) नीनी जानि चलाकी ।
१४—गरीब (अ०—ग़रीब) गई-बहोरि गरीब निवाजी ।

१५—निवाजी (फ़ा०—नेवाज़िश) गई-बहोरि गरीब निवाजी।
१६—राजी (फ़ा०—राज़ी) कृष्न कृपालु भगति पथ राजी।

वैराग्य-संदीपिनी—

१—जहाज (फ़ा०—जहाज़) सो जन जगत जहाज है।
२—साहिब (अ०—साहब) अपने साहिब माँहि।
३—सहिदानु (फ़ा०—शहीद) तुलसी या सहिदानु।
४—नीके (फ़ा०—नेक) हम नीके देखा सब लोई।
५—दाग (फ़ा०—दाग़) तुलसी अमल अदाग।

जानकी-मंगल—

१—लायक (फ़ा०—लायक़) सब गुन अवधि न दूसर पदार लायक।
२—निसान (फ़ा०—निशान) गान निसान कोलाहल।
३—कमानै (फ़ा०—कमान) भृकुटी काम कमानै।
४—रुख (फ़ा०—रुख़) सुरतरु रुख़ सुरबेलि पवन जनु केरइ।
५—ढोल (अ०—दुहल) बाजहिं ढोल निसान।
६—बरात (फ़ा०) नियरानि नगर बरात।
७—दूलह (फ़ा०) दूलह दुलहिनि देखि।
८—दाइज (फ़ा०—जरेज़) दाइज भयउ विविध विध।
९—विदा (फ़ा०—विदा) माँगेउ विदा राम तब।
१०—बजार (फ़ा०—बाज़ार) घाट-बाट पुर द्वार बजार बनावहिं।
११—निहल (फ़ा०) जाचक कीन्ह निहाल।

पार्वती-मंगल—

१—सही (अ०—सहीह) हियवान कन्या जोगवर बाउर विबुध बंदित-सही।
२—सहमे (फ़ा०—सहम) सुनि सहमे परि पायँ।
३—लायक (फ़ा०—लायक़) बंस प्रसंसि मातु-पितु कह सब लायक।
४—रुख (फ़ा०—रुख़) रुख पाइ तेहि कारन कहा।
५—बराती (फ़ा०—बरात) प्रेत बरात-बराती।
६—दुलहिनि (फ़ा०—दूल्हा) आनहु दुलहिनि बेगि।
७—निसान (फ़ा०—निशान) गान निसान सुमन भरि।
८—दाइज (फ़ा०—जहेज़) दाइज बसन मनि धेनु धनु।
९—सहनाइन्ह (फ़ा०—शहनाई) करहिं सुमंगल गान सुघर सहनाइन्ह।
१०—बिदा (फ़ा०—विदा) भूधर भोर विदा कर साज सजायउ।

रामाज्ञा-प्रश्न—

१—गरूर (अ०—ग़रूर) गये गँवाइ गरूर पति, धनु मिस हये महेस ।

२—दाइज (फ़ा०—जहेज़) दाइज भयउ अनेक विधि, सुनि सिहाहि दिसिपाल ।

३—साहिब (अ०—साहब) सेवक पाइ सु साहिबहि, साहिब पाइ सुदासु ।

४—गरीबनेवाज (फ़ा०—ग़रीबनिवाज़) तुलसी रामकृपालु को, बिरद गरीबनेवाज ।

५—सोर (फ़ा०—शोर) लरत पचारि पचारि भट समर सोर दुहुँ ओर ।

६—नीक (फ़ा०—नेक) राम-राज सब काज कहि, नीक एक ही आँक ।

रामललानहछू—

१—दरजिनि (फ़ा०—दरजी) दरजिनि गोरे गात लिहे कर जोरा हो ।

२—मोचिनि (फ़ा०—मोची)

३—गुमान (फ़ा०—गुमान) नैनन्ह करत गुमान ।

४—लायक (फ़ा०—लायक़) जो जस लायक हो ।

५—हजार (फ़ा०—हज़ार) भरिगे रतन पदारथ सूप हजार हो ।

६—निहाल (फ़ा०) परिजन करहिं निहाल असीसत आवइ हो ।

७—मौज (फ़ा०) तापर करहिं सुमौज बहुत दुख खोवहिं हो ।

८—सवाँग (फ़ा—स्वाँग) हिलि-मिलि करत सवाँग सभारस केलि हो ।

९—दूलह (फ़ा०—दूल्हा) दूलह कै महतारि देखि मन हरषइ हो ।

बरवै रामायण—

१—कमान (फ़ा०) भाल तिलक सर सोहत भौंह कमान ।

२—अँदेस (फ़ा०—अन्देशा) कमठ पीठ धनु सजनी कठिन अँदेस ।

३—नीक (फ़ा०—नेक) सकल लोक कल्यान नीक परलोक ।

दोहावली—

१—फजहति (फ़ा०) अंत फजीहति होहिंगे, गनिका के से पूत ।

२—साहिब (अ०) साहिब होत सरोष ।

३—बाज (फ़ा०) बाजराज के बालकहि, लवा दिखावत आँखि ।

४—इताति (अ०) निसिबासर ताकहँ भलो, मानै राम इताति ।

५—दरबार (फ़ा०) भूमि भूप दरबार ।

६—जोर (फ़ा०) बिन ही ऋतु तरवर फरत सिला द्रवति जल जोर ।

७—चूक (फ़ा०) तुलसी परी न चाहिए चतुर चातकहि चूक ।

८—दाग (फ़ा०) तुलसी जो मृगमद मुएँ, परै प्रेम पट दाग ।

९—रखान (फ़ा०) सुजन, सुतरु, बन ऊख सम, खल टंकिका रखान ।

१०—दगो ११—पोच	(फ़ा०) लोक वेद हूँ लौं दगो, नाम भले को पोच ।

१२—जहान (फ़ा) खल उपकार बिकार फल, तुलसी जान जहान ।

१३—गुमान (फ़ा०) तुलसी जु पै गुमान को, हो तो कछू उपाय ।

१४—गरज (फ़ा) गरज आपनी सबन को ।

१५—तोपची १६—दारू	काल तोपची तुपक महि, दारू अनय कराल ।

१७—पलीता पाप पलीता कठिन गुरु, गोला पुहुमीपाल ।।

१८—मवासे (फ़ा०) मनहुँ मवासे मारि कलि, राजत सहित समाज ।

१९—कुमाच (फ़ा०) काम जु आवै कामरी, का लै करै कुमाच ।

२०—रैयत (फ़ा०) रैयत राज-समाज ।

२१—लबार (फ़ा०) मन वच करम लबार ।

विनय-पत्रिका—

१—खाक (फ़ा०) वालिस बासी अवध को बूझिये न खाको ।

२—कूच ३—मुकाम	(फ़ा०) तुलसी जग जानियत नाम ते सोच न कूच मुकाम को ।

४—खरगोस (फ़ा०) चहत केहरि जसहि सेह सृगाल ज्यों ख़रगोसू ।

५—जहान (फ़ा०) देखे सुने जाने मैं जहान जेते बड़े हैं ।

६—बेगार—(फ़ा०) नाहीं तो भव बेगार महँ परिहौ छूटत अति कठिनाई रे ।

७—कबूलत (फा०) हौं न कबूलत बाँधि कै मोल करत करेरो ।

८—गनी ९—गरीब	(अ०) निदरि गनी आदर गरीब पर ।

१०—दरबार (फ़ा०) यहि दरबार दीन को आदर ।

११—लायक (फ़ा०) प्रभु अकृपाल कृपाल अलायक ।

१२—पील (फ़ा०) पील उद्धरन सील सिंधु ढील देखियत ।

१३—कलई (अ०) चढ़ी कुरीति कपट कलई है ।

१४—सरम १५—निवाजे	(फ़ा०) आपने निवाजे की न काहू होति सरम ।

१६—सहरु (शहर—फ़ा०) राजा मेरे राजा राम अवध सहरु ।
१७—जहरु (ज़हर—फ़ा०) सुधा सो भरोसो एहु दूसरो जहरु ।
१८—कहरु (क़हर—फ़ा०) डरत हौं देखि कलिकाल को कहरु ।
१९—स्वाँग (फ़ा०) स्वाँग सूधो साधु को ।
२०—सही (फ़ा०) तुलसी सुभाय कही साँचियै परैगो सही ।

२१—साहिब, २२—खास, २३—खीस (फ़ा०) साहिब उघारे होत दास खास खीस होत ।

२४—गरीब, २५—मिसकीन (फ़ा०) लाभ जोग छेम को गरीबी मिसकीनता ।

२६—बाज (फ़ा०) दीनता दारिद दलै को कृपा बारिद बाज ।
२७—बिलन्द (फ़ा०) मंद बिलंद अमेरा दलकन पादप दुख झकझोरा रे ।
२८—निहाल (फ़ा०) जे जे तै निहाल किये फूले फिरत पाये ।
२९—नीके (फ़ा०) रोटी लूगा नीके राखै ।
३०—सिरताज (फ़ा०) राम को बिसारिबो निषेध सिरताज रे ।
३१—जेरो (फ़ा०) नाम ओट अब लगि बच्यो, मल जुग जग जेरो ।
३२—सामो (सामान—फ़ा०) वाल्मीकि अजामिल के कछु हुतो न सावन सामो ।

३३—शतरंज (फ़ा०) सतरंज को सो राज काठ को सबै समाज ।
३४—बाजी (फ़ा०) महाराज बाजी रची प्रथम न दीन देखियत ।

३५—निसानी (निशानी—फ़ा०) सुख की नहीं निसानी ।
३६—जोर (फ़ा०) मुख भजन खल बरजोर की ।
३७—उसीला (वसीला फ़ा०) साहब कहूँ न राम से तोसेन उसीले ।
३८—परदा (फ़ा०) सेवक को परदा फटै ।
३९—तकिया (फ़ा०) तहँ तुलसी कह कौन की काको तकिया रे ।
४०—दाग (फ़ा०) बाम बिधि भालहू न कर्म दाग दागिहैं ।
४१—दाम (फ़ा०) खोटो दाम ।
४२—खसम (फ़ा०) राम सों खरो खसम ।
४३—गुलाम (फ़ा०) गुलाम हौं कहावों ।
४४—सवार (फ़ा०) सवार भये देव दिव्य ।
४५—गच (फ़ा०) ज्यों गच काँच बिलोकि ।
४६—चारो (चारा—फ़ा०) नाय तहां कछु चारो ।

४७—खलल (फ़ा०) देखि खलल अधिकार सुप्रभु सों।
४८—दिरयानी (दरयानी—फ़ा०) दोष कहा दिरयानी।
४९—सई (फ़ा०) नहिं सिद्धि सई है।
५०—दादि (दाद—फ़ा०) दीजै दादि देखि नातो।
५१—बैरक (बैरख—फ़ा०) दीजै भगति बाँह बैरक ज्यों।
५२—बाजीगर (फ़ा०) बाजीगर के सूम ज्यों।
५३—महल (फ़ा०) टहल सहल जन महल महल।
५४—गोतो (गोता—फ़ा०) उछरि भभरि लेत गोतो।
५५—दुनी (दुनिया—फ़ा०) दुनियै हरख सोक साँसति सहत।
५६—गोसायो (गुस्सा—फ़ा०) मेरे भले को गोसायो।
५७—दग़ाबाजिहू (दगाबाजी—फ़ा०) दगाबाजिहू को सौदा सूत।
५८—सौदा—(फ़ा०) ,, ,,
५९—फ़हम मोहिं कछु फ़हम न तरनि तमी को।
६०—गुदरि (गुज़र—फ़ा०) प्रभुसों गुदरि निबह्यो हौं।

४

वाणी-विलास

तुलसीदास ने अपनी रचनाएँ अवधी और व्रजभाषा में की हैं। अवधी बोली सीतापुर, खीरी, गोंड़ा, बहराइच, लखनऊ, उन्नाव, बाराबंकी, फैजाबाद, सुलतानपुर, रायबरेली और प्रतापगढ़ में तो बोली ही जाती है, सरहदी जिलों में भी, जैसे, कानपुर, फतहपुर, इलाहाबाद, मिर्जापुर और जौनपुर के पश्चिमी हिस्सों में उसका प्रसार है। इस बोली में सबसे पहला काव्य-ग्रन्थ 'पद्मावत' है, जो मलिक मुहम्मद जायसी की रचना है और दूसरा ग्रन्थ 'रामचरितमानस' है। एक ही बोली में लिखे जाने पर भी 'पद्मावत' और 'मानस' की भाषा में अन्तर है। 'पद्मावत' में अवधी में प्रचलित तद्भव शब्दों की बहुलता है और 'मानस' में तत्सम शब्दों का प्राचुर्य। अवधी के साथ 'मानस' में बुन्देलखण्डी, व्रजभाषा और भोजपुरी बोली का भी मिश्रण है।

बुन्देलखण्डी बोली झांसी, जालौन, हमीरपुर, ग्वालियर, भूपाल, ओरछा, सागर, नृसिंहपुर, सिवनी और होशंगाबाद में बोली जाती है। व्रजभाषा मथुरा, आगरा, अलीगढ़, धौलपुर, एटा तथा मैनपुरी तक बोली जाती है। तुलसीदास के बाद भारतेन्दु हरिश्चन्द्र तक यही हिन्दी की काव्य-भाषा थी। इससे व्रज की सीमा से बाहर रहने वाले हिन्दी के कविगण भी व्रजभाषा सीखते और उसमें कविता करते थे।

भोजपुरी बोली का प्रसार बनारस, मिर्जापुर, जौनपुर, गाजीपुर, बलिया, गोरखपुर, बस्ती, आजमगढ़, शाहाबाद, चम्पारन और छोटा नागपुर तक है। बुन्देलखण्डी और भोजपुरी में कोई स्थायी साहित्य नहीं है।

सूरदास आदि कवियों ने व्रजभाषा में श्रीकृष्ण का चरित्र लिखा था। तुलसीदास राम के भक्त थे, इससे राम के जन्म-स्थान अवध की बोली में अवध-नरेश का चरित्र लिखना उनके लिए स्वाभाविक ही था। यद्यपि तुलसीदास ने अवधी में अपनी रचनाएँ कीं; पर संस्कृत-साहित्य से वे जहाँ तक शब्दों और भावों को लेकर अवधी में भर सके हैं, उनके भरने में उन्होंने

अपनी भाषा को नाना-प्रकार के अलङ्कारों, हृदयस्पर्शी मुहावरों, भावों पर चमक देने वाली कहावतों और रस बरसाने वाले शब्दों से खूब सजाया है।

'रामचरितमानस' तुलसीदास की सबसे सुन्दर रचना है। जिस तरह चन्द्रमा को हम जीवन-भर देखते रहते हैं पर वह कभी बासी नहीं होता; उसी प्रकार 'रामचरितमानस' कभी नीरस नहीं होता। उसमें हर-एक बार कुछ-न-कुछ नवीनता ही मिलती रहती है। कहीं हम तुलसीदास में एक विद्वान् और विवेकशील वक्ता की प्रगल्भता पाते हैं, तो कहीं एक शोख कवि का-सा नटखटपन भी। कहीं हम उन्हें भक्ति की अगाध धारा में नहाते पाते हैं, तो कहीं देवताओं की खिल्ली उड़ाते हुए। उपहास करने में न उन्होंने विष्णु को छोड़ा, न ब्रह्मा को, न शिव को और न इन्द्र को। देवताओं से तो उन्होंने सारे 'रामचरितमानस'-भर में केवल डुगडुगी बजाने और फूल बरसाने ही का काम लिया है। इससे भी अधिक उनके स्वभाव का सौन्दर्य वहाँ खिल उठता है, जहाँ हम उन्हें अपने पाठकों को थोड़ी देर के लिए कौतूहल में डाल देने वाले दो अर्थों के शब्दों का प्रयोग करते हुए पाते हैं। जान पड़ता है, ऐसे शब्दों को वे चुन-चुनकर रखे रहते थे, और जहाँ कुछ भाषा-सम्बन्धी चमत्कार दिखलाना चाहते थे, वहाँ उन्हें जड़ देते थे। उनके इस शब्द-खेल में 'रामचरितमानस' के बहुत-से टीकाकार फँस भी गए हैं, यह देखकर बड़ा कौतूहल होता है। यहाँ ऐसे कुछ शब्द दिये जाते हैं :

भरनी—रामकथा कलि पन्नग भरनी।
पुनि विवेक पावक कहँ अरनी॥ (बाल-कांड)

टीकाकारों ने 'भरनी' का अर्थ 'भरणी' नक्षत्र किया है। और कइयों ने अपनी यह जानकारी भी घोषित कर दी है कि भरणी नक्षत्र में साँप का नाश हो जाता है; यद्यपि कहा जाता है कि भरणी नक्षत्र ही में साँप अण्डे देता है। पर तुलसीदास ने यह शब्द मोरनी के अर्थ में प्रयुक्त किया है। संस्कृत के 'मेदिनी-कोष' में यह मिलता है :

भरणी मयूरपत्नी स्यात्।

छत्रबन्धु—छत्रबन्धु तैं विप्र बोलाई।
घालै लिये सहित समुदाई॥ (बाल-कांड)

टीकाकारों ने 'छत्रबन्धु' का अर्थ राजा लिखा है; पर आप्टे ने इस शब्द का अर्थ दिया है—छत्रबंधुः—a vile or wretched Kshatriya (as a term of abuse)। इसका अर्थ हुआ—महा नीच क्षत्रिय। छत्रबन्धु शब्द का प्रयोग तुलसीदास ने निस्सन्देह नीच क्षत्रिय ही के अर्थ में किया था;

क्योंकि उस स्थान पर ऐसा ही सम्बोधन उपयुक्त है।

इसी तरह 'विनय-पत्रिका' में 'विप्रबन्धु' शब्द नीच ब्राह्मण के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है :

वेदविदित जगविदित अजामिल विप्रबंधु अघधाम।

पतंग—करहिं गान बहु तान तरंगा।
बहु विधि क्रीड़हिं पानि पतंगा॥ (बाल-कांड)

इसमें 'पतंग' शब्द का अर्थ किसी टीकाकार ने गुलाबी, किसी ने सूर्याकार और किसी ने चिनगारी किया है और किसी ने लिखा है कि पतंग (कनकौआ) उड़ाती हुई वे नाच रही थीं। साधारणतः पतंग शब्द उन्हीं अर्थों में व्यवहृत होता भी है; पर तुलसीदास ने यह शब्द गेंद के अर्थ में प्रयुक्त किया है और सम्भवतः उन्होंने इसे 'भागवत' से लिया होगा। 'भागवत' में यह शब्द कई स्थानों में गेंद के अर्थ में आया है। जैसे :

नैकत्र ते जयति शालिनि पादपद्मं
घ्नन्त्या मुहुः करतलेन पतत्पतङ्गम्।
मध्यं विषीदति बृहत्स्तनभारभीतं
शान्तेव दृष्टिरमला सुशिखासमूहः॥
(स्कन्ध ३. अध्याय २०, श्लोक ३६)

लड़ाइकै—सनमानि सकल बरात आदर दान विनय बड़ाइकै।
प्रमुदित महा मुनिवृन्द वन्दे पूजि प्रेम लड़ाइकै॥ (बाल-कांड)

टीकाकारों ने इसका अर्थ प्रेम और लाड़ से तथा प्रेम के साथ किया है; पर अवध में लड़ना शब्द ढुलकाने के अर्थ में प्रयुक्त होता है। जैसे, पानी लड़ाइ ग। यहाँ भी 'प्रेम को पानी की तरह ढुलकाकर' ही अर्थ उपयुक्त होगा।

सोना—नींदहु बदन सोह सुठि लोना।
मनहुँ साँझ सरसीरुह सोना॥ (बाल-कांड)

इसमें 'सरसीरुह सोना' से बहुतों को सुनहले कमल का धोखा हो गया है; पर यह 'सोना' संस्कृत के शोण का अपभ्रंश है, जिसका अर्थ है—लाल।

कूट—कमठ पीठि पवि कूट कठोरा।
नृप समाज महँ सिव धनु तोरा॥ (बाल-कांड)

'कूट' शब्द प्रायः पर्वत के अर्थ में आता है; पर यहाँ लोह के अर्थ में आया जान पड़ता है। आप्टे ने 'कूट' का अर्थ A hammer; an iron mall भी किया है।

सकल—राम सैल वन देखन जाहीं।
जहँ सुख सकल सकल दुख नाहीं ॥ (अयोध्या-कांड)

दूसरा 'सकल' संस्कृत का 'शकल' है, जिसका अर्थ है, खंड, कुछ।

भूमिनाग—सो मैं कहउँ कवन विधि बरनी।
भूमिनाग सिर धरइ कि धरनी ॥ (बाल-कांड)

'भूमिनाग' का शाब्दिक अर्थ है—पृथ्वी का साँप। पर कोष में इसका अर्थ है केंचुआ। साधारण पाठक को भूमि और नाग शब्दों के अन्दर केंचुआ निकालना बहुत कठिन है।

चाकी—चितवनि चारु भौंह वर बाँकी।
तिलक रेख सोभा जनु चाकी ॥ (बाल-कांड)

टीकाकारों ने 'चाकी' शब्द के अनेक अर्थ किये हैं। किसी ने चक्राकार लिखा है, किसी ने चाकना, गोंठना, घेरा देना इत्यादि; पर अवध में 'चाकी' बिजली को कहते हैं। चाकी फारसी के चाक शब्द से निकला है जिसका अर्थ है, फाड़ देना। देहात में इसे चिर्री भी कहते हैं। दोनों शब्दों का अर्थ एक ही है।

घृनी—सब निरदम्भ धर्मरत घृनी।
नर अरु नारि चतुर सब गुनी ॥ (उत्तर-कांड)

'घृनी' शब्द घृणा से सम्बन्ध रखता है; पर यहाँ अन्य अच्छे विशेषणों के बीच में घृनी शब्द घृणा-सूचक के रूप में नहीं बैठ सकता। इससे टीकाकारों ने अनेक जटिल कल्पनाएँ करके 'घृनी' को अघृणी बनाने की उपहासास्पद चेष्टा की है; पर घृणी शब्द घृणा का वंशज होने पर भी अच्छा अर्थ रखता है, जैसे—

घृणि—Sunshine; A ray of light; A wave (आप्टे की डिक्शनरी)

किन—जे चरन सिव अज पूज्य रज सुभ परसि मुनि पतिनी तरी।
नखनिर्गता मुनिवंदिता त्रैलोक पावनि सुरसरी ॥
ध्वज कुलिस अंकुस कञ्ज जुत बन फिरत कंटक किन लहे।
पदकंज द्वंद मुकुन्द राम रमेस नित्य भजामहे ॥
(उत्तर-कांड)

इसके तीसरे चरण में एक 'किन' शब्द आया है। उसने 'रामचरितमानस' के कितने ही टीकाकारों को खूब छकाया है। कइयों ने इसका अर्थ किनने,

किन्होंने या क्यों न, किया है; पर यह संस्कृत के 'किण' शब्द का अपभ्रंश है, जिसका अर्थ है—घट्टा।

संस्कृत में इस शब्द का प्रयोग कई स्थानों में मिलता है। 'आलमन्दार-स्तोत्र' का एक श्लोक यहाँ उद्धृत किया जाता है :

शरासनज्याकिणकर्कशैः शुभैः
चतुर्भिराजानु विलम्बिभिर्भुजैः।
प्रियावतंसोत्पलकर्णभूषणैः
श्लथालंकावन्धविमर्द शंसिभिः॥

चलि—सीतल सुरभि पवन वह मन्दा।
गुञ्जत अलि लइ चलि मकरन्दा॥ (उत्तर-कांड)

इसमें 'चलि' शब्द ऐसे स्थान पर रख दिया गया है, जहाँ वह क्रिया-सा जान पड़ता है। पर यह अर्थ करने पर भी भौंरे मकरन्द लेकर गूँजते चले जा रहे थे, यह शंका होती है, कि कवि को क्या पता कि भौंरा खाली मुँह जा रहा है या मुँह में मकरंद भरकर? भौंरे का तो केवल गुञ्जन ही कवि का विषय है। यहाँ पर 'चलि मकरंदा' का अर्थ होगा, मकरंद से लिपा हुआ। भौंरे के शरीर पर पुष्प-रस चुपड़ा हुआ है, वह लय से गुञ्जार कर रहा है।

'श्रीमद्भागवत्' में भी यह शब्द इसी अर्थ में व्यवहृत हुआ है। यथा :

चलत्पद्मरजः पयः। (स्कन्ध ८, अ० २, श्लोक १७)

चरम—चरम देह द्विजकर मैं पाई।
सुर दुरलभ पुरान-स्तुति गाई॥ (उत्तर-कांड)

जो लोग संस्कृत के 'चरम' शब्द का अर्थ नहीं जानते, वे तो 'चमड़े की देह' ही समझेंगे। संस्कृत में 'चरम' शब्द अन्तिम का बोधक है।

आप—आपन छोड़ो साथ जब, ता दिन हितू न कोइ।
तुलसी अम्बुज अम्बु बिन, तरनि तासु रिपु होइ।

यहाँ 'आपन' शब्द के दो अर्थ हैं—'अपने लोग' और 'जल'।

तुलसीदास ने अपनी रचनाओं में ऐसे-ऐसे अनोखे शब्दों का प्रयोग किया है जो संस्कृत जानने वालों ही की समझ में आ सकते हैं। जैसे—

धूमध्वज = अग्नि—दहन इव धूमध्वज वृषभानं।

अंजन-केस = दीपक—अञ्जनकेस सिखा जुवती तहँ लोचन सलभ पठावौ।

भुजग-भोग = सूँड़—भुजंग भोग भुजदण्ड कञ्ज दर चक्र गदा बनि आई।

केश = (क+ईश)—ब्रह्मा और शिव—नैमवं धर्मनहं केशवंदिन।

किरनकेतु = सूर्य—समुनम तुहिनहर किरनकेतू।

दसन-वसन = ओंठ — दसन वसन लाल बिसद हास रसाल।

वन-वाहन = नाव — पाहन ते वन-वाहन काठ को,

कोमल है जल खाइ रहा है।

'पाहन' का अनुप्रास मिलाने के लिए यह शब्द गढ़ा गया है।

सरल — बाँस पुरान साज सब अटखट सरल तिकोन खटोला रे।

इसमें 'सरल' शब्द बड़ा ही मनोरंजक है। 'सरल' का साधारण अर्थ है, सीधा। पर तिकोने का विशेषण सरल कैसे होगा? वास्तव में यह काशी की घरेलू बोली का शब्द है, जिसका अर्थ है, सड़ा हुआ।

भूँजव — राज कि भूँजव भरत पुर, नृप कि जिअहिं बिनु राम।

'भूँजव' शब्द जान-बूझकर पाठकों के साथ विनोद करने के लिए यहाँ बैठाया गया है। साधारण बोल-चाल में इसका अर्थ है, भूनना, जलाना। पर यह संस्कृत की 'भुज्' धातु का शब्द है और यहाँ इसका अर्थ है, भोग करना।

तुलसीदास की रचनाओं में मुहावरों और कहावतों का भी काफी प्रयोग मिलता है। देखिये:—

त्यों-त्यों नीच चढ़त सिर ऊपर, ज्यों-ज्यों सील बस ढील दई है।

हैं निर्गुन सारी बारिक बलि, घरी करौ हम जोही।

दसमुख बिबस तिलोक लोकपति, बिकल बिनाये नाक चना हैं।

सो दिन सोने को कबु अइहै।

बालिस बजावैं गाल।

कहे की न लाज पिय अजहूँ न आये बाज, सहित समाज गढ़ राँड़ कैसो भाँड़िगो।

महाराज आजा जौ न देत दादि दीन की।

कहा भो चढ़ाये चाप ब्याह ह्वैहै बड़े खाये।

बालिस बासी अवध को बूझिये न खाको।

वेद लोक सब साखी काहू की रती न राखी।

सकल सभा सुनि लै उठी।

सेइ साधु गुरु सुनि पुरान स्रुति बूझ्यो राग बाजी ताँति।

टूटियौ बाँह गरे परै फूटेहू बिलोचन पीर होति।

माँगि कै खैबो मसीत को सोइबो लैबे को एक न दैबे को दोऊ।

काले टाइप के शब्दों पर ध्यान दीजिये। यह आश्चर्य की बात है कि तुलसीदास दाद देना, बाज आना, खाक न समझना आदि आजकल के उर्दू-मुहावरों का भी प्रयोग कर गए हैं।

अरबी-फारसी के शब्दों को हिन्दी की पोशाक पहना देने में भी तुलसी-दास बड़े ही स्वतन्त्र थे। देखिये :

रावरे पिनाक में सरीकता कहाँ रही ?
सुर स्वारथी अनीस अलायक।
लाभ जोग छेम को गरीबी मिसकीनता।

उन्होंने नई क्रियाएँ भी बना ली थीं। जैसे :

त्यों ही तिहारे हिये न हितैहौं।
त्यों जिनके मन आँच न आँचे।
इन्हहि बहुत आदरत महामुनि।
जातें विपति जाल निसिदिन दुख तेहि पथ अनुसरिये।
आपने निवाजे की न काहू को सरम।

काले टाइप के शब्दों को देखिये, ये बिलकुल नई क्रियाएँ हैं, जिनका हिन्दी में अब तक चलन नहीं हुआ।

तुलसीदास की सारी रचनाएँ एक-से-एक अनूठी उपमाओं से ठसाठस भरी हैं। कहीं-कहीं तो उपमाएँ रहट की कड़ियों की तरह एक-पर-एक लगातार आती गई हैं। इस प्रकार का आनन्द अयोध्या-कांड में खूब मिलता है।

यहाँ कुछ उपमाएँ दी जाती हैं :

जीभ कमान बचन सर नाना। मन महीप मृदु लक्ष्य समाना।

× × ×

उभय मध्य सिय सोहति कैसी। ब्रह्म जीव बिच माया जैसी।

× × ×

गए सहमि कछु कहि नहिं आवा। जनु सचान बन झपटेउ लावा।

× × ×

बहुरि बदन बिधु अंचल ढाँकी। पिय तन चितै भौंह करि बाँकी।
खंजन मंजु तिरीछे नैननि। निज पति कहेउ तिन्हहि सिय सैननि।

× × ×

प्रभु अपने नीचहु आदरहीं। अगिनि धूम गिरि सिर तृन धरहीं।

× × ×

देव कहा हम तुम्हहिं गोसाईं। ईंधन पात किरात मिताई।

× × ×

[illegible]
[illegible]

झलका झलकत पायन कैसे। पंकज कोस ओस-कन जैसे।

× × ×

बिपति बीज वर्षा ऋतु चेरी। भुइँ भइ कुमति केकई केरी।
पाइ कपट जल अंकुर जामा। वर दोउ दल फल दुख परिनामा।

× × ×

बिधुवदनी सब भाँति सँवारी। सोह न बसँन बिना बर नारी।

× × ×

डगइ न सम्भु सरासन कैसे। कामी वचन सती मन जैसे।

× × ×

विधि केहि भाँति धरउँ उर धीरा। सिरिस सुमन कन वेधिय हीरा।

× × ×

मन मलीन तनु सुन्दर कैसे। विष रस भरा कनक-घट जैसे।

× × ×

राम सीय सुन्दर परछाहीं। जगमगाति मन खंभन माहीं।
मनहुँ मदन रति धरि बहु रूपा। देखत राम-विवाह अनूपा।
दरस लालसा सकुच न थोरी। प्रगटत दुरत बहोरि-बहोरी।

× × ×

दलकि उठेउ सुनि हृदय कठोरू। जनु छुइ गएउ पाक बरतोरू।

× × ×

भूप मनोरथ सुभग बन, सुख सुविहंग समाजु।
भिल्लिनि जनु छाड़न चहति, बचन भयंकर बाजु॥

× × ×

मनहुँ वारिनिधि बूड़ जहाजू। भयउ विकल बड़ बनिक समाजू।

× × ×

जोगवहिं प्रभु सिय लखनहिं कैसे। पलक विलोचन गोलक जैसे।
सेवहिं लखन सीय रघुवीरहिं। जिमि अविवेकी पुरुष सरीरहिं।

× × ×

अंगद दीख दसानन वैसा। सहित प्रान कज्जलगिरि जैसा।
भुजा विटप, सिर सृङ्ग समाना। रोमावली लता जनु नाना।
मुख नासिका नयन अरु काना। गिरि कन्दरा खोह अनुमाना।

× × ×

घायल वीर विराजहिं कैसे। कुसुमित किंसुक के तरु जैसे।

× × ×

सकल सुचिन्ह सुजंन सुखदायक ऊरधरेख बिसेष बिराजति।
मनहुँ भानु मंडलहि सँवारत धरयो सूत बिधि सुत बिचित्र मति।

५

शब्द-भण्डार

तुलसीदास ने अपने ग्रंथों में, और खासकर 'रामचरितमानस' में कुल कितने शब्दों का प्रयोग किया ? यह एक प्रश्न है । यद्यपि जब तक उनके हाथ का लिखा 'मानस' न मिल जाय तब तक नकल की हुई छपी प्रतियों के आधार पर उसकी ठीक-ठीक शब्द-संख्या बताना कठिन है, पर और कोई चारा भी तो नहीं है । इससे प्रामाणिकता का दावा करने वाली छपी प्रतियों ही को प्रमाण मानकर शब्द-संख्या तैयार करनी पड़ेगी । ऐसी प्रतियाँ मेरे देखने में ये आई हैं :

१—काशी-नागरी-प्रचारिणी-सभा की प्रति

२—पंडित महावीरप्रसाद मालवीय की प्रति

३—गीता प्रेस से प्रकाशित प्रति

४—डॉ० माताप्रसाद गुप्त की प्रति

इन प्रतियों में भी यद्यपि कहीं-कहीं पाठांतर का अन्तर है, पर चौपाइयों की संख्या में घट-बढ़ बहुत थोड़ी है ।

कई वर्ष हुए, ओरछा-नरेश की आज्ञा से टीकमगढ़ के पंडित बालकृष्णदेव तैलंग ने तुलसीदास के समस्त ग्रन्थों की शब्द-संख्या सभा की प्रति के आधार पर तैयार की थी, जो 'मधुकर' के वर्ष २, अंक १६ में प्रकाशित हुई थी । वह इस प्रकार है :

	ग्रन्थ	शब्द-संख्या
१	रामचरितमानस	
	बाल-कांड	१५६८३
	अयोध्या-कांड	१५०५८
	अरण्य-कांड	४०११
	किष्किन्धा-कांड	१८१५
	सुन्दर-कांड	४३१६

लंका-कांड	८६१६
उत्तर-कांड	६६५०
२—रामललानहछू	१०४६
३—वैराग्य संदीपिनी	५६७
४—बरवै रामायण	६६५
५—पार्वती-मंगल	२२७५
६—जानकी-मंगल	२७१२
७—रामाज्ञा-प्रश्न	३७७२
८—दोहावली	६५३०
९—कवितावली	१३९६६
१०—गीतावली	१८८६७
११—श्रीकृष्ण गीतावली	२८९१
१२—विनय-पत्रिका	१९७६८
कुल योग	१२६८२१

मैंने 'रामचरितमानस' की शब्द-संख्या गीता प्रेस से प्रकाशित संस्करण के आधार पर निश्चित की। श्री तैलंगजी की संख्या से बहुत थोड़ा अन्तर मिला। किसी-किसी कांड में कुछ शब्द बढ़ गए। किसी में कम हो गए। इसका कारण चौपाइयों की कमी या अधिकता भी हो सकता है।

मैंने यह भी जोड़कर देखा कि 'रामचरितमानस' में ६०-७० फी सदी शब्द शुद्ध संस्कृत के हैं और शेष तद्भव, अपभ्रंश या गाँव की हिन्दी के। किसी-किसी चौपाई या दोहे में तो संस्कृत-शब्दों ही की भरमार है, हिन्दी के शब्द इने-गिने ही हैं। जैसे :

> भूमि सयन वलकल वसन भ्रमन कन्द फल मूल।
> तेकि सदा सब दिन मिलहिं समय-समय अनुकूल॥

इस दोहे में तीसरे चरण में 'तेकि', 'सब' और 'मिलहिं' केवल तीन ही शब्द हिन्दी के हैं, शेष सब संस्कृत के हैं।

शब्दों के प्रयोग में एक बात यह भी देखने में आती है कि लघु वर्णों से बने हुए शब्द जान-बूझकर ज्यादा प्रयुक्त किये गए हैं, जिससे कविता की भाषा की सरसता बढ़ गई है। और टवर्ग तो यथासम्भव कम आने पाया है। तुलसीदास का शब्द-भंडार तो ऐसा बृहत् था कि गूढ़-से-गूढ़ भावों को सरलता से व्यक्त करने में उन्हें कहीं कठिनाई नहीं पड़ी है।

तुलसीदास जी की कविता की बदौलत लगभग नब्बे हजार संस्कृत-शब्द

देहात के अपढ़ आदमियों के घरों में भी जा बैठे हैं, जो शिक्षा-विभाग या विश्वविद्यालयों द्वारा भी वहाँ तक हरगिज नहीं पहुँच सकते थे। ये शब्द हिन्दू-संस्कृति के मूल-स्वरूप हैं, जो बौद्ध मत और पाली, प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं के अंधड़ में उखड़ गए थे तुलसीदास जी ने उन्हें फिर जमा दिया। उसी तरह गाँवों के लगभग तीस-चालीस हज़ार शब्दों को सभ्य या शहराती समाज तक पहुँचा दिया, जिससे पढ़ी-लिखी और देहात की अपढ़ जनता में विचारों की समानता स्थापित कर दी। मौके-मौके पर अरबी-फारसी के शब्द भी डाल दिये गए हैं, जिनसे वे लोग आकर्षित हुए, जो अरबी-फारसी भी जानते थे। 'रामचरितमानस' लोक-संग्रह का एक आदर्श बन गया है।

६

बाह्य जगत्

हम संसार में बहुत सी चीजें, बहुत सी घटनाएँ नित्य देखते और सुनते रहते हैं, पर हम उन पर बहुत ही कम ध्यान देते हैं और कुछ देते भी हैं, तो अपनी अल्पज्ञतावश उससे कोई अच्छा परिणाम नहीं निकाल सकते। पर तुलसीदास उसी जगत् को कवि की दृष्टि से देखते थे और वे सहज ही में एक सुन्दर परिणाम निकाल लेते थे। इतना ही नहीं कि वे उससे आनन्द अनुभव कर लें और गूँगे का-सा गुड़ खाकर रह जायँ। वे अपने आनन्द को छन्दों के पिटारों में भर-भरकर हम लोगों के लिए रख भी देते थे। यह उनका कितना बड़ा दान है !

हम लोग गाँवों के आस-पास पानी के गड्ढे प्रायः देखते रहते हैं। उनमें जल सूख जाने पर जो कीचड़ रह जाता है, वह भी जब सूख जाता है, तब उसमें दरारें पड़ जाती हैं। यह इतनी साधारण प्राकृतिक घटना है कि हम उससे अपने जीवन का कोई सम्बन्ध जोड़ नहीं सकते। पर तुलसीदास ने उसमें से जो रहस्य निकालकर हमें दिखाया है, उससे तो अत्यन्त तुच्छ कीचड़ का मोल सुवर्ण से भी अधिक हो जाता है।

राम को वन में छोड़कर जब सुमन्त लौटे हैं, उस समय उनकी मनोवेदना के साथ तुलसीदास ने कीचड़ की अन्तर्पीड़ा इन शब्दों में प्रकट की है :

हृदय न बिदरेउ पंक जिमि, बिछुरत प्रियतम नीर।

अर्थात् प्रियतम जल के बिछुड़ने से जैसे कीचड़ का हृदय फट गया, वैसा मेरा नहीं फटा।

अहो ! कीचड़ ने सच्चे प्रेम और सच्ची मैत्री का कैसा सुन्दर रूप दिखलाया है ! इसे पढ़कर तो भर्तृहरि का यह श्लोक फीका लगता है :

क्षीरेणात्मगतोदकाय हि गुणा दत्ताः पुरा तेऽखिलाः
क्षीरे तापमवेक्ष्य तेन पयसा ह्यात्मा कृशानौ हुतः।
गन्तुं पावकमुन्मनस्तदभवत् दृष्ट्वा तु मित्रापदं
युक्तं तेन जलेन शाम्यति सतां मैत्री पुनस्त्वीदृशी।

अब आगे आइये।

हम लोग प्रारम्भिक पाठशालाओं में गिनती और पहाड़े पढ़ते हैं। तुलसीदास ने कभी किसी पाठशाला में पैर रखा था, या नहीं, यह हमें नहीं मालूम। पर नौ के पहाड़े से उन्होंने जो एक नई बात निकाली, वह अब पुरानी हो जाने पर भी हमारे लिए तो नई ही है और जब तक वह पहाड़ा रहेगा, तब तक नई ही रहेगी।

नौ के पहाड़े को हम चाहे जिस अंक से गुणा करें, उसके गुणन-फल के अंकों का जोड़ नौ ही होगा। इस रहस्य को तुलसीदास ने समझकर एक अच्छे उपदेश के साथ हमारे लिए एक दोहे में बन्द करके रख दिया था :

तुलसी राम सनेह करु, त्यागि सकल उपचार।
जैसे घटत न अंक नौ, नौ के लिखत पहार॥

भावार्थ यह कि जैसे नौ चाहे जिस दशा में जाय, सबमें उसका निजत्व कायम रहता है। उसी तरह मनुष्य को भी दुःख-सुख, हानि-लाभ, अधिकार और दासता इत्यादि सब दशाओं में अपना व्यक्तित्व स्थिर रखना चाहिए।

अथवा इसे ऐसा समझिये कि नौ नाम का एक मनुष्य है। वह संसार में प्रवेश करता है। वह संसार के आघात-प्रतिघात में पड़कर १८ हुआ, तो उसकी दैवी-सम्पत्ति १ थी और आसुरी-सम्पत्ति ८। उसने अपने आत्म-सुधार का प्रयत्न किया। २७ तक पहुँचने पर उनकी दैवी-सम्पत्ति में एक की वृद्धि हुई और आसुरी-सम्पत्ति में एक का ह्रास। उसका प्रयत्न जारी रहा और उसकी इच्छित सम्पत्ति बढ़ती रही। अन्त में ९० तक पहुँचते-पहुँचते वह कल्मष-हीन हो गया। सोचिये, ६ के अंक में कितना बड़ा रहस्य भरा है! यह तो प्रत्येक मनुष्य के लिए उसके जीवन का एक पथ-प्रदर्शक-सा है।

अब आगे आइये।

तुलसी ने कभी लड़कों को ढेले से आम तोड़ते देखा होगा। इस साधारण-सी बात को लेकर भी उन्होंने हमें आम से भी अधिक सरस और मधुर पदार्थ दे दिया है :

तुलसी सन्त सुअम्ब तरु, फूलि-फलहिं पर हेत।
इतते ये पाहन हनत, उतते वे फल देत॥

और आगे चलिये।

कच्चे पोखरों और ताल-तलैयों के किनारे-किनारे प्रायः घास जम जाती है। उसके एक तरफ पानी होने से जानवर उसे चर नहीं सकते। इससे वह बेकार ही-सी पड़ी रहती है और पानी पीने वाले जानवरों के पैरों से रौंदी

जाकर निर्बल भी बनी रहती है। तुलसीदास ने कभी उसे देखा होगा। देखिये, उस दीन-हीन घास को उन्होंने कितना बड़ा महत्त्व का पद दिया है।

> तुलसी तृन जल-कूल को, निरबल निपट अकाज।
> कै राखै, कै सँग चलै, बाँह गहे की लाज॥

भावार्थ यह है कि जल के किनारे की घास अत्यन्त कमजोर और व्यर्थ होने पर भी इतना आत्म-गौरव रखती है कि जब कोई डूबता हुआ मनुष्य उसे पकड़ लेता है, तब इस विचार से कि इसने मेरी बाँह पकड़ ली है और यह शरण में आया है, वह या तो उसे बचा लेती है या उसी के साथ अपने प्राण दे देती है। तुलसीदास ने बाँह पकड़ने का महत्त्व एक और दोहे में भी कहा है, पर यह उस घास को नहीं पा सकता :

> तुलसी बाँह सपूत की, जो धोखेहु छुइ जाइ।
> आपु निबाहैं जनम भरि, लरिकन ते कहि जाइ॥

और सुनिये—

हम लोग अंक लिखते हैं, पर कभी यह ध्यान नहीं देते, कि किस अङ्क की शक्ल-सूरत कैसी है और किसकी कैसी? पर तुलसीदास की दृष्टि से वह बचने नहीं पाया। एक दोहे में ३ और ६ को लेकर वे हमें कुछ बता गए हैं :

> जग ते रहु छत्तीस ह्वै, राम-चरन छै-तीन।
> तुलसी देखु विचार हिय, है यह मतौ प्रवीन॥

नाव और नदी में मैत्री नहीं होती। नाव नदी को चीरती-फाड़ती उसके सिर पर चली जाती है। नदी यह कब सहन कर सकती है? पर जब तक नाव मजबूत है, तब तक नदी कर ही क्या सकती है? किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि नदी गाफ़िल है। वह अवसर की ताक में रहती है और नाव को विपद्-ग्रस्त पाते ही वह चारों ओर से उस पर चढ़ दौड़ती है। हमने हजारों बार नाव से नदी को पार किया होगा, पर नाव और नदी के संघर्ष पर हमने कब ध्यान दिया है? तुलसीदास की सूक्ष्म दृष्टि से नदी का प्रयत्न छिपा नहीं रहा और उन्होंने उसको हमें इन शब्दों में बता भी दिया :

> सत्रु सयानो सलिल ज्यों, राख सीस रिपु नाव।
> बूड़त लखि पग डगत लखि, चपरि चहूँ दिसि धाव॥

और देखिये—

किसान लोग खेती को जानवरों से बचाने के लिए उसमें धोखे का एक नकली आदमी खड़ा कर रखते हैं। तुलसीदास ने उसे देखा होगा। उन्होंने उसे ध्यान में रख छोड़ा और राम-सीता के विवाह के अवसर जब लक्ष्मण

क्रुद्ध हुए, तब उसे ले जाकर उन्होंने राज-मंडली में खपा दिया :

कुँवर चढ़ाई भौंहें अब को विलोकै सौहें,
जहँ-तहँ भे अचेत खेत के-से धोखे हैं।

एक नई उक्ति सुनिये -

किसान जब खेत काट लेते हैं, तब जो दाने खेत में छिटके रह जाते हैं, उन्हें 'सीला' और खेत काटना और काटने की मजदूरी को, जो काटे हुए बोझ के रूप में दी जाती है, 'लौनी' कहते हैं। 'सीला' प्राय: स्त्रियाँ बीनती हैं और 'लौनी' पुरुष करते हैं। इन दो शब्दों को लेकर तुलसीदास ने अपने राम और सीता के रूप की कैसी सुन्दर प्रशंसा कर डाली है :

रूप-रासि विरची विरंचि मनो सिला लवनि रति काम लही री।

भावार्थ यह है कि ब्रह्मा ने सीता और राम को रूप की राशि बनाया है। रूप के छिटके दाने रति ने बीन लिये थे और रूप का खेत काटकर जमा कर देने की लौनी कामदेव ने पाई थी। 'सीला' और 'लौनी' का कितना सुन्दर प्रयोग है !

पतंग का परिणाम देखिये—

हममें से बहुतों ने पतंग उड़ाया होगा। कहा नहीं जा सकता कि तुलसीदास ने भी उड़ाया था या नहीं; पर हवा के अभाव से पतंग के करुणाजनक पतन को तुलसीदास ने कैसी सहृदयता से देखा था इसका पता हमें उनकी इस पंक्ति से लगता है :

भरत गति लखि मातु सब रहि ज्यों गुड़ी बिनु बाय।

अब कछुए की बात सुनिये—

कछुआ अपने अंडे को किनारे पर ले जाकर रेत में ढँक आता है और पानी में रहकर वह निरन्तर मानस-तरङ्गों से उसे सेता रहता है। तुलसीदास कहते हैं कि रामचन्द्र भी अपने भाई भरत का ऐसा ही ध्यान रखते थे।

रामहिं बंधु सोच दिन-राती। अंडन्हि कमठ हृदय जेहि भाँती।

तेली का कोल्हू देखकर तुलसीदास ने उसे व्यर्थ नहीं जाने दिया। उससे भी उन्होंने कुछ रस निचोड़ ही लिया :

सुकृत सुमन तिल मोद बासि विधि जतन जन्त्र भरि घानी।
सुख सनेह सब दियो दसरथहि खरि खलेल थिरथानी॥

अर्थात्, पुण्य रूपी फूलों में मोद रूपी तिलों को बसाकर, यत्नरूपी कोल्हू में उसकी घानी भरकर ब्रह्मा ने दशरथ को स्नेह (तेल) रूपी सुख दिया था। और उसकी खली और तेल की गाद लोक-पालों (स्थिर स्थान वालों) को दी थी।

७

अन्तर्जगत्

जिस तरह हमारी आँखों के आगे एक बाह्य जगत् है। उसी तरह हमारे भीतर एक अन्तर्जगत् है। जिस तरह बाह्य जगत् में आकाश है और उसमें तरह-तरह के पक्षी उड़ते हैं, वैसे ही अन्तर्जगत् में भी आकाश है और उसमें विचार-तरंगों के विविध पक्षी उड़ा करते हैं, भावों की घटाएँ घिरती हैं, कल्पना की दामिनी दमकती है और अनुभूति के महोदधि में भाटे आते हैं।

बाह्य जगत् में कल-कल-निनादिनी सरिताएँ हैं; आनन्द-मूक पर्वत है; किसी का प्रकाश ढोने वाले सूर्य, चन्द्र और तारागण हैं; वृक्ष, लता और गुल्म है; फूल, पंखड़ी और पल्लव हैं; वन, वन-पथ, उपत्यका, नदी-तट और हिम-शिखर हैं, उसी प्रकार अन्तर्जगत् में हृदय है, प्रेम है, विरह है, वात्सल्य है, आत्मोत्सर्ग का उन्माद है, आश्चर्य है, प्रेरणा है, महत्त्वाकांक्षा की ज्वाला है, पश्चात्ताप है, वेदना है, आशा और निराशा है, सन्देश है, सन्देह है, विरक्ति है, दीनता है और चिन्ता है। सबमें रस है, और सबमें सुख और दुःख ओत-प्रोत हैं।

तुलसीदास के अन्तर्जगत् का दर्शन करने का सौभाग्य हमें उनके 'रामचरित-मानस', 'कवितावली', दोहावली और 'विनय-पत्रिका' से प्राप्त होता है। ये वह खिड़कियाँ हैं, जिनके भीतर से हम तुलसीदास के उस अत्यन्त मनोरम और शाश्वत सुखमय अन्तर्जगत् का दर्शन कर सकते हैं, जहाँ मानव-हृदय के लिए अबाध आकर्षण है, और जहाँ से जीवन के लिए सन्देश की ध्वनि सदा उठती रहती है। तुलसीदास के अन्तर्जगत् के मनुष्य हैं राम और सीता, भरत और लक्ष्मण, हनुमान और दशरथ, कौशल्या और सुमित्रा इत्यादि। इन सबका निर्माण तुलसीदास ने किया है। तुलसीदास अपने अन्तर्जगत् में सर्वत्र व्याप्त हैं।

अपने जगत् का निर्माण करने के लिए तुलसीदास एक दिन किस प्रकार प्रवृत्त हुए थे उसकी ठीक-ठीक व्याख्या हम रवीन्द्रनाथ की इस कविता में पाते हैं :

"आमी ढालिब करुणा-धारा,
आमी भाँगिब पाषाण-कारा,
आमी जगत् प्लाविया बेड़ाब गाहिया
आकुल पागल पारा।

केश एलाइया, फूल कुड़ाइया,
रामधनु-आँका पाखा उड़ाइया,
रविर किरणे हासी छड़ाइया,
दिब रे पराण ढाली।

शिखर होइते शिखरे छुटिब,
भूधर होइते भूधरे लुटिब,
हेसे खलखल गेये कलकल,
ताले-ताले दिब ताली।

तटिनी होइया जाइब वहिया
जाइब वहिया—जाइब वहिया
हृदयेर कथा कहिया-कहिया
गाहिया-गाहिया गान।

जतो देबो प्राण बहे जाबे प्राण,
फुराबे ना आर प्राण।

एतो कथा आछे, एतो गान आछे,
एतो प्राण आछे मोर;
एतो सुख आछे, एतो साध आछे,
प्राण होये आछे भोर।

रवि-शशि भाँगि गाँथिब हार,
आकाश छाँकिया परिब वास।

साँझेर आकाशे करे गलागली,
अलस कनक जलद राश,
अभिभूत होये कनक-किरणे
राखिते पारे ना देहेर भार,
जेनरे विवसा होयेछे गोधूली,
पूरेब आंधार वेणी पड़े खुली,
पश्चिमेते पड़े खसिया-खसिया
सोनार आँचल तार।

एतो सुख केथो, एतो रूप कोथा,
एतो खेला कोथा आछे,
यौवनेर वेगे जाइब वहिया
के जाने काहार काछे।

(ओरे) अगाध वासना असीम आशा,
जगत देखिते चाइ!
जागियाछे साध चराचरमय
प्लाविया वहिया जाइ!

जातो प्राण आछे वहिते पारी,
जतो काल आछे वहिते पारी,
जतो देश आछे डुबाते पारी,
तबे आर किबा चाइ,
पराणेर साध ताइ!

अर्थ :

"मैं करुणा की धारा ढालूंगा, पाषाण की बनी हुई कारा तोड़ दूंगा। मैं पागल की तरह व्याकुल होकर संसार को प्लावित करता हुआ गाता घूमूंगा।

अपने बालों को खोलकर, फूल चुनता हुआ, इन्द्र-धनुष-जैसे पंखों से उड़कर, सूर्य की किरणों में अपनी हँसी बिखेरकर अपने प्राण ढालूंगा।

एक शिखर से दूसरे शिखर पर दौड़ूंगा। एक पर्वत से दूसरे पर्वत पर लोटूंगा। खिल-खिल हँसता हुआ, कल-कल गाता हुआ, ताल-ताल पर तालियां दूंगा। नदी होकर बह जाऊँगा, बह जाऊँगा, हृदय की बातें कहते-कहते बह जाऊँगा, गान गाते-गाते बह जाऊँगा।

जितना ही मैं प्राण दूँगा, उतना ही मेरे प्राण बहते जायँगे। प्राणों का फिर अन्त न होगा।

इतनी बातें हैं, इतने गान हैं, इतना मुझमें सुख है, इतनी साधें हैं कि मेरे प्राण मतवाले हो रहे हैं।

सूर्य और चन्द्र को चूर करके मैं हार गूँथूँगा। आकाश खींचकर वस्त्र पहनूँगा। संध्या के आकाश में राशि-राशि अलस और सुवर्ण के रंग वाले मेघ परस्पर आलिंगन करेंगे। मानो स्वर्ण-किरणों से अभिभूत होकर वे अपने देह का भार न सँभाल सकते हों। जैसे गोधूलि विवश हो गई है, पूर्व की ओर उसका अन्धकार वेणी-सा खुलकर गिर रहा है और पश्चिम में सोने का अंचल।

× × ×

इतना सुख कहाँ है ? इतना रूप कहाँ है ? इतनी क्रीड़ाएँ कहाँ हैं ? यौवन के वेग में मैं न जाने किसके पास वह जाऊँगा।

मेरे अन्दर अगाध वासना, असीम आशा है। मैं संसार को देखना चाहता हूँ। ऐसी साध जग आई है कि मैं इस चराचर जगत् को प्लावित करता हुआ वह जाऊँ।

मेरे अन्दर जितना प्राण है, मैं उसे ढाल सकूँ, जितना काल है, सब वहन कर सकूँ, जितने देश हैं, सबको डुबा सकूँ, तो और मुझे क्या चाहिए ?—मेरे प्राणों की यही साध है।"

रवीन्द्रनाथ की उक्त कविता तुलसीदास की सही-सही व्याख्या है।

तुलसीदास ने अपनी प्रेरणा से उद्वेलित होकर अपनी जो सृष्टि बनाई है, आइये, उसके सौन्दर्य का कुछ दर्शन हम भी करें।

तुलसीदास के राम और सीता मनुष्य-मात्र के आदर्श हैं। कितने सौभाग्य की बात हो, यदि तुलसीदास का अन्तर्जगत् हमारा जगत् हो जाय और हम घर-घर में राम और सीता, भरत और लक्ष्मण, दशरथ और हनुमान को बसा हुआ पायें।

आइये, हम पहले तुलसीदास के राम को देखें। तुलसीदास स्वयं राम के सम्बन्ध में हमें यह सूचना देते हैं :

सुनि सीतापति सील सुभाउ।
मोद न मन तनु पुलक नयन जल सो नर खेहर खाउ ॥
सिसुपन तें पितु मातु बन्धु गुरु सेवक सचिव सखाउ।
कहत राम बिधु बदन रिसौहैं सपनेहु लखेउ न काउ ॥

खेलत संग अनुज बालक नित जोगवत अनट अपाउ।
जीति हारि चुचुकारि दुलारत देत दिवावत दाउ॥
सिला साप संताप बिगत भई परसत पावन पाउ।
दई सुगति सो न हेरि हरख हिय चरन छुए को पछिताउ॥
भव धनु भंजि निदरि भूपति भृगुनाथ खाइ गये ताउ।
छमि अपराध छमाइ पायँ परि, इतौ न अनत समाउ॥
कह्यो राज, बन दियो नारि बस, गरि गलानि गे राउ।
ता कुमातु को मन जोगवत ज्यों निज तनु मरमु कुघाउ।
कपि सेवा बस भये कनौड़े, कहेउ पवनसुत आउ।
देवे को न कछू रिनियाँ हौं, धनिक तू पत्र लिखाउ॥
अपनाये सुग्रीव बिभीषन, तिन न तजेउ छल छाउ।
भरत सभा सनमानि सराहत, होत न हृदय अघाउ।
निज करुना करतूति भगत पर चपत चलत चरचाउ।
सकृत प्रनाम प्रनत जस बरनत सुनत कहत फिरि गाउ॥
समुझि-समझि गुन-ग्राम राम के उर अनुराग बढ़ाउ।
तुलसिदास अनयास राम पद पइहै प्रेम पसाउ॥

तुलसीदास के कथन को हम राम के जीवन में अक्षरशः सत्य पाते हैं।

पिता के प्रति पुत्र में कैसी भक्ति होनी चाहिए, इसे हमें राम ही के शब्दों में सुनना चाहिए। चित्रकूट में भरत से राम ने कहा था :

निज कर खाल खैंचि या तनु ते जो पितु पग पानहीं करावौं।
होउँ न उऋन पिता दसरथ तें कैसे ताके बचन मेटि पति पावौं॥

अहो, राम अपने ऊपर पितृ-भक्ति ही का भार नहीं लेते हैं, एक सत्पुत्र की तरह पिता के सम्मान की रक्षा का भी उनको ध्यान है।

युवावस्था में राम को गृह-सुख छोड़ना पड़ा था। गृह के सुख और वन के दुःख दोनों के बीच में जब उनको खड़ा होना पड़ा तब भी वह विचलित नहीं होते। उनके इस मनोबल ने पिता के हृदय को चूर-चूर कर डाला। दशरथ कहते हैं :

राज देन कहि बोलि नारि बस मैं जो कह्यो बन जान।
आयसु सिर धरि चले हरषि हिय कानन भवन समान॥

×   ×   ×

निठुर सो दीन्हों दियो बन चौगुनो चित चाउ।
हृदय दाड़िम ज्यों न बिदर्यो समुझि सील सुभाउ।

सुनि सुमन्त ! कि आनि सुन्दर सुवन सहित जिआउ ।
दास तुलसी नतरु मोको मरन अमिय पिआउ ॥

सच है, ऐसे पुत्र के वियोग में तो मृत्यु ही अमृत है ।

राम के स्वभाव के सम्बन्ध में सीता की साक्षी भी कम मधुर नहीं है। सीता हनुमान से कहती है :

आरज सुवन के तो दया दुवनहुँ पर,
मोहि सोच मोते सब बिधि नसानि ।

राम को वन में घुमा-फिराकर वापस लाने के लिए दशरथ ने सुमन्त को भेजा था। सुमन्त को राम ने जो उत्तर दिया, वह स्वर्णाक्षरों मे लिखने योग्य है :

मंत्रिहि राम उठाइ प्रबोधा । तात धरम मग तुम्ह सब सोधा ।
धरम न दूसर सत्य समाना । आगम निगम पुरान बखाना ।
मैं सोइ धरम सुलभ करि पावा । तजे तिहूँ पुर अपजसु छावा ।
संभावित कहँ अपजस लाहू । मरन कोटि सम दारुन दाहू ।

धर्म-पालन के लिए राम की यह दृढ़ता उनके स्वभाव की सच्ची झलक है।

राम मनुष्यों ही को नहीं, पशु-पक्षियों तक को भी अपने सुशील स्वभाव का सुख देते थे। राम के वन जाने पर उनके घोड़े कैसे विकल हुए थे, इसे कौशल्या के शब्दों में सुनिये :

आली ! हौं इन्हहिं बुझावौं कैसे ?
वार-बार हिहिनात हेरि उत जो बोलै कोउ द्वारे ।
अङ्ग लगाइ लिये बारे तें करुनामय सुत प्यारे ।
लोचन सजल, सदा सोवत से, खान-पान बिसराये ।
चितवन चौंकि नाम सुनि सोचत राम सुरति उर आये ॥

× × ×

राघौ ! एक वार फिरि आवौ ।
ए वर वाजि बिलोकि आपने बहुरो बनहिं सिधावौ ।
जे पय प्याइ पोखि कर पंकज वार-बार चुचुकारे ।
क्यों जीवहिं, मेरे राम लाड़िले ! ते अब निपट बिसारे ।
भरत सौगुनी सार करत हैं अति प्रिय जानि तिहारे ।
तदपि दिनहिं-दिन होत झाँवरे मनहु कमल हिम मारे ।

सुनहु पथिक ! जो राम मिलहिं वन कहियो मातु सँदेसो।
तुलसी मोहिं और सबहिन तें इन्हको बड़ो अँदेसो॥

अत्यन्त सरल और सुकोमल स्वभाव होने पर भी राम कर्तव्य-पालन में कैसे दृढ़ थे, इसका प्रमाण हमें राम और भरत के संवाद में मिलता है, जो चित्रकूट में हुआ था। भरत का अनुरोध अस्वीकार करते हुए राम ने अपने वंश की मर्यादा और कीर्ति की रक्षा के लिए यह कहा था :

तात भरत तुम्ह धरम धुरीना। लोक वेद विद प्रेम प्रवीना।
जानहु तात तरनिकुल रीती। सत्यसंध पितु कीरति प्रीती।
समउ समाजु लाज गुरुजन की। उदासीन हित अनहित मन की।
तुम्हहिं विदित सबही कर करमू। आपन मोर परम हित धरमू।
मोहि सब भाँति भरोस तुम्हारा। तदपि कहौं अवसर अनुसारा।

× × ×

मातु पिता गुरु स्वामि निदेसू। सकल धरम धरनीधरु सेसू।
सो तुम्ह करहु करावहु मोहू। तात तरनिकुल पालक होहू।

धन्य है, वंश का अभिमान वंश और वंशज दोनों के गौरव की वस्तु है।

राम का एक सुन्दर चित्र हमें उस समय का देखने को मिलता है जब जटायु रावण से युद्ध करके घायल होकर मार्ग में पड़ा था। राम उसको देखकर, उससे मिलकर, लक्ष्मण से कहते हैं :

सुनहु लखन ! खगपतिहि मिले वन मैं पितु मरन न जान्यौं।

फिर जटायु से कहते हैं :

मेरे जान तात कछु दिन जीजै।
देखिय आपु सुवन सेवा सुख मोहिं पितु को सुख दीजै॥

अर्थात् आप कुछ दिन और जीइये; पुत्र की तरह मुझसे सेवा लीजिये और मुझे पिता का सुख दीजिये।

कैसी आत्मीयता है ! तुलसीदास ने राम के हृदय को प्रेम और करुणा से सानकर बनाया था।

फिर वही राम एक वीर की भाँति जटायु से अपने स्वर्गीय पिता को संदेशा भेजते हैं :

सीता हरन तात जनि, कहेउ पिता सन जाय।
जो मैं राम तो कुल सहित, कहिहि दसानन आय॥

एक-एक शब्द में आत्म-विश्वास भरा है।

लक्ष्मण के घायल होने पर राम का एक और चित्र हमारे सामने आता

है। लक्ष्मण को शक्ति लगी है। वह मूर्छित पड़े हैं। उस दिन राम के मुख से लक्ष्मण के लिए उनका स्नेह बाहर आता है।

सुत बित नारि भवन परिवारा। होहिं जाहिं जग बारहिं बारा।
अस बिचारि जिय जागहु ताता। मिलहिं न जगत सहोदर भ्राता।

× × ×

मो पै तौ न कछू ह्वै आई।
पुर पितु मातु सकल सुख परिहरि जेहि बन-बिपति बँटाई।
ता सँग हौं सुरलोक सोक तजि सक्यों न प्रान पठाई॥
गिरि-कानन जैहैं साखामृग हौं पुनि अनुज सँघाती।
ह्वैहैं कहा बिभीषन की गति, रही सोच भरि छाती।

राम को सबसे बड़ी चिन्ता विभीषण की थी। अपने लिए तो निश्चिन्त थे कि लक्ष्मण की मृत्यु होने से वे भी शरीर त्याग देंगे। पर विभीषण के लिए उनकी की हुई प्रतिज्ञा कैसे पूरी होगी ?

राम का एक चित्र हमें उस समय का देखने को मिलता है, जब वे अयोध्या में वापस आते हैं। कैकेयी के कारण वे वन को गये थे। कैकेयी के मन में उसकी ग्लानि न रहने पाय, इसलिए राम नित्य उसे अपने शरीर में मर्म-स्थान में घाव की तरह सँभालते रहते थे। तुलसीदास कहते हैं :

कैकेयी जब लौं जियति रही।
मानी राम अधिक जननी तें जननिहुँ गँस न गही॥

× ×

ता कुमातु को मन जोगवत ज्यों निज तनु मरमु कुघाउ।

आगे हम राज-धर्म के पालन में राम के कठोर हृदय का दर्शन फिर करते हैं। अपवाद के कारण वे सीता को त्याग करने का विचार कर रहे हैं :

संकट सुकृत को सोचत जानि जिय रघुराउ।
परिहरे बिनु जानकी नहिं और अनघ उपाय।
पालिबे असिधार ब्रत प्रिय प्रेमपाल सुभाउ॥
निपट असमंजसहु बिलसति मुख मनोहरताउ।
परम धीर धुरीन हृदय कि हर्ष बिसमय काउ॥

अन्तिम चित्र राजा राम का है। राजा राम स्वेच्छाचारिता से राज नहीं कर रहे थे, साधारण प्रजा के बीच में बैठकर वे कहते थे :

जौं अनीति कछु भाखौं भाई। तौ मोहि बरजेहु भय बिसराई।

ऐसे राजा के राज में प्रजा सुखी क्यों न हो ? राम और राम-राज्य का

आदर्श हमारे सामने उपस्थित करके तुलसीदास ने अपने अन्तर्जगत् का जो दृश्य हमें दिखलाया है, वह श्लाघनीय ही नहीं, हमारे जगत् के लिए वाञ्छनीय और अनुकरणीय भी है।

अब आइये, हम सीता के जीवन का सौन्दर्य देखें। सीता ने राज-कुल में जन्म पाया, राज-कुल में उनका विवाह हुआ। मनुष्य-जीवन के लौकिक सुख का उन्होंने भोग प्रारम्भ ही किया था कि कर्तव्य-पालन की परीक्षा सामने आ जाती है। ऐसे अवसर पर सीता ने जो दृढ़ता दिखलाई है, उससे समस्त आर्य-जाति की स्त्रियों का सिर गर्व से ऊँचा उठ जाता है।

सीता के सुखों की बात हम नहीं करेंगे। वैसे सुख तो बहुत से राज-परिवारों में रानियों को प्राप्त हुए होंगे और अब भी हो रहे हैं, पर सीता की सच्ची मूर्ति हमें उनके दुःख में दिखाई पड़ती है। हम उसी की चर्चा करेंगे।

सीता प्रत्येक दिन प्रातःकाल उठकर, आलस्य छोड़कर, अपनी देवरानियों को लेकर सासुओं को प्रणाम करने जाती थीं। राम के वन जाने के दिन वे नहीं आईं, क्योंकि पति के साथ वन जाने की तैयारी में थीं। तब कौशल्या चिन्ता करती हैं :

मेन असासि सीय आगे करि मोपै सुतवधू न आई।

सास-पतोहू के बीच इस प्रकार का सौहार्द इस समय तो अलौकिक ही कहा जायगा।

वन जाते समय मार्ग में राम आगे चलते थे और सीता उनके पद-चिह्नों को बचाती हुई चलती थीं। पति के पद-चिह्न भी वे अपने पैर से छूना नहीं चाहती थीं। रास्ते की ग्रामीण स्त्रियों ने उस पर लक्ष्य किया था, और उन्हें आश्चर्य हुआ था। वे बेचारी शिष्ट-समाज के नियम जानती ही न थीं :

साँवर कुँअर के बराइ के चरन चिह्न
वधू पग धरति कहा धौं जिय जानिकै।

सीता का एक सुन्दर चित्र हमारे सामने उस समय आता है, जब राम वन जाते समय गंगा पार करके नाव से उतरकर तीर पर खड़े होते हैं और एक सभ्य पुरुष की तरह केवट को उतराई देने के लिए मन में विचार करते हैं। सीता, जो स्वयं इस औचित्य से परिचित थीं, अपने सुजन पति के मन की बात ताड़ जाती हैं और जब पति के पास उतराई देने के लिए कुछ नहीं था, अपनी मणि-जटित अँगूठी प्रसन्न-मन से केवट को देने के लिए उतारती हैं :

पिय हिय की सिय जाननिहारी। मनि दरी मुँमन मुदित उतारी॥

पति के साथ पत्नी की एकात्मकता का यह एक मनोहर दृश्य है।

सीता के स्वभाव का एक मनोमुग्धकर दर्शन हमें राम के शब्दों में मिलता है, जब पंचवटी में राम अपनी कुटी को सीता से सूनी पाकर उनका स्मरण करते हैं:

उठी न सलिल लिये प्रेम प्रमुदित हिये प्रिया न पुलकि प्रिय वचन कहे।

× ×

तरु जे जानकी लाये, ज्याये हरि करि कपि, हेरैं न हुँकरि।

जे सुक सारिका पाले, मातु ज्यों ललकि लाले, तेऊ न पढ़त।

इससे मालूम होता है सुगृहिणी सीता ने वन की कुटी को राज-भवन की तरह सुखदायक बना लिया था। वे राम के लिए भार-स्वरूपा नहीं बन गई थीं, बल्कि उनके मन को सदा सहारा देने के लिए प्रयत्नशील रहती थीं। राम जब बाहर से आते थे, तब वे उनके हाथ-मुँह धुलाने के लिए जल लेकर आगे आती थीं और मधुर वचनों से उनका श्रम दूर करती थीं। उन्होंने कुटी के आस-पास वृक्ष लगाये थे, मनोरंजन के लिए जानवर जिला रखे थे, तोता और मैना पाले थे और माता की तरह ललककर वे उनकी सेवा किया करती थीं। अपनी वन की गृहस्थी को उन्होंने सुखमय बना लिया था। अपने मन के सौन्दर्य को उन्होंने कुटी के आस-पास बिखेर दिया था।

वे केवल सरल और सुख में पली हुई भोली-भाली राज-कन्या ही नहीं थीं, समय-चतुर भी थीं। रावण जब उनको रथ पर बैठाकर आकाश-मार्ग से लिये जा रहा था, तब वे अपने कपड़े फाड़-फाड़कर और गहने निकाल-निकालकर नीचे फेंकती जाती थीं, जिससे राम को उनके जाने का मार्ग मिलता जाय। विपत्ति के समय में भी वे अपने पति और देवर की चिन्ता के निवारण का मार्ग खोजती जाती थीं।

सीता ने लक्ष्मण को उस समय कुछ अप्रिय वचन कहे थे, जब राम मारीच को मारने गये थे और मारीच ने लक्ष्मण का नाम लेकर पुकारा था। सीता के चित्त को अपनी यह भूल सदा पीड़ा देती रही। हनुमान से उन्होंने अशोक-वाटिका में मन का यह दुःख प्रकट भी किया था। उन्होंने पूछा:

रोष छमि सुधि करत कबहुँ ललित लछिमनलाल।

ऐसी कोमल स्वभाव वाली सीता रावण के सम्मुख सिंहिनी की तरह हो जाती हैं। उस समय के उनके वचन आर्य-ललनाओं की एक खास सम्पत्ति हैं।

सीता ने रावण को जो उत्तर दिया, उसमें उनकी निर्भयता सूर्य की तरह चमक रही है :

अधम निलज्ज लाज नहिं तोही। सठ सूने हरि आनेसि मोही।
स्याम सरोज दाम सम सुन्दर। प्रभु भुज करिकर सम दसकंधर।
सो भुज कंठ कि तव असि घोरा। सुनु सठ अस प्रमान पन मोरा।

एक प्रबल प्रतापी शत्रु को ऐसा उत्तर देना सहज आत्मबल का काम नहीं है।

हनुमान जब सीता से विदा लेने जाते हैं, तब सीता फिर अपना एक सुन्दर चित्र हमारे सामने रखती हैं। राम के वियोग-व्यथित मन को कहीं और पीड़ा न पहुँचे, इससे सीता कुछ संदेशा नहीं कहतीं :

कपि के चलत सिय को मनु गहबरि होइ आयो।
कहन चह्यो संदेस नहिं कह्यो पिय के जिय की जानि,
हृदय दुसह दुःख दुरायो।

कैसा अद्भुत प्रेम है ! अपने प्रियतम को किसी तरह से मेरी ओर से कष्ट न पहुँचे, यह ध्यान भी कितना मधुर है !

सीता ने हनुमान से प्रियतम के प्रेम की जो परिभाषा कही है, वह सच्चे प्रेम वाले हृदय ही से निकल सकती है :

पीतम बिरह तौ सनेह सरबसु।

सीता के प्रेम की सबसे कठिन परीक्षा उनकी अग्नि-परीक्षा है। उस समय भी वे विचलित नहीं होतीं।

तुलसीदास कहते हैं :

प्रभु के बचन सीस धरि सीता। बोली मन क्रम बचन पुनीता।
पावक प्रबल देखि बैदेही। हृदय हरष कछु भय नहिं तेही।
जो मन बच क्रम मम उर माहीं। तजि रघुबीर आन गति नाहीं।
तो कृसानु सब कै गति जाना। मो कहँ होहु श्रीखंड समाना।

प्रेम का ऐसा सुन्दर दृश्य तुलसीदास के अंतर्जगत् की बड़ी बहुमूल्य वस्तु है।

लंका से आकर सीता गृह-स्वामिनी बनती हैं। उस समय की उनकी दिनचर्या उनके चरित्र को और भी उज्ज्वल कर देती है :

तुलसीदास कहते हैं :

जद्यपि गृह सेवक-सेवकिनी। बिपुल सकल सेवा बिधि गुनी।
निज कर गृह परिचरजा करई। रामचन्द्र आयसु अनुसरई।

जेहि विधि कृपासिंधु सुख मानइ । सोइ कर श्री सेवा विधि जानइ ।
कौसल्यादि सासु गृह माहीं । सेवइ सबन्हि मान मद नाहीं ।

फिर भी सीता के दुर्भाग्य का अन्त नहीं हुआ । राम प्रजा में फैले हुए अपवाद को दूर करने के लिए सीता का त्याग करते हैं । राम की आज्ञा से लक्ष्मण सीता को वन में छोड़कर चलने लगते हैं, तब सीता कहती हैं :

लखनलाल कृपाल ! निपटहि डारिवी न विसारि ।
पालवी सब तापसनि ज्यों राजधरम विचारि ।

ऐसे संकट में भी जिसका धैर्य स्थिर रहा, उस सीता को धन्य है ! उस समय का करुण-दृश्य वाल्मीकि-जैसे मुनि को भी रुला देने में समर्थ था :

सुनत सीता वचन मोचत सकल लोचन वारि ।
वालमीकि न सके तुलसी सो सनेह सँभारि ।।

वाल्मीकि के आश्रम में सीता का समय कैसे कटता था, यह जानने की इच्छा स्वाभाविक ही है । तुलसीदास कहते हैं :

निरखि वाल विनोद तुलसी जाति वासर वीति ।
पिय चरित सिय चित चितेरो लिखत नित हित भीति ।।

+ + +

दुखी सिय पिय विरह तुलसी सुखी सुत सुख पाइ ।
आँच पय उफनात सींचत सलिल ज्यों सकुचाइ ।।

सीता-जैसा दुःख संसार में और किसी स्त्री ने सहन किया है, यह हमें इतिहास में नहीं मिलता । दुःख ही सीता का इतिहास है, और वही स्त्री-जाति को कल्याण-पथ पर ले जाने वाला भी है ।

इस प्रकार तुलसीदास का अन्तर्जगत् अनेक चमत्कारों से जगमगा रहा है । तुलसीदास का अन्तिम लक्ष्य उच्चकोटि का समाज उत्पन्न करना है, जिसमें राम-जैसे पुरुष, सीता-जैसी स्त्रियाँ, लक्ष्मण और भरत-जैसे भाई और हनुमान-जैसे सच्चे विश्वास-पात्र सेवक हों । सारा राम-चरित इसी भावना को लेकर निर्माण किया गया है ।

८

तुलसीदास और देवता

तुलसीदास राम के अनन्य भक्त थे। जहां-कहीं उन्हें अवसर मिला है, राम का यश गाने में उन्होंने कोई बात उठा नहीं रखी। रामचरित-वर्णन करते-करते जहां कहीं उन्हें शंका-सन्देह की गुंजाइश समझ पड़ी, राम के वकील की तरह वह, भ्रम-निवारण के लिए, बिना कुछ कहे आगे नहीं बढ़े। राम अपने विमुखों को भले ही क्षमा कर दें; पर तुलसीदास ने राम का पक्ष लेकर राम के विरोधियों को खोटी-खरी सुनाई है, उन्हें खूब डांटा-डपटा है। भक्त ही ठहरे, राम का विरोध कैसे सह सकते थे? 'रामचरितमानस' में प्रारंभ से लेकर अन्त तक उन्होंने स्त्रियों को सहज, जड़, अज्ञ और दुर्गुणों की राशि बतलाया है। स्त्रियों से वह इतना क्यों चिढ़े थे? क्या उनकी स्त्री ने उन्हें घर से निकाल दिया था, इसलिए? उसके लिए तो वह परम कृतज्ञ की तरह कहते हैं:

हम तो चाखा प्रेम रस, पतिनी के उपदेस।

फिर क्या बात थी?

अपने विरोधियों की तुलसीदास ने सदा उपेक्षा की है। कभी-कभी अत्यधिक कष्ट पाकर ही उन्होंने 'मानस', 'विनय-पत्रिका', 'गीतावली' और 'दोहावली' में राम, शिव और हनुमान से प्रार्थना की है कि मुझे लोग नाहक सता रहे हैं, आप मेरी रक्षा कीजिए। अपने शारीरिक और मानसिक कष्टों के लिए उन्होंने कभी किसी के अनिष्ट की कामना नहीं की। करते भी क्यों? शरीर और मन, दोनों को तो वह राम को समर्पण कर चुके थे। उनका अपना था ही क्या, जिसके लिए वे सांसारिक जनों से मोर्चा लेते फिरते? राम ही उनके तन, मन, धन थे। राम ही को वह सर्वत्र व्यापक देखते थे। देवता, दानव, यक्ष, नर, नाग, किन्नर, गन्धर्व सबसे वह राम को बड़ा समझते थे। राम की ईश्वरता में जहां किसी को कुछ सन्देह हुआ, तुलसीदास ने उसकी दुर्गति के लिए कोई कल्पना नहीं छोड़ी। राम से जितने-जितने ज़रा भी

विरोध प्रकट किया, वह देवता हो या मनुष्य, स्त्री हो या पुरुष, तुलसीदास ने उसको दण्ड देने में कुछ भी रिआयत नहीं की। राम-विमुख के लिए उनके दिल में मुरौवत बिलकुल नहीं थी। देवताओं ने अपने शत्रु राक्षसों के विध्वंस के लिए राम को वन भेजने का षड्यन्त्र रचा था, और वह षड्यन्त्र स्त्री-जाति—सरस्वती, मंथरा और कैकेयी द्वारा सफल हुआ था। क्या यही कारण तो नहीं था, जिसने तुलसीदास को स्त्री-जाति का विरोधी बना दिया ?

अब रहे देवता। देवताओं का जैसा परिहास तुलसीदास ने 'रामचरित-मानस' में किया है, वैसा और किसी कवि ने आज तक किसी जाति-विशेष या व्यक्ति-विशेष का किसी काव्य में किया है या नहीं, यह मैंने नहीं देखा। कवि की हैसियत से तुलसीदास को राम के अनुकूल और प्रतिकूल, सबकी बातें कहनी पड़ी हैं। पर जहाँ राम के विरुद्ध कुछ कहने का प्रसंग आया है, वहाँ उन्होंने बहुत सँभलकर पैर रखा है। वह सदा चौकन्ने दिखाई पड़ते हैं कि कोई बात राम की शान के विरुद्ध न निकल जाय। पर जहाँ अन्य देवताओं के विरुद्ध कुछ कहना पड़ा है, वहाँ उन्होंने बे-खटके लगाम ढीली कर दी है। जहाँ-जहाँ मौका मिला है, ब्रह्मा, विष्णु, महेश, इन्द्र और नारद तक का परिहास करने में वह नहीं चूके। यह क्या देवताओं से राम को कष्ट पहुँचाने का बदला नहीं है ?

सारे 'रामचरितमानस' में तुलसीदास ने देवताओं को केवल दो काम सौंप रखे हैं—दुन्दुभि बजाना और फूल बरसाना। जहाँ कोई अद्भुत घटना हुई, चाहे जंगल हो या बस्ती, घर के भीतर हो या बाहर, देवता झट फूल बरसाने लगते और दुन्दुभि बजा देते थे। मानो उनकी यह ड्यूटी थी कि वे दुन्दुभि और फूलों की झोली लिये घूमते रहें, और जहाँ जरूरत समझें, दुन्दुभि बजाकर फूल बरसाने लगें। कहीं-कहीं देवताओं की स्त्रियों को तुलसीदास ने नचाया और गवाया भी है। देवताओं का कोई रहस्य, चाहे वह भला हो या बुरा, खोलने में तुलसीदास ने कभी असावधानी नहीं की। राम के चरित में वह कभी दोष नहीं देखते थे। साधारण मनुष्य राम के किसी कार्य को दोष-युक्त न समझ लें, इसके लिए तुलसीदास बिना कुछ समझाए-बुझाए आगे नहीं बढ़ते थे। पर अन्य देवताओं के दोषों का उन्होंने कभी समर्थन नहीं किया। लीजिए, पहले-पहल विष्णु ही की करतूत सुनिये। नारद का अभिमान दूर करने के लिए विष्णु भगवान् ने एक रचना रची। उससे नारद को बड़ा विक्षोभ हुआ। भेंट होने पर नारद ने विष्णु भगवान् की अच्छी खबर ली। उन्होंने कहा :

पर संपदा सकहु नहिं देखी। तुम्हरे इरिषा कपट बिसेखी।
मथत सिन्धु रुद्रहि बौरायेहु। सुरन्ह प्रेरि विष-पान करायेहु।

असुर सुरा विष संकरहि, आप रमा मनि चारु।
स्वारथ साधक कुटिल तुम्ह, सदा कपट व्यवहार॥

परम स्वतन्त्र न सिर पर कोई। भावइ मनहिं करहु तुम्ह सोई।
भलेहि मंद मंदहि भल करहू। बिसमय हरष न हिय कछु धरहू।
डहँकि डहँकि परिचेहु सब काहू। अति असंकि मन सदा उछाहू।
करम सुभासुभ तुम्हहिं न बाधा। अब लगि तुम्हहि न काहू साधा।
भले भवन अब बायन दीन्हा। पावहुगे फल आपन कीन्हा।

तुलसीदास ने यहाँ नारद के मुँह से विष्णु की पोल खुलवाई है, तो एक अन्य स्थान पर सप्तर्षियों के मुँह से नारद का भण्डाफोड़ कराया है। नारद इधर की उधर लगाने में बड़े प्रवीण थे। उनकी सम्मति से उमा ने शिव के लिए नारद के विरुद्ध उन्हें ऐसा समझाया :

सुनत बचन बिहँसे रिषय, गिरिसभव तव देह।
नारद कर उपदेस मुनि, कहहु बसेउ को गेह॥

दच्छसुतन्ह उपदेसिन्हि जाई। तिन फिरि भवन न देखा आई।
चित्रकेतु कर घर उन घाला। कनककसिपु कर पुनि अस हाला।
नारदसिष जे सुनहिं नर-नारी। अवसि होहिं तजि भवन भिखारी।
मन कपटी तन सज्जन चीन्हा। आपु सरिस सबही चह कीन्हा।

लगे हाथों सप्तर्षियों ने शिवजी का भी रूप-वर्णन कर दिया :

निर्गुन निलज कुबेष कपाली। अकुल अगेह दिगम्बर ब्याली।
कहहु कवन सुख अस बर पाये। भल भूलिहु ठग के बौराये।
पंच कहे सिव सती बिबाही। पुनि अवडेरि मरायेन्हि ताही।

अब सुख सोवत सोचु नहिं, भीख माँगि भव खाहिं।
सहज एकाकिन्ह के भवन, कबहुँ कि नारि खटाहिं॥

शिवजी की बरात में भी शिव-स्वरूप का बड़ा उपहास किया गया है :

सिवहि संभुगन करहिं सिंगारा। जटा मुकुट अहि मौर सँवारा।
कुण्डल कंकन पहिरे ब्याला। तन बिभूति पट केहरि छाला।
ससि ललाट सुन्दर सिर गंगा। नयन तीनि उपबीत भुजंगा।
गरल कंठ उर नर सिर माला। असिव बेष सिवधाम कृपाला।
कर त्रिसूल अरु डमरु बिराजा। चले बसह चढ़ि बाजहिं बाजा।
देखि सिवहि सुर त्रिय मुसुकाहीं। बर लायक दुलहिनि जग नाहीं।

विष्णु विरंचि आदि सुर ब्राता। चढ़ि-चढ़ि वाहन चले बराता।
सुर-समाज सब भाँति अनूपा। नहिं बरात दूलह अनुरूपा।
विष्णु कहा अस बिहँसि तब, बोलि सकल दिसिराज।
बिलग-बिलग होइ चलहु सब, निज-निज सहित समाज॥
बर अनुहारि बरात न भाई। हँसी करइहउ पर पुर जाई।
विष्णु-वचन सुनि सुर मुसुकाने। निज-निज सेन सहित बिलगाने।
मन-ही-मन महेस मुसुकाहीं। हरि के व्यंग वचन नहिं जाहीं।
बर बौराह बरद असवारा। व्याल कपाल विभूषन छारा।

इन्द्र पर तुलसीदास विशेष कृपा रखते थे। जहाँ-कहीं उनकी चर्चा का अवसर उन्हें मिला, वहीं उन्होंने उसकी जी भरकर भर्त्सना की है। नारद जब तप कर रहे थे, तब इन्द्र ने उनको तप से भ्रष्ट करने के लिए काम को भेजा। इस पर क्रुद्ध होकर तुलसीदास कहते हैं:

जे कामी लोलुप जग माहीं। कुटिल काक इव सबहिं डराहीं॥

× × ×

सूख हाड़ लेइ भाग सठ, स्वान निरखि मृगराज।
छीनि लेइ जनि जानि जड़, तिमि सुरपतिहिं न लाज॥

परशुराम भी विष्णु के अवतारों में से एक थे। पर उन्होंने धनुष-भंग के अवसर पर राम के लिए कुछ कटु वाक्य कहे। राम-भक्त तुलसीदास अपने आराध्य देव का यह अपमान न सह सके। उन्होंने मौका मिलते ही लक्ष्मण के द्वारा परशुराम की भी पूरी फ़ज़ीहत करा डाली। यह प्रसंग इतना लम्बा-चौड़ा है कि यहाँ स्थानाभाव से सब नहीं दिया जा सकता और बिना सब उद्धृत किये उसका आनन्द नहीं मिल सकता। परशुराम-लक्ष्मण-संवाद बड़ा रोचक है। उसे 'रामचरितमानस' ही में पढ़ना चाहिए।

शिव के पाँच मुख थे। प्रत्येक मुख पर तीन नेत्र थे। इस तरह सब पन्द्रह नेत्र हुए। ब्रह्मा के चार मुख और आठ नेत्र थे। कार्तिकेय के छः मुख और बारह नेत्र तथा इन्द्र के एक हजार नेत्र थे। देवताओं की यह विचित्र बनावट देखकर तुलसीदास से बिना छेड़-छाड़ किये नहीं रहा गया। राम-विवाह के अवसर पर उन्होंने इन्द्र आदि को इकट्ठा ही पकड़ लिया। राम की बारात जा रही है। राम घोड़े पर सवार हैं। उस अवसर की बात है:

जेहि बर बाजि राम असवारा। तेहि सारदहु न बरनइ पारा।
संकर राम रूप अनुरागे। नयन पंचदस अतिप्रिय लागे।
हरि हित सहित राम जब जोहे। रमा समेत रमापति मोहे।

निरखि राम छवि विधि हरषाने। आठहि नयन जानि पछिताने।
सुर सेनप उर बहुत उछाहू। विधि तें डेवढ़ सुलोचन लाहू।
रामहिं चितव सुरेस सुजाना। गौतम साप परम हित माना।
देव सकल सुरपतिहि सिहाहीं। आजु पुरन्दर सम कोउ नाहीं।

राम को युवराज-पद देने की चर्चा चल रही थी। हाट-बाट, घर, गली, अर्थात् सर्वत्र इस उत्सव के सम्बन्ध की चर्चा थी। अयोध्या में आनन्द उमड़ रहा था। पर देवता विघ्न डालना चाहते थे। तुलसीदास रुष्ट होकर उन्हें कुचाली कहकर चोर से उसकी उपमा देते हैं :

सकल कहहिं कब होइहि काली। विघन मनावहिं देव कुचाली।
तिन्हहि सुहाइ न अवध बधावा। चोरहिं चंदिनि राति न भावा।

देवताओं ने सरस्वती से बड़ी विनती की कि हे माता! कोई ऐसी युक्ति करो, जिससे राज्य छोड़कर राम वन जायँ और देवताओं का कार्य सिद्ध हो। सरस्वती पहले अस्वीकार करती थीं। पर :

सारद बोलि विनय सुर करहीं। वारहिं-बार पाँय लै परहीं।
बार-बार गहि चरन सँकोची। चली विचारि विबुध मति पोची।
ऊँच निवास नीच करतूती। देखि न सकहिं पराइ विभूती।

देवता बड़े खुशामदी और चालाक थे। राम को उत्साहित करने के लिए वे राम की प्रशंसा सुनकर फूल बरसाते और दुन्दुभि बजाते थे। राम ने जब चित्रकूट को रहने के लिए पसन्द किया, तब इन्द्र आदि देवता वेश बदलकर, कोल-किरात की सूरत बनाकर आये, और उन्होंने राम के लिए झोंपड़े खड़े कर दिए। अपने मतलब के लिए इन्द्र को झोंपड़ा छाने में कुछ शर्म न आई। देवताओं ने सूरत क्यों बदली? एक कारण तो यह जान पड़ता है कि राम देवताओं को छप्पर छाने आदि का छोटा काम न करने देते। पर राम तो अन्तर्यामी थे। देवताओं का छद्म वेश उनसे छिपा थोड़े ही रहा होगा? दूसरा कारण रावण को धोखा देना था। देवता रावण से बहुत डरते थे। रावण को कहीं मालूम हो जाता कि देवता राक्षसों के विरुद्ध षड्यंत्र रच रहे हैं, उन्हीं की प्रेरणा से राम वन को आये और अब वे उनके लिए सब सुभीते करते फिरते हैं, तो वह उन्हें अच्छी तरह दण्ड देता। फिर देवताओं को यह संदेह भी तो था कि राम रावण को मार सकेंगे या नहीं। इसी से वे प्रकट रूप में राम की सहायता नहीं करते थे। रावण यदि कभी देवताओं पर यह दोष लगाता कि उन्होंने उसके विरुद्ध राम की सहायता की, देवता साफ़-साफ़ इन्कार कर सकते थे।

भरत राम को मनाने के लिए चित्रकूट जा रहे हैं। उनके प्रभाव से :

भइ मृदु महि मग मंगलमूला।
किये जाहिं छाया जलद, सुखद बहइ वर वात।
तस मग भयेहु न राम कहँ, जस भा भरतहि जात ॥

यह प्रभाव देवताओं को असह्य हो गया। देवताओं के राजा बड़े तिकड़मी थे। स्वार्थ-साधन के लिए छल-कपट करना उनके बाएँ हाथ का खेल था :

देखि प्रभाव सुरेसहिं सोचू। जग भल भलेहिं पोच कहँ पोचू।
गुरु सन कहेउ करिय प्रभु सोई। रामहिं भरतहि भेंट न होई।
राम सकोची प्रेम वस, भरत सुप्रेम पयोधि।
वनी वात विगरन चहत, करिय जतन छल सोधि।
वचन सुनत सुरगुरु मुसुकाने। सहसनयन विनु लोचन जाने।
सदा राम सेवक रुचि राखी। वेद पुरान साधु सुर साखी।
अस जिय जानि तजहु कुटिलाई। करहु भरत पद प्रीति सुहाई।
स्वारथ विवस विकल तुम होहू। भरत दोस नहिं राउर मोहू।

गुरु की वात सुनकर इन्द्र को कुछ ढाढ़स हुआ। वह फिर खुशामद करने लगा :

वरषि प्रसून हरषि सुरराऊ। लगे सराहन भरत सुभाऊ।

राम को लौटाने में भरत के प्रयत्न को निष्फल करने की इच्छा से इन्द्र ने वड़े-वड़े प्रपंच रचे। तुलसीदास ने इन्द्र को फटकारा भी खूव।

लंका-कांड में देवताओं का रूप स्पष्ट दिखाई पड़ता है। पहले वे सदा शंकित रहते थे कि राम से राक्षसों का नाश हो सकेगा या नहीं। इसीसे वे खुल्लम-खुल्ला, प्रकट रूप में राम की सहायता नहीं करते थे। हां, राम के लिए सव सुभीते अवश्य कर देते थे। राम-रावण के युद्ध के समय रावण को यह सन्देह हुआ कि देवता राम की मदद कर रहे हैं, क्योंकि राम के वाणों से जव रावण व्याकुल हो जाता था, तव देवता राम पर फूल वरसाते और दुन्दुभि वजाते थे। इससे रावण वड़ा कुढ़ता था।

ऋषियों-मुनियों की मुलाकात के अवसर पर राम जव राक्षसों के विध्वंस की प्रतिज्ञा करते थे, तव देवता फूल वरसाते और दुन्दुभि वजा देते। लंका में राम ने जव रावण के कुटुम्वियों को मार डाला, तव देवताओं को कुछ तसल्ली हुई। उनको विश्वास हुआ कि रावण को मार सकते हैं। अव वे निर्भय होकर राम की सहायता करने लगे :

रावन रथी बिरथ रघुबीरा। देखि भई देवन उर पीरा।
देवन्ह प्रभुहि पयादे देखा। उर उपजा अति छोभ बिसेखा।
सुरपति निज रथ तुरत पठावा। हरष सहित मातलि लइ आवा।

अब तक देवताओं के उर में पीड़ा नहीं हुई थी। जब रावण बेचारा अकेला रह गया, तब स्वार्थी सुरों ने समझा कि अब राम को रथ दे दो, भय की बात नहीं।

रावण की माया के प्रभाव से जब असंख्य रावण युद्ध में प्रवृत्त हो गए, तब :

डरे सकल सुर चले पराई। जय कै आस तजहु अब भाई।
सब सुर जिते एक दसकन्धर। अब बहु भये तकहु गिरिकंदर।

पर राम ने जब रावण की माया नष्ट कर डाली, तब :

रावन एक देखि सुर हरषे। फिरे सुमन बहु प्रभु पर बरषे।

रावण ने जब देखा कि देवगण राम की प्रशंसा कर रहे हैं, तब वह बहुत चिढ़ा और यह कहता हुआ झपटा :

सठहु सदा तुम मोर मरायल। कहि अस कोपि गगन पथ धायल।
हाहाकार करत सुर भागे। खलहु जाहु कहँ मोरे आगे।

इस प्रकार रामायण में प्रायः सर्वत्र देवताओं को निकम्मा, डरपोक, स्वार्थी, और खुशामदी दिखाया गया है। देवता अपना मतलब निकालने में सब तरह का छल, अंग्रेजी भाषा में पॉलिसी, कर सकते थे। तुलसीदास ने देवताओं का चित्र अच्छा नहीं दिखलाया।

९

तुलसीदास और स्त्री-जाति

आजकल कुछ समाज-सुधारकों और पाश्चात्य-शिक्षा के प्रभाव से जगमगाती हुई युवतियों ने यह आन्दोलन शुरू किया है कि तुलसीदास नारी-जाति को बड़ी घृणा की दृष्टि से देखते थे। और प्रमाण में उन्होंने उनकी एक चौपाई को विशेष रूप से जनता के सामने रखा है। वह चौपाई यह है :

ढोल गँवार सूद्र पसु नारी। सकल ताड़ना के अधिकारी।

देवियाँ इसे अपमान समझती हैं और बदले में वे तुलसीदास को भी खोटी-खरी सुना बैठती हैं। इसका एक यह दुष्परिणाम तो उन्हें हाथों-हाथ मिल गया कि वे तुलसीदास से मिलने वाले अन्य लाभों से वे वंचित हो गईं। दूसरे कुछ अंशों में उनके अविवेक का भी दिग्दर्शन हो गया। यह अविवेक कवि के साथ न्याय करने में हुआ है। कवि को तो नाना रूप धारण करने पड़ते हैं। वह रावण के मुख में बैठकर राम को भी गालियाँ देता है और राम के मुख में बैठकर सज्जनों और दुष्टों के लक्षण भी गिनाता है। वह सूर्पणखा के मुख से बोलता है और अनुसूया के भी। वही लक्ष्मण भी बन जाता है, और परशुराम भी। इन कामों में कवि का अपना भाग इतना ही होता है कि वह एक प्राञ्जल भाषा में, वक्ता के कथन को अच्छी तरह व्यक्त कर देता है। यहाँ यह तर्क किया जा सकता है कि कवि जो कहलाना चाहता है, वही कहलाता है, और जो उसके सिद्धान्त के विरुद्ध होता है, उसे छोड़ देता है। यह सच है; पर ऐसा तर्क उपस्थित होने पर प्रसंग देखना चाहिए कि कौन सी बात किस अवसर पर कही गई है और वह कहाँ तक वहाँ स्वाभाविक है।

'ढोल-गँवार' वाली चौपाई को लीजिये। उसे समुद्र ने राम से कहा था, जब राम ने उससे पार उतरने का रास्ता माँगा था। समुद्र ने अपनी तुलना में कई पदार्थों के नाम गिना दिये थे, जिनके साथ एक सा व्यवहार किया जाता है और बोल-चाल में यह स्वाभाविक भी है। और यह तुलसीदास के दिमाग की उपज है भी नहीं; यह तो 'गर्ग-संहिता' के इस श्लोक का अनुवाद है :

दुर्जनाः शिल्पिनो दासा दुष्टाश्च पटहाः स्त्रियः ।
ताड़िता मार्दवं यान्ति न ते सत्कार भाजनम् ॥

न्याय की दृष्टि से मूल अपराधी गर्ग मुनि को मानना चाहिए। पर वे संस्कृत भाषा की आड़ में बैठे हैं। उनको कोई छू नहीं सकता। तुलसीदास का अपराध यही है कि उन्होंने गर्गमुनि के उक्त वचन को उस भाषा में कर दिया, जिसे समाज-सुधार के लिए चिंतित देव और देवियां समझ सकते हैं।

संस्कृत में स्त्रियों के पक्ष-विपक्ष में अनेक श्लोक मिलते हैं। कुछ विपक्ष के श्लोक लीजिये—

एक संस्कृत-कवि ने तो किसी स्त्री को सती माना ही नहीं :

'विष्णु पुराण' में लिखा है :

योषितो नावमन्येत न चासां विश्वसेद् बुधः ।

'बुद्धिमान् पुरुष स्त्रियों का अपमान न करें और उनका विश्वास भी न करें। अर्थात् विश्वास के कामों में उनको पड़ने ही न दें।'

अश्वघोष ने लिखा है :

वचनेन हरन्ति वल्गुना निशितेन प्रहरन्ति चेतसा ।
मधु तिष्ठति वाचि योषितां हृदये हालाहलं महद्विषम् ॥

'स्त्रियां मधुर वचनों से पुरुष का चित्त हरण कर लेती है, पर क्रूर स्वभाव से उनको हानि पहुँचाती हैं। उनके वचन में मधु और हृदय में भयंकर हलाहल विष होता है।'

चाणक्य का आदेश है :

विनयं राजपुत्रेभ्यः पंडितेभ्यः सुभाषितम् ।
अनृतं द्यूतकारेभ्यः स्त्रीभ्यः शिक्षेत कैतवम् ॥

'राजकुमारों से विनय, पंडितों से मीठा वचन, जुआरियों से झूठ और स्त्री से छल सीखना चाहिए।'

कल्हण ने 'राजतरंगिणी' में लिखा है :

निसर्गतरला नार्यः को नियंत्रयितुं क्षमः ।

'स्त्रियां स्वभाव ही से विलासिनी होती हैं, उन्हें कौन नियंत्रण में रख सकता है ?'

तुलसीदास के पहले और पीछे के संतों ने भी तो स्त्रियों के विपक्ष में बहुत-कुछ कहा है :

कबीर साहब कहते हैं :

छोटी-मोटी कामिनी, सब ही विष की बेलि ।
बैरी मारै दांव दै, ये मारैं हँसि खेलि ॥

जहाँ जराई सुन्दरी, तू जनि जाइ कबीर।
उड़िके भसम जो लागसी, सूना होय सरीर॥
× × ×
सब सोने की सुन्दरी, आवै बास सुवास।
जो जननी होय आपनी, तऊ न बैठे पास॥
× × ×
नारी की झांई परत, अंधा होत भुजंग।
कबीर तिनकी कौन गति, जो नित नारी-संग॥
× × ×
नैनों काजर पारि कै, गाढ़े बाँधे केस।
हाथों मेहँदी लाइकै, बाघिनि खाया देस॥

दादू साहब कहते हैं :

नारी नैन न देखिये, मुख सूं नाँव न लेइ।
कानौं कामिणि जिण सुणौं, यहु भण जाण न देइ॥

पलटू साहब ने तो बड़ा ही भय प्रकट किया है। वे कहते हैं :

मुये सिंह की खाल को, हस्ती देखि डराय।
असिउ वरिस की बूढ़िको, पलटू ना पतियाय॥

हिंदी ही में नहीं, गुजराती में भी स्त्रियों के विपक्ष में विषैले वचन मिलते हैं। ब्रह्मानंद स्वामी कहते हैं :

विष की भोमी, बीज विष, विष बेली विस्तार।
विष डाली विष पत्र फल, नखसिख विषतन नार॥

मेरा खयाल है, अन्य भारतीय भाषाओं में भी संतों के स्त्री-विरोधी पद मिलते हैं। संतों के वचन तो प्रायः उसी भाषा में हैं, जो तुलसीदास की है; पर तुलसीदास का विरोध मुख्यतः इस कारण से किया जा रहा है कि उनका प्रचार अधिक है और प्रभाव भी। उसी प्रभाव से सुधार-प्रिय स्त्री-पुरुष आशंकित हो उठे हैं।

तुलसीदास के 'रामचरितमानस' में ऐसे दोहे और चौपाइयां भी हैं, जो स्पष्टतः कवि के निजी विचारों के द्योतक हैं और स्त्रियों के प्रति घृणा-सूचक हैं। यह कवि पर संत-मत का प्रभाव सूचित करता है। तुलसीदास की पहली रचना 'वैराग्य-संदीपनी' मानी जाती है। उससे यह प्रकट होता है कि प्रारम्भ में उनका झुकाव संत-मत की ओर था, और स्त्री-विरोधी भाव उन्होंने उसी से लिये हैं। मेरा निजी मत तो यह है कि उन्होंने अपने ही नहीं, बल्कि अपने

समय के हिन्दू-समाज के सब अंगों में व्याप्त विचार-धाराओं को 'रामचरित-मानस' में एक केन्द्र पर लाने का एक प्रयोग किया है। उसमें शैव, वैष्णव, वेदान्ती, संत, नीति-शास्त्री और स्मृतिकार आदि सभी के विचारों का संकलन किया गया है। जिसका जो विषय प्रिय हो, वह उसमें से चुन ले सकता है। तुलसीदास का तो एक ही विषय है कि सबको घेर-घारकर राम-भक्ति के एक केन्द्र पर ले आना। अतएव जहां उन्होंने नारी-निंदा की है, वहां यह समझना चाहिए कि वह संत-मतानुयायियों के लिए है। सबके लिए नहीं। नारी-निंदा संतों के लिए है, गृहस्थों के लिए नहीं। उत्सवों के प्रसंगों में स्त्रियों का वर्णन उन्होंने जिस सरसता से किया है उनसे तो उल्टा यह कहा जा सकता है कि वे बड़े रसिक स्वभाव के थे।

यहां हम उनके स्त्री-विरोधी वचनों को एकत्र करके अपने पाठकों के सम्मुख रखना चाहते हैं।

'रामचरितमानस' के प्रारम्भ ही से स्त्रियों के सम्बन्ध में व्यंग्य-वचन मिलने लगते हैं। सती को जब राम के ईश्वर होने में सन्देह हुआ था, तब शिवजी ने कहा था :

सुनहि सती तव नारि सुभाऊ।
संसय अस न धरिअ उर काऊ॥

भाव यह है कि स्त्रियां बड़े शक्की स्वभाव की होती हैं।

सती ने राम की परीक्षा लेने वाली बात शिवजी से छिपा ली थी। इस पर तुलसीदास का कहना है कि :

सती कीन्ह चह तहहुँ दुराऊ।
देखहु नारि सुभाव प्रभाऊ॥

सती के मुख से भी नारी-जाति की जड़ता और अज्ञता की स्वीकृति दिलाई गई है :

सती हृदय अनुमान किय, सबु जानेउ सर्बग्य।
कीन्ह कपटु मैं संभु सन, नारि सहज जड़ अग्य॥

(बाल-कांड)

सती ने पिता के यज्ञ में शरीर त्यागकर सती-धर्म का परमोज्ज्वल उदाहरण संसार के सामने रखा, फिर भी स्त्री-जाति के अयोग्य होने का भ्रम इनको बना ही रहा। शिवजी से राम-चरित का वर्णन सुनने की लालसा प्रकट करते हुए उन्होंने स्त्री-मात्र के लिए अपना यह मत व्यक्त किया है :

जदपि जोषिता नहिं अधिकारी।
दासी मन क्रम वचन तुम्हारी॥

(बाल-कांड)

राम के वन जाने के समय अयोध्या के नर-नारियों ने भी कैकेयी का हठ देखकर स्त्री-स्वभाव की कड़ी आलोचना की है :

सत्य कहहिं कवि नारि सुभाऊ।
सब विधि अगहु अगाध दुराऊ॥
निज प्रतिबिंब बरुकु गहि जाई।
जानि न जाइ नारि गति भाई॥

(अयोध्या-कांड)

इसी के आगे प्रबला अबला का व्यंग्यात्मक यशोगान भी है :—

काह न पावक जारि सक, का न समुद्र समाइ।
का न करै अबला प्रबल, केहि जग कालु न खाइ।

(अयोध्या-कांड)

भरत से भी कैकेयी की भर्त्सना कराते हुए स्त्री-मात्र को सकल कपट, अघ और अवगुणों की खान कहलाया गया है :

बिधिहु न नारि हृदय गति जानी।
सकल कपट अघ अवगुन खानी॥

(अयोध्या-कांड)

आगे चलकर गाँव की गँवारिनों ने अपनी निन्दा स्वयं की है :

कहँ हम लोक वेद विधि हीनी।
लघु तिय कुल करतूति मलीनी॥

(अयोध्या-कांड)

अनुसुइया ने सीता से स्त्री-धर्म का वर्णन तो बड़े विशद रूप से किया, पर उन्होंने भी स्त्री-मात्र को 'सहज अपावनि' ही कहा :

सहज अपावनि नारि, पति सेवत सुभ गति लहइ।

(अरण्य-कांड)

शबरी ने स्त्री-जाति को तीन बार 'अधम' कहकर उसकी अत्यन्त अधमता की घोषणा की है :

अधम ते अधम अधम अति नारी।
तिन्ह महँ मैं मतिमंद गँवारी॥

(अरण्य-कांड)

एक-पत्नीव्रती राम ने भी स्त्री-जाति की स्वेच्छाचारिता की शिकायत की है :

सास्त्र सुचिंतित पुनि-पुनि देखिय ।
भूप सुसेवित बस नहिं लेखिय ॥
राखिय नारि जदपि उर माँही ।
जुवती सास्त्र नृपति बस नाहीं ॥

(अरण्य-कांड)

आगे चलकर राम ने अपने वेदान्तिक प्रवचन में लक्ष्मण से स्त्री-जाति की अपराजेयता की भी चर्चा की है :

लछिमन देखत काम अनीका ।
रहहिं धीर तिन्हकें जग लीका ॥
एहि कें एक परम बल नारी ।
तेहिते उबर सुभट सोइ भारी ॥
तात तीनि अति प्रबल खल, काम क्रोध अरु लोभ ।
मुनि विज्ञान धाम मन, करहिं निमिष महुँ छोभ ॥
लोभ के इच्छा दंभबल, काम के केवल नारि ।
क्रोध के परुष बचन बल, मुनिवर कहहिं बिचारि ॥

(अरण्य-कांड)

पंपा-सर के तट पर विश्राम के लिए राम एक वृक्ष के नीचे बैठ गए थे। मौका देखकर नारद मुनि दर्शनार्थ आ गए। राम ने उनसे भी स्त्री-जाति की खूब निन्दा की :

काम क्रोध लोभादि मद, प्रबल मोह कै धारि ।
तिन्ह महँ अति दारुन दुखद, माया रूपी नारि ॥
सुनु मुनि कह पुरान स्रुति संता ।
मोह बिपिन कहुँ नारि बसंता ॥
जप तप नेम जलास्रय झारी ।
होइ ग्रीषम सोखइ सब नारी ॥

× × ×

पाप उलूक निकर सुखकारी ।
नारि निबिड़ रजनी अँधियारी ॥
बुधि बल सील सत्य सब मीना ।
बनसी सम त्रिय कहहिं प्रबीना ॥

अवगुन मूल सूलप्रद, प्रमदा सब दुख खानि।
तातें कीन्ह निवास, मुनि मैं यह जिय जानि॥

(अरण्य-कांड)

× × ×

युवती नारी से भयभीत होकर तुलसीदास स्वयं भी कहते हैं :

दीप सिखा सम जुवति तन, मन जनि होसि पतंग।
भजहिं राम तजि काम मद, करहिं सदा सतसंग॥

(अरण्य-कांड)

रावण के मुख से भी नारी के स्वभाव की निन्दा कराई गई है :

सभय सुभाव नारि कर साँचा।
मंगल महुँ मन भय अति काँचा॥

(सुन्दर-कांड)

नारि स्वभाव सत्य कवि कहहीं।
अवगुन आठ सदा उर रहहीं॥
साहस अनृत चपलता माया।
भय अविवेक असौच अदाया॥ [1]

(लंका-कांड)

लक्ष्मण को शक्ति लगी, तब राम ने भाई के मुकाबले में स्त्री का मूल्य कम लगाया है :

जैहउँ अवध कवन मुँह लाई।
नारि हेतु प्रिय भाइ गँवाई॥
बरु अपजस सहतेउँ जग माँही।
नारि-हानि विशेष छति नाहीं॥

(लंका-कांड)

कागभुसुण्डि ने भी नारी को जड़ जाति का माना है :

पुरुष प्रताप प्रबल सब भाँती।
अबला अबल सहज जड़ जाती॥

(उत्तर-कांड)

---

१. यह इस श्लोक का अनुवाद है—
अनृतं साहसं माया मूर्खत्वमतिलोभता।
अशौचं निर्दयत्वं च स्त्रीणां दोषाः स्वभावजाः॥

'दोहावली' में कुछ दोहे ऐसे भी मिलते हैं, जो तुलसीदास के निज के कहे हुए हैं, किसी से कहलाये नहीं गये हैं :

जनम-पत्रिका बरति कै, देखहु मनहिं बिचारि।
दारुन बैरी मीचु के, बीच बिराजति नारि॥

जन्म-कुण्डली में छठा, सातवां और आठवां स्थान क्रमशः शत्रु, स्त्री और मृत्यु का माना जाता है। इसी को लक्ष्य करके यह विनोद किया गया है।

'दोहावली' में एक दोहा इससे भी अधिक कौतूहल का है :

अमिय गारि गारेउ गरल, नारि कीन्ह करतार।
प्रेम बैर की जननि जुग, जानहिं बुध न गँवार॥

यहां तक तो स्त्रियों के विरोध की बातें हुईं। इनसे नये विचारों के युवक-युवतियों का चित्त विक्षुब्ध हो सकता है। पर तुलसीदास का उद्देश्य समझ लेने पर तो उनके प्रति हम कृतज्ञ हो जायेंगे। 'रामचरितमानस' की रचना उन्होंने अपना पांडित्य दिखाने के लिए नहीं की, बल्कि वह तो हिन्दू-जाति के पुनरुद्धार का एक प्रयोग है। उनके समय में पुरुषों में कामुकता बढ़ रही थी। शिक्षित, अशिक्षित सभी समाजों में स्त्री-ही-स्त्री की चर्चा चल रही थी, और लोग अपने जातीय गुणों और संस्कृति को भूल रहे थे। यहां तक कि वृन्दावन में बसने वाले बुड्ढे हितहरिवंश जी भी शृङ्गार-रस में सराबोर रहते थे और गाया करते थे कि:—

कृश कटि पृथु नितंब किंकिनि वृत कदलि खंभ जघनी।
पद कंबुज जावक जुत भूषन पीतम उर अवनी॥
नाभि गँभीर मीन मोहन मन खेलन को ह्रदिनी।
नव नव भाव बिलोम भाम इम बिहरति वर करिनी॥

तब साधारण गृहस्थों की तो बात ही क्या? ऐसे समय में पुरुषों का चित्त स्त्रियों की ओर से हटाकर, प्राचीन सत्पुरुषों की याद दिलाकर, हृदयों में सदाचार जगाकर उनको सन्मार्ग दिखलाना ही उनका ध्येय था, और वह समय के अनुसार बहुत ही उचित था।

मैंने तुलसीदास के करीब-करीब सभी ग्रन्थों का अच्छी तरह अध्ययन किया है। मुझे तो वे स्त्री-जाति के विरोधी नहीं जान पड़े। उन्होंने उन्हीं को श्रेष्ठ कहा है जो 'जननी सम जानहिं पर नारी।' यह उस समय की प्रचंड कामाग्नि को बुझाने या शान्त करने के लिए ही कहा गया है। तुलसीदास तो यहां तक सावधान रहते थे कि सीता के शृङ्गार के वर्णन में लिखा कि 'सोह नवल तन सुन्दर सारी।' तत्काल उनको ऐसा लगा कि कहीं इससे

पाठक या श्रोता के मन में काम-वासना न जागृत हो, इससे फौरन कहा—'जगत जननि अतुलित छवि भारी।' एक 'जननि' शब्द ने प्रेम को सात्विक बना दिया। हमें कृतज्ञ होना चाहिए कि तुलसीदास ने हमें उस आग से बचा लिया जो हमारे चिर-संचित सद्गुणों को जला डालती।

'नारि-स्वभाव' वाली चौपाई का मूलाधार संस्कृत का यह प्राचीन श्लोक है :

अनृतं साहसं माया मूर्खत्वमतिलोभता।
अशौचं निर्दयत्वं च स्त्रीणां दोषाः स्वभावजाः॥

'दोहावली' में तुलसीदास का एक दोहा है, जो अवश्य उनकी निजी उक्ति है :

जनम पत्रिका बरतिकै, देखहु मनहिं विचारि।
दारुन बैरी मीच के, बीच बिराजति नारि॥

जन्म-कुण्डली में छठा, और सातवाँ स्थान क्रमशः शत्रु, स्त्री और मृत्यु का माना जाता है। इसी को लक्ष्य करके कवि ने यह विनोद किया है।

कवि के इस विनोद का उत्तर हमें आनन्दित होकर ही देना चाहिए। यदि इस पर कोई क्रोध प्रकट करे, तब तो ठाकुर लोगों को भी तुलसीदास का विरोधी हो जाना चाहिए। क्योंकि उन्होंने एक जगह ठाकुर को ठग और चोर के बीच में बैठा दिया है :

राम कृष्ण सबही कहैं, ठग ठाकुर औ' चोर।
बिना प्रीति रीझत नहीं, तुलसी नन्दकिसोर।

१०

तुलसीदास के छन्द

तुलसीदास ने निम्न लिखित छन्दों में अपनी रचनाएं की हैं। इनमें वे छन्द नहीं दिये जा रहे हैं, जिनका उपयोग उन्होंने 'गीतावली' और 'विनय-पत्रिका' में किया है :

१—चौपाई, २—दोहा, ३—सोरठा, ४—चौपैया, ५—डिल्ला, ६—तोमर, ७—हरिगीतिका, ८—त्रिभंगी, ९—अनुष्टुप, १०—इन्द्रवज्रा, ११—तोटक, १२—नगस्वरूपिणी, १३—भुजंगप्रयात, १४—मालिनी, १५—रथोद्धता, १६—वसन्ततिलका, १७—वंशस्थ, १८—शार्दूलविक्रीड़ित, १९—स्रग्धरा, २०—सवैया, २१—छप्पय, २२—घनाक्षरी, २३ झूलना, २४—सोहर, २५—बरवै।

११

संगीतज्ञ, गणितज्ञ और ज्योतिषज्ञ तुलसीदास

तुलसीदास को काव्य के सिवा और भी कई विषयों का अच्छा ज्ञान था। उनकी रचनाओं में हमें इसके प्रमाण मिलते हैं।

संगीत का ज्ञान तो उनको बहुत अच्छा रहा ही होगा, यह तो हमें भिन्न-भिन्न राग-रागनियों में रचे हुए उनके पदों ही से विदित होता है। 'गीतावली' और 'विनय-पत्रिका' में निम्न लिखित राग-रागनियों के पद हैं —

असावरी, जैतश्री, बिलावल, केदारा, सोरठ धनाश्री, कान्हड़ा, कल्याण, ललित, विभास, नट, टोड़ी, सारंग, सूहो, मलार, गौरी, मारू, भैरव, भैरवी, चंचरी, बसंत, रामकली और दंडक।

'राम-शलाका' और 'रामाज्ञा-प्रश्न' के निर्माण में तुलसीदास ने अपनी गणितज्ञता का भी अच्छा परिचय दिया है। चौपाइयों से रामशलाका-चक्र का निर्माण सहज नहीं। उनकी 'दोहावली' और 'सतसई' में भी कई ऐसे दोहे मिलते हैं, जिनसे गणित में उनकी अच्छी गति और रुचि दिखाई पड़ती है। पहले नौ के पहाड़े का एक उदाहरण दिया जा चुका है। 'दोहावली' के इस दोहे में उन्होंने अपनी गणितज्ञता का एक और भी अच्छा प्रमाण दिया है :

नाम चतुर्गुन पंचयुत, दूने हर वसु शेष।
तुलसी सकल चराचर, रामनाम मय देख॥

'किसी नाम के अक्षर गिनकर उसके चौगुने करो, फिर उसमें पांच जोड़ो, फिर उसे दूना करो, फिर उसे आठ से भाग दो, तो जो बचेगा, वह दो होगा, और वही राम के दो अक्षर हैं।' कैसी सुन्दर कल्पना है!

तुलसीदास को ज्योतिष का भी अच्छा ज्ञान था, ऐसा उनकी 'दोहावली' के दोहों से ज्ञात होता है। यहां इस विषय के कुछ दोहे दिये जाते हैं :

स्रुतिगन करगन पुजुग मृग, हय रेवती सखाउ।
देहि लेहि धन धरनि अरु, गयहु न जाइहिं काउ॥

'श्रुति अर्थात् श्रवण का गुण श्रवण, धनिष्ठा, शतभिष, कर अर्थात् हस्त

का गण हस्त, चित्रा, स्वाती, पु-कार युक्त दो अर्थात् पुष्प और पुनर्वसु, मृगशिरा, हय (अश्विनी), रेवती और सखाउ (अनुराधा) इन नक्षत्रों में दिया हुआ, लिया हुआ और धरती में गाड़ा हुआ धन नष्ट नहीं होता।'

ऊगन पूगन वि अज कृ म, आ भ अ मू गन साथ।
हरो धरो गाड़ो दियो, धन फिरि चढ़ै न हाथ॥

ऊगण अर्थात् उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ और उत्तर भाद्रपद, पूगण अर्थात् पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढ़ और पूर्वा भाद्रपद, वि अर्थात् विशाखा, अज (रोहिणी), कृ कृत्तिका, म मघा, आ आर्द्रा, भ भरणी, अश्लेषा, मू मूल इन नक्षत्रों में गया हुआ, रखा हुआ, गाड़ा हुआ और दिया हुआ धन फिर हाथ नहीं आता।

रवि हर दिसि गुन रस नयन, मुनि प्रथमादिक बार।
तिथि सब काज नसावनी, होइ कुजोग बिचार॥

रवि द्वादशी, हर एकादशी, दिशि दशमी, गुन तृतीया, रस षष्ठी, नयन द्वितीया, मुनि सप्तमी, इन तिथियों में प्रथम वार अर्थात् रविवार से लेकर क्रमशः सोम, मङ्गल, बुध, वृहस्पति, शुक्र और शनिश्चर पड़ें, तो कुयोग जानना चाहिए। इनसे कार्य-सिद्धि नहीं होती।

/ १२

क्रांतिकारी काव्य

'रामचरितमानस' एक क्रांतिकारी काव्य है। महात्मा गांधी का आत्म-शुद्धि का उपदेश और तुलसीदास का 'रामचरितमानस' दोनों एक ही वस्तु है। मुसलमानी शासन में हिन्दू और हिन्दुत्व दोनों खतरे में थे। शताब्दियों से लगातार आघात-पर-आघात सहते-सहते हिन्दुत्व का राज-भवन जब गिरने ही वाला था, उस समय चारों ओर से साधु-संतों और विद्वानों ने दौड़कर, अपनी-अपनी टेक लगाकर, उसे थाम लिया था। तुलसीदास उनमें से एक हैं और 'रामचरितमानस' उनकी वही टेक है।

भारतवर्ष में यह वह समय था, जब सामाजिक और राजनीतिक दोनों क्षेत्रों में भयानक परिवर्तन हो रहा था। हिन्दू लोग अपनी प्राचीन संस्कृति को त्याग कर नाश की ओर बढ़ रहे थे। तुलसीदास के शब्दों में उस समय की दशा यह थी :

दीनदयाल दुरित दारिद दुख दुनी दुसह तिहुँ ताप तई है।
देव दुआर पुकारत आरत सब-की-सब सुख हानि भई है।
प्रभु के वचन वेद बुध सम्मत मम मूरति महिदेव मई है।
तिन्हकी मति रिस,राग, मोह,मद, लोभ लालची लीलि लई है।
राज समाज कुसाज कोटि कटु कल्पत कलुष कुचाल नई है।
नीति प्रतीति प्रीति परमिति पति हेतु वाद हठि हेरि हई है।
आस्रम, बरन धरम विरहित जग लोक वेद मरजाद गई है।
प्रजा पतित पाखंड पाप-रत अपने-अपने रंग रई है।
सांति सत्य सुभ रीति गई घटि, बढ़ी कुरीति कपट कलई है।
सीदत साधु, साधुता सोचति, खल विलसत, हुलसति खलई है।
परमारथ स्वारथ साधन भए अफल सकल, नहिं सिद्धि सई है।
कामधेनु-धरनी कलि-गोमर-विवस विकल, जामति न वई है।
कलि करनी बरनिए कहाँ लौं करत फिरत बिनु टहल टई है।

तापर दाँत पीसि कर मींजत, को जानै चित कहा ठई है।
त्यों-त्यों नीच चढ़त सिर ऊपर ज्यों-ज्यों सीलवस ढील दई है।
सरुष वरजि तरजिए तरजनी, कुम्हिलैहै कुम्हड़े की जई है।
दीजै दादि देखि नातो वलि, मही मोद मंगल रितई है।

जब समाज की ऐसी दशा थी, तब उसका अधःपतन तो निश्चित ही था। ऐसे समय में तुलसीदास ने अपना जीवन-दान करके हिन्दू-जाति में जन्म लेने के ऋण से अपने को उऋण किया।

सबसे पहले उन्होंने राम को चुना। राम में मनुष्य की पूर्णता की कल्पना की। फिर दशरथ का एक परिवार चुना; जिसमें भिन्न-भिन्न स्वभावों के लोग अपनी-अपनी निश्चित मर्यादा में एक होकर रहते थे। फिर एक राम-राज्य का ढाँचा तैयार किया और हिन्दुओं के सामने एक आदर्श समाज और एक आदर्श राज्य का नमूना रखा।

राम-जैसा मनुष्य और राम के परिवार-जैसा परिवार हिन्दू-जाति में बने, तब राम-राज्य की स्थापना हो, 'मानस' रचने का तुलसीदास का एकान्त उद्देश्य यही था। हिन्दुओं को वैरागी बनाने के लिए, केवल राम-राम रटने-वाले आलसी अपाहिजों के लिए, उन्होंने 'रामचरितमानस' नहीं रचा था।

'रामचरितमानस' में उन्होंने सेवा-धर्म को सदा प्रधानता दी है। उनके राम ब्रह्मा, विष्णु और शिव से भी परे थे। उनके राम का स्वरूप यह चराचर जगत् ही था। इसी की सेवा का उपदेश उन्होंने 'मानस' में सर्वत्र दिया है। राम को महान्-से-महान् बताकर वे उन्हें शबरी के घर में ले जाते हैं और उसके बेर खिलवाते हैं; गिद्ध के लिए उनसे पिता शब्द कहलवाते हैं; वानर-भालुओं को मधुर शब्दों से प्रोत्साहन दिलवाकर उन्हें राम का सहायक बनवाते हैं; केवट को वशिष्ठ के गले लगवाते हैं; क्या यह उनका इशारा नहीं है कि इसी प्रकार से हिन्दू-जाति में ऊँच-नीच का भेद-भाव छोड़कर सब एक हो जायें और सुसंगठित होकर सुराज या स्वराज का सुख भोगें ?

एक सुसंगठित समाज में किसी खास वर्ग के शत्रु परशुराम को अवाञ्छनीय समझकर भरी सभा में अपमानित करके निकलवा देना क्या यह नहीं साबित करता कि तुलसीदास वर्ग-विद्वेष को मिटा देने ही में समाज का कल्याण सोचते थे ? गरुड़ को वे काकभुशुण्डि के पास भेजकर उपदेश दिलवाते हैं। इसका क्या यह अभिप्राय नहीं है कि अभिमान छोड़कर नीच से भी नीच व्यक्ति के पास जाकर ज्ञान ग्रहण करना चाहिए ?

भरत की जो महिमा तुलसीदास ने गाई है, क्या वह उद्देश्य से रहित

है ? तुलसीदास का वह ज़माना था, जब राज्य के लिए घर-घर में विभीषण पैदा हो रहे थे। उस समय हिन्दू-समाज में भरत की बड़ी ही आवश्यकता थी। भरत का गुण-गान करके उन्होंने हजारों भाइयों को 'विभीषण' बनने से बचा लिया है। विभीषण शत्रु का भाई था, उसे फोड़कर शत्रु का नाश करने की नीति का समर्थन तुलसीदास भी करते हैं, पर अपने घर में वे विभीषण की चुटकी ही लेते हैं :

राम सराहे भरत उठि, मिले राम सम जानि।
तदपि विभीषन कीसपति, तुलसी गरत गलानि ॥

× × ×

सधन चोर मग मुदित मन, धनी गही ज्यों फेंट।
त्यों सुग्रीव बिभीषनहि, भई भरत सो भेंट ॥

तुलसीदास एक युग-प्रवर्तक कवि थे। भिन्न सभ्यता और संस्कार वालों के शासन में मृत-प्राय हिन्दुत्व को बचाने के लिए उन्होंने राम की कथा के बहाने सामाजिक और राजनीतिक क्रान्ति को केन्द्रीभूत करके क्रांति का एक नाटक-सा रच दिया, जिसके पात्र हिन्दू-मात्र हैं। शिक्षित-अशिक्षित ऊँच-नीच, ब्राह्मण-शूद्र, धनी-गरीब, बालक-वृद्ध, स्त्री-पुरुष सभी उस नाटक में अपना-अपना पार्ट अदा करते हुए नाटक की सफलता के लिए प्रयत्नशील हैं। वह सफलता क्या है ? सर्वांगपूर्ण सुखदायक राम-राज्य की स्थापना। ऐसा कौतूहल-जनक खेल संसार में शायद ही किसी ने रचा हो, जैसा तुलसीदास ने रच दिया है। इसके द्वारा उन्होंने गत तीन सौ वर्षों से भीतर-ही-भीतर हिन्दुओं में सामाजिक और राजनीतिक क्रान्ति जगा रखी है, जो किसी अन्त पर जाकर ही रुकेगी।

वे 'मानस'-भर में बार-बार सुराज का स्मरण दिलाते रहते हैं, वह अकारण नहीं है। वे भारत में सुराज या स्वराज की स्थापना के लिए अत्यन्त आतुर थे।

राम की भक्ति से तुलसीदास का यह अभिप्राय कभी नहीं था कि लोग सब काम-धाम छोड़कर, केवल राम-राम जपें और गरीब गृहस्थों पर बोझ होकर रहें। उन्होंने भक्त की परिभाषा इस दोहे में साफ़-साफ़ कर दी है :

प्रीति राम सों, नीति पथ, चलिय राग रिस जीति।
तुलसी सन्तन के मते, इहै भगति की रीति ॥

१३
कवि की आलोचना

भक्त और महात्मा तुलसीदास की आलोचना करने का हमें कोई अधिकार नहीं; क्योंकि उनका उच्चकोटि का जीवन, उनका पवित्र आचरण, उनका अनुपम त्याग हमारी आलोचना का विषय नहीं, हमारी श्रद्धा का विषय है। पर कवि तुलसीदास से तो हम स्वच्छन्दता से बातें कर ही सकते हैं। वे कितना ही कहें :

कवि न होउँ नहिं चतुर कहाऊँ। मति अनुरूप राम-गुन गाऊं।
कवि न होउँ नहिं चतुर प्रवीना। सकल कला सब विद्या हीना।
कवित विवेक एक नहिं मोरे। सत्य कहौं लिखि कागद कोरे।

पर हम तो उन्हें कवि ही नहीं, महाकवि मानते हैं। नम्रता-प्रदर्शन बड़प्पन का लक्षण है। वे महान् थे, दंभ-रहित थे, सरल, सुशील और लोक-सेवा की भावना से विभूषित थे, अतएव उनके मुख से अभिमान के वचन की तो हमें आशा ही क्यों करनी चाहिए ? पर वे 'रामचरितमानस कवि तुलसी' थे; और 'कुकवि कहाइ अजस को लेई' से भयभीत 'सुकवि' भी थे, यह निर्विवाद है। उन्हीं कवि तुलसीदास से उनकी कविता के सम्बन्ध में हमें कुछ चर्चा करनी है।

अब तक हमने तुलसीदास की माधुर्य, ओज और प्रसाद गुणमयी कविता के अच्छे उदाहरण देकर उनका गौरव-गान किया है। पर कवि में त्रुटियां भी हैं, इसका निदर्शन किये बिना उसका चित्र अपूर्ण ही रह जायगा।

तुलसीदास ने 'मानस' को जहां उत्तम कोटि की कविता के सब लक्षणों से अलंकृत कर दिया है, वहां वे उसमें कुछ त्रुटियां भी छोड़ गए हैं। उनके कुछ उदाहरण यहां दिये जाते हैं :

१—'मानस'-भर में तुलसीदास इस बात से बहुत शंकित दिखाई पड़ते हैं कि कहीं लोग राम को मनुष्य न समझ लें। इससे कहीं-कहीं प्रस्तुत रस-धारा के बीच में खड़े होकर वे व्याख्यान देने लगते हैं कि राम को मनुष्य न समझना; यह सब राम का कपट-चरित है। उनकी इस व्याकुलता से रस का

परिपाक नहीं होने पाता और वर्णन की स्वाभाविक धारा रुक जाती है। जैसे :

गुर गृह गये पढ़न रघुराई। अल्प काल विद्या सब पाई।

इतने से तो हमने समझ लिया कि राम बड़े कुशाग्र-बुद्धि थे। पर तुलसीदास को यह भय लगा कि राम का पढ़ना सुनकर कहीं लोग उनको मनुष्य न समझने लगें, इससे वे कहते हैं :

जाकी सहज स्वास स्रुति चारी। सो हरि पढ़ यह कौतुक भारी।

× × ×

इसी प्रकार सीता-हरण के बाद राम जब विलाप करते हैं, तब भी तुलसीदास भयभीत हो जाते हैं और कहते हैं :

पूरन काम राम सुखरासी। मनुज चरित कर अज अबिनासी।

आगे देखिए :

युद्ध में मेघनाद ने राम को नाग-पाश में बाँध लिया था। युद्ध के लिए यह साधारण सी बात है। मौका मिलने पर निर्बल भी सबल को परास्त कर सकता है। पर तुलसीदास यहाँ फिर भी डरे, और कहते हैं :

नट इव कपट चरित कर नाना। सदा स्वतन्त्र रूप भगवाना।

इसके कहने की क्या आवश्यकता थी ? यदि तुलसीदास अपनी शंका न उठाते, तो हमें ध्यान भी न आता कि मेघनाद के नाग-पाश से बँधने पर राम की ईश्वरता को कोई धक्का लगा। जब राम ने 'विप्र, धेनु, सुर, संत' के लिए मनुष्य का अवतार लिया है और मनुष्य ही की तरह वे चरित्र कर रहे हैं, तब मनुष्य के सुख-दुःख भी उन्हें भोगने ही चाहिएँ। तुलसीदास की पहरेदारी देखकर तो हमें यह भ्रम होने लगता है कि राम जो कुछ करते थे, सब ढोंग था।

२—अरण्य-काण्ड में जब लक्ष्मण कन्द-मूल-फल लेने के लिए वन में गए हुए थे. तब राम के इशारे से असली सीता अग्नि में प्रवेश कर गईं, और उनके स्थान पर वैसे ही रूप-रंग की एक नकली सीता आश्रम में बैठ गईं। लक्ष्मण आये तो उन्होंने नकली सीता ही को असली समझा। इस पर तुलसीदास कहते हैं :

लछिमन हू यह मरम न जाना। जो कुछ चरित रचा भगवाना।

यद्यपि राजनीति की दृष्टि से राम ने ठीक ही किया होगा. पर कवि ने यह कहकर कि राम ने जो कुछ किया, उसे लक्ष्मण भी नहीं जान पाये, क्या कवित्व दिखलाया ? कवि के इस कथन के बाद तो यही अनुभव होने लगता

है कि राम बड़े चालाक थे। उन्होंने अनन्य भक्त और आजीवन विश्वास-पात्र भाई का भी विश्वास नहीं किया। तथा सीता-हरण के समय उन्होंने जो विलाप किया, वह सब उनका दिखावा था। असली सीता को कलंक से निर्मुक्त रखने के लिए ही कवि का यह प्रयास जान पड़ता है। पर इससे उसके मुख्य चरित-नायक राम की नैतिक उच्चता कम हो जाती है।

इसी प्रकार इस अगली चौपाई में भी राम का लक्ष्मण के साथ छल करना पाया जाता है, और वे एक चालाक व्यक्ति मालूम होते हैं :

रघुपति अनुजहिं आवत देखी। बाहिज चिन्ता कीन्ह विसेखी।

३—तुलसीदास सर्वत्र राम की सुन्दरता ही पर सबको मुग्ध दिखाते हैं, चाहे वह शत्रु हो या मित्र, देवता हो या दानव, राक्षस हो या असुर, जो कोई उनके सामने आता है, वह उसके रूप पर पहले मुग्ध हो लेता है, पीछे अन्य काम करता है।

बचपन में और विवाह के अवसर पर सौन्दर्य का निदर्शन स्वाभाविक है। पर जब खरदूषण अत्यन्त आवेश में अपनी चौदह हजार सेना लेकर राम से लड़ने आता है और यकायक क्रोध को भूलकर उनके रूप पर आसक्त हो जाता है और कहने लगता है :

हम भरि जनम सुनहु सब भाई। देखी नहिं असि सुन्दरताई।
जद्यपि भगिनी कीन्ह कुरूपा। बध लायक नहिं पुरुष अनूपा।

तब एक राक्षस में इस तरह का परिवर्तन अस्वाभाविक जान पड़ता है। रौद्र रस में शृङ्गार का यह मिश्रण कवि की सफलता में सन्देह उत्पन्न करता है।

राम का सौन्दर्य देखकर विभीषण भी मोहित हो जाता है। जब वह राम से मिलने के लिए आया, तब :

बहुरि राम छविधाम बिलोकी। रहेउ ठठुकि एकटक पल रोकी।

इसके पहले वह विचार करता हुआ आया था कि :

जिन्ह पायन्ह के पादुकनि, भरत रहे मन लाय।
ते पद आज बिलोकिहौं, इन्ह नयनन्हि अब जाय॥

पर सामने आते ही वह चरणों को भूल गया और मुँह देखने लगा। पता नहीं, तुलसीदास क्यों सबको राम के सौन्दर्य पर लुभाया हुआ दिखलाते थे। यहाँ तक कि बनवासी ऋषि-मुनि भी एकटक हो राम की रूप-सुधा का पान करने लगते थे।

४—अयोध्या-काण्ड में राम को पृथ्वी पर शयन करते हुए देखकर निषाद

को बड़ा विषाद हुआ। तब लक्ष्मण ने ज्ञान-वैराग्य और भक्ति के रस में सना हुआ एक लम्बा-सा व्याख्यान उसको सुनाया था। उनकी कुछ पंक्तियाँ ये हैं :

बोले लषन मधुर मृदु बानी। ग्यान-बिराग-भगति-रस-सानी।
काहु न कोउ सुख दुख कर दाता। निज कृत करमु भोग सबु भ्राता।
जोग बियोग भोग भल मन्दा। हित-अनहित मध्यम भ्रम-फन्दा।
जनमु-मरनु जहँ लगि जग-जालू। संपति-बिपति करमु अरु कालू।
धरनि-धामु-धनु - पुर - परिवारू। सरगु-नरक जहँ लगि व्यवहारू।
देखिअ सुनिअ गुनिअ मन माहीं। मोह मूल परमारथ नाहीं।
सपनें होइ भिखारि नृपु, रंकु नाक पति होइ।
जागे लाभ न हानि कछु, तिमि प्रपंच जिय जोइ॥
मोह-निसा सबु सोवनिहारा। देखिअ सपन अनेक प्रकारा।
एहि जग जामिनि जागहिं जोगी। परमारथी प्रपंच वियोगी।
जानिय तबहिं जीव जग जागा। जब सब विषय-विलास-विरागा।
सखा परम परमारथु एहू। मन-क्रम-वचन राम-पद-नेहू।
राम ब्रह्म परमारथ रूपा। अविगत अलख अनादि अनूपा।

ये बातें तो किसी पहुँचे हुए संत के मुँह से शोभा देती हैं, न कि एक तेजस्वी नवयुवक के मुँह से, जो अभी दो ही-एक दिन पहले अपने पिता को फटकारकर आया है।

जो लक्ष्मण निषाद को एक ऋषि-मुनि की तरह अपना भाषण सुना चुके थे, वही अरण्य-कांड में राम से पूछते हैं :

कहहु ज्ञान-विराग अरु माया। कहहु सो भगति करहु जेहि दाया।

इस अवसर पर राम ने जो कुछ लक्ष्मण को समझाया है, उससे अधिक अयोध्या-कांड में लक्ष्मण स्वयं निषाद को बता चुके हैं। कवि का लक्ष्य किसी-न-किसी प्रकार से ज्ञान, वैराग्य और भक्ति की बातों को, जो उसके मस्तिष्क में थीं, बाहर निकालना था। पर उसके लिए उसने व्यक्ति और अवसर का जो चुनाव किया, वह ठीक नहीं था। ऐसी बातें तुलसीदास राम से लक्ष्मण को न कहलाकर किसी अन्य व्यक्ति को कहलाते, तो उसमें अधिक औचित्य होता।

आश्चर्य की बात है कि वही ज्ञान, भक्ति और वैराग्य में सने हुए लक्ष्मण चित्रकूट में, राम से मिलने के लिए भरत को आते हुए देखकर, एकदम विक्षुब्ध हो उठे थे।

५—शूर्पणखा ने खरदूषण-वध के बाद रावण के पास जाकर कहा :

राज नीति बिनु धन बिनु धर्मा। हरिहिं समर्पे बिनु सतकर्मा।
प्रीति प्रनय बिनु मद तें गुनी। नासहिं बेगि नीति अस सुनी।

यहां एक राक्षसी के मुँह से 'हरिहि समर्पे बिनु सतकर्मा' का गीता-पाठ बिलकुल अस्वाभाविक है और क्रोध और उत्तेजना उत्पन्न करने के अवसर पर धर्म, विद्या, विवेक, ज्ञान, प्रीति और प्रणय का स्मरण दिलाना भी नितान्त असामयिक है।

६—लंका-कांड में मन्दोदरी ने रावण को जो उपदेश दिया था, वह उपनिषद् का एक अध्याय-सा हो गया है; जो एक राक्षस-स्त्री के लिए बिलकुल ही अस्वाभाविक था और यदि न भी रहा हो, तो कवि की दृष्टि से तो होना ही चाहिए था। मन्दोदरी का उपदेश :

बिस्वरूप रघुबंसमनि, करहु बचन बिस्वासु।
लोक-कल्पना बेद कर, अङ्ग-अङ्ग प्रति जासु॥

पद पाताल सीस अज धामा। अपर लोक अँग-अँग बिस्रामा।
भृकुटि-बिलास भयङ्कर काला। नयन दिवाकर कच घन-माला।
जासु घ्रान अस्विनीकुमारा। निसि अरु दिवस निमेष अपारा।
स्रवन दिसा दस बेद बखानी। मारुत स्वास निगम निज बानी।
अधर लोभ जम दसन कराला। माया हास बाहु दिगपाला।
आनन अनल अम्बुपति जीहा। उतपति पालन प्रलय समीहा।
रोम-राजि अष्टादस भारा। अस्थि सैल सरिता नस जारा।
उदर उदधि अधगो जातना। जगमय प्रभु का बहु कलपना।

अहङ्कार सिव बुद्धि अज, मन ससि चित्त महान्।
मनुज बास चर अचरमय, रूप राम भगवान्॥
अस बिचारि सुनु प्रानपति, प्रभु सन बैर बिहाइ।
प्रीति करहु रघुबीर-पद, मम अहिवात न जाइ॥

७ लंका-कांड में जब राम वानर-सेना के साथ समुद्र पार करके सुवेल पर्वत पर डेरा डाले पड़े थे, तब वहां पर युद्ध-सम्बन्धी कोई चर्चा न करके चन्द्रमा पर जो तरह-तरह की कल्पनाएँ भिड़ाई गई हैं, वह अस्वाभाविक और असामयिक दोनों हैं। राम ने वहां उन स्वच्छन्दता से बातें की हैं, जैसे वे अयोध्या में अपने अन्तरङ्ग मित्रों के साथ अपने महल की छत पर बैठे हों और समस्या-पूर्तियां करके मन बहला रहे हों। देखिये :

पूरब दिसि गिरि गुहा-निवासी। परम प्रताप तेज बलरासी।

मत्त नाग तम कुम्भ विदारी। ससि केसरी गगन बनचारी।
बिथुरे नभ मुकुताहल तारा। निसि सुन्दरी केर सिंगारा।
कह प्रभु ससि महँ मेचकताई। कहहु काह निज-निज मति भाई।
कह सुग्रीव सुनहु रघुराई। ससि महँ प्रगट भूमि कै झाँई।
मारेहु राहु ससिहि कह कोई। उर महँ परी स्यामता सोई।
कोउ कह जब बिधिरति मुख कीन्हा। सार भाग ससि कर हरि लीन्हा।
छिद्र सो प्रगट इन्दु उर माहीं। तेहि मग देखिअ नभ परिछाहीं।
प्रभु कह गरल बंधु ससि केरा। अति प्रिय निज उर दीन्ह बसेरा।
बिष संयुत कर निकर पसारी। जारत बिरहवंत नर-नारी।

कह मारुत सुत सुनहु प्रभु, ससि तुम्हार निज दास।
तव मूरति बिधु उर बसति, सोइ स्यामता अभास॥

इस तरह की उट्टङ्कणाएँ रण-भूमि में शोभा नहीं देतीं।

८—लंका-कांड में भर्ती के शब्द सर्वत्र मिलते हैं। जैसे—

मन्दोदरी ने रावण को समझाते हुए कहा :

पति रघुपतिहि नृपति मत मानहु। अग जग-नाथ अतुल बल जानहु।
बान प्रताप जान मारीचा। तासु कहा नहिं मानेहु नीचा।

मन्दोदरी के मुख से अपने पति रावण के लिए नीच शब्द कहलाना बहुत ही अनुचित मालूम देता है। मन्दोदरी से तुलसीदास ने राम के मनुष्य न होने का कई बार फतवा दिलाया है। तुलसीदास को यहाँ उस राम की भक्तिन निरपराधिनी मन्दोदरी की मर्यादा तो सँभालनी ही चाहिए थी।

९—रावण जब मारा गया और राम के बाण उसके सिर को मन्दोदरी के आगे रखकर चले गए, तब मन्दोदरी ने विलाप करते-करते फिर वेदान्त का एक प्रवचन-सा कह डाला। उसे सुनकर :

मन्दोदरी बचन सुनि काना। सुर-मुनि-सिद्ध सबन्हि सुख माना।

पर सुर, मुनि और सिद्धों के कान वहाँ इतने निकट थे कहाँ ?

१०—भक्त कवि तुलसी का रोचक विषय युद्ध नहीं था, इसी से उसमें शिथिलता और विरसता आ गई है। रावण और हनुमान के युद्ध का वर्णन सुनिए :

देखा स्रमित बिभीषन भारी। धायेउ हनूमान गिरधारी।
रथ तुरंग सारथी निपाता। हृदय माँझ तेहि मारेसि लाता।
पुनि रावन तेहि हतेउ पचारी। चला गगन कपि पूँछ पसारी।
गहेसि पूँछ कपि सहित उड़ाना। पुनि फिरि भिरेउ प्रबल हनुमाना।

हनुमान का उछलना और रावण का उनकी पूँछ पकड़कर ऊपर उड़ना यह गँवारों और लड़कों लिए मनोरंजक हो सकता है, पर तुलसीदास-जैसे महाकवि के लिए गौरव-स्वरूप नहीं हो सकता। हास्य-रस वीर-रस का सहायक नहीं, बाधक है।

११—कागभुशुण्डि की एक बात तो मुझे बहुत ही बीभत्स जान पड़ी, जो वे कौआ होते हुए बालक राम के मुँह के अन्दर उस समय जा घुसे, जब वे हँस रहे थे, और राम को मालूम भी न हुआ। एक भक्त के लिए यह धृष्टता कहाँ तक उचित है ?

१२—कहीं-कहीं तुलसीदास ने शब्दों के प्रयोग में भी असावधानी की है। जैसे :

जब सीता को विभीषण अशोक-वाटिका से राम के पास ला रहा था, तब राम ने कहा :

कह रघुबीर कहा मम मानहु। सीतहि सखा पयादे आनहु।
देखहिं कपि जननी की नाई। बिहँस कहा रघुबीर गोसाई।

इसमें विहँसकर कहने की क्या बात थी ? इसमें तो राम का बड़ा हल्कापन साबित होता है। और ऊपर की चौपाई में 'कहा' तो एक बार आ ही चुका था, दूसरी बार तो वह व्यर्थ ही आया।

१३—तुलसीदास ने कहीं-कहीं व्याकरण के नियमों की भी उपेक्षा की है। जैसे :

मरम बचन सीता जब बोला। हरि प्रेरित लछिमन मन डोला।

~~इसमें 'सीता बोला' यह प्रयोग व्याकरण से अशुद्ध है।~~

१४—तुलसीदास ने 'प्रश्न' शब्द को 'मानस'-भर में स्त्रीलिंग लिखा है। जैसे :

प्रस्न उमा के सहज सुहाई। छल-बिहीन सुनि सिव मन भाई।
(बाल-कांड)

× × ×

कहेउँ तात सब प्रस्न तुम्हारी। राम भगति महिमा अति भारी।

× ×

प्रस्न तुम्हारि मोहि अति प्यारी। (उत्तर-कांड)

१५—बहुत-सी चौपाइयों में गति-भंग दोष पाया जाता है। जैसे :

परम नवित नमेत मदनरिहा।

× × ×

राम भक्त कहाइ नर आसा।

१६—कहीं-कहीं यति-भंग दोष भी मिलता है। जैसे :

अंगदादि कपि मूर्छित, करि समेत सुग्रीव।
काँख दावि कपिराज कहँ, चला अमित बलसीव॥

१७—कहीं तुक ठीक नहीं मिले हैं। जैसे :

चढ़ि विमान सुनु सखा विभीषन। गगन जाइ बरसहु पट भूषन।
ध्यान न पावहिं जासु मुनि, नेति-नेति कह वेद।
कृपासिन्धु सोइ कपिन सों, करत अनेक विनोद॥

१८—तुलसीदास ने 'नाना' शब्द का प्रयोग बहुत किया है। कहीं-कहीं 'नाना' उपहास-जनक हो गया है और कहीं-कहीं अनावश्यक। जैसे :

सेवक सकल बजनिया नाना।

इसका अर्थ यह भी लगा लिया जा सकता है कि सब सेवक तो थे, पर बाजा बजाने वाले नाना (मामा के पिता) थे।

इसी तरह :

धनिक बनिक वर धनद समाना। बैठे सकल वस्तु लेइ नाना।

+ + +

बिस्नु बिरंच संभु भगवाना। उपजहिं जासु अंस तें नाना॥

इत्यादि—

'नाना' की तरह 'बर' शब्द का प्रयोग भी बहुत और कहीं-कहीं व्यर्थ हुआ है।

१९—जटित कनक मनि पलँग डसाये।

इसमें कवि का अभिप्राय यह जान पड़ता है कि मणियों से जड़े हुए सुवर्ण के पलँग बिछवाए गए थे। तब तो इसका पाठ ऐसा होना चाहिए :

कनक पलँग मनि जटित डसाये।

'मानस'-जैसे बड़े काव्य-ग्रन्थ में वर्णनों के लिए पात्रों और अवसरों के चुनाव में मतभेद हो सकता है और त्रुटियाँ भी रह सकती हैं, पर इस तर्क से किसी कवि का उत्तरदायित्व कम नहीं हो सकता।

१४

'रामचरितमानस' की अन्तर्कथाएँ

अगस्त्य

बढ़त विंध्य जिमि घटज निवारा।

अगस्त्य की उत्पत्ति एक घड़े से बताई जाती है। ये मित्रावरुण की सन्तान थे। एक बार विन्ध्य पर्वत बढ़ने लगा। वह इतना बढ़ा कि उसने सूर्य का मार्ग रोक लिया। तब देवताओं ने अगस्त्य से प्रार्थना की। अगस्त्य विंध्य-पर्वत के पास गये। विंध्य पर्वत ने झुककर उन्हें प्रणाम किया। अगस्त्य ने कहा—'मैं जब तक न आऊँ, तब तक ऐसे ही रहो।' यह कहकर अगस्त्य दक्षिण-दिशा की ओर चले गए और फिर नहीं लौटे। इसी से उसका नाम अगस्त्य पड़ा।

जब इन्द्र ने वृत्रासुर का वध किया, तब शेष बचे हुए असुर देवताओं के डर से समुद्र में जा छिपे। रात्रि में वे बाहर निकलते और ऋषियों के आश्रमों में जाकर उत्पात करते और ब्राह्मणों को मारकर खा जाते थे। देवताओं ने अगस्त्य से प्रार्थना की कि आप समुद्र का जल पी लीजिये, तो हम दैत्यों को मार डालें। मुनि ने समुद्र-तट पर पहुँचकर सब जल पी लिया और देवताओं ने दैत्यों और दानवों को पकड़-पकड़कर मार डाला।

अजामिल

अपत अजामिल गज गनिकाऊ। भये मुकुत हरिनाम प्रभाऊ।

कन्नौज देश में एक ब्राह्मण रहता था। उसका नाम अजामिल था। यद्यपि वह विद्वान्, माता-पिता का आज्ञाकारी और ईश्वर का भक्त था, पर एक दिन जङ्गल में जब वह लकड़ी और फल-फूल के लिए गया हुआ था तब एक वेश्या से उसकी भेंट हुई। वह प्रेमासक्त होकर उसे घर लाया और उसके साथ रहकर मांस-मदिरा खा-पीकर जीवन बिताने लगा। वेश्या से दस पुत्र हुए। सबसे छोटे पुत्र का नाम नारायण था, जिसे वह बहुत प्यार करता था। जब अजामिल ८२ वर्ष का हुआ, तब उसका मृत्यु-काल उपस्थित हुआ। यमदूत

उसे लेने को आये। उन्हें देखकर वह बहुत डरा और अपने छोटे पुत्र नारायण को बार-बार पुकारने लगा। नारायण शब्द के उच्चारण से भगवान् के पारषद आ पहुँचे। यम और विष्णु के दूतों में अजामिल के लिए बहुत देर तक विवाद चलता रहा। अन्त में यमदूत परास्त हुए और लौट गए। मरणासन्न अजामिल यह सब देख और सुन रहा था। वह विष्णु के पारषदों से कुछ बोलना ही चाहता था कि वे अन्तर्द्धान हो गए। तब उसने अपनी सारी आयु भगवद्भक्ति में व्यतीत कर दी और अन्त में वैकुण्ठ गया।

अदिति

कश्यप अदिति महा तप कीन्हा। तिन्ह कहँ मैं पूरब वर दीन्हा।

यह प्रजापति कश्यप की स्त्री थीं। जब कश्यप प्रजापति हुए, तब वे अदिति के साथ तपस्या करने के लिए घर से जङ्गल में निकल गए। वहाँ इन दोनों ने बड़ी कठिन तपस्या की, जिससे भगवान् अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्होंने कहा—'मैं तुम दोनों से बहुत प्रसन्न हूँ। जो वरदान चाहो, माँग लो।' उन्होंने वरदान माँगा कि आप हमारे पुत्र हों। तब भगवान् ने उन्हें यह वरदान दिया कि तुम दोनों त्रेता में अयोध्या के राजा-रानी होगे, तब मैं तुम्हारा पुत्र हूँगा। इसलिए अदिति कौशल्या के नाम से त्रेता में अयोध्यापति की रानी हुई और भगवान् ने इनके गर्भ में अवतार लिया।

अहिल्या

गौतम नारी सापबस उपल देह धरि धीर।

यह महर्षि गौतम की स्त्री थी। एक बार जब मुनि प्रातःकाल गंगा-स्नान करने चले गए, तब इन्द्र अहिल्या की सुन्दरता पर मुग्ध होकर उसके पास आया। उसने गौतम ऋषि का रूप धारण करके अहिल्या का धर्म नष्ट किया। ज्यों ही वह बाहर निकल रहा था, मुनि वहाँ आ पहुँचे और इन्द्र को शाप दिया कि तेरे सहस्र भग हो जायँ और अहिल्या को शाप दिया कि तू पत्थर हो जा। यह सुनकर उसने बड़ी प्रार्थना की। तब गौतमजी ने कहा—'जब त्रेता में श्रीरामचन्द्रजी के कमल-चरणों की धूल तेरे ऊपर पड़ेगी, तब तेरा उद्धार होगा।' इससे वह पत्थर हो गई और श्रीरामचन्द्रजी ने उसे त्रेता में मुक्ति दी।

अम्बरीप

सूर्य-वंश में एक राजा नाभाग थे। अम्बरीप उन्हीं के पुत्र थे। अम्बरीप बड़े तपस्वी थे। उनकी रानी भी बड़ी पतिव्रता और धार्मिक भाव वाली थीं। एक समय द्वादशी के दिन दुर्वासा ऋषि अट्ठासी हजार ऋषियों को साथ लेकर

अम्बरीष के द्वार पर आये और उन्होंने राजा से भोजन माँगा। अम्बरीष ने ऋषि का स्वागत किया और उन्हें भोजन के लिए आमन्त्रित किया। दुर्वासा ने कहा—'हम स्नान करके आते हैं, तब भोजन करेंगे।'

वे तो ऋषियों के साथ स्नान करने चले गए। इधर द्वादशी का समय बीत रहा था। दुर्वासा के आने में देरी होती देखकर अम्बरीष ने ब्राह्मणों की आज्ञा लेकर जल पी लिया। इतने ही में दुर्वासा आ पहुँचे। जब उनको यह मालूम हुआ कि राजा ने अतिथियों को भोजन कराने के पहले ही जल ग्रहण कर लिया है, तब वे क्रोध से जल उठे। उन्होंने जटा से एक बाल निकाला और उसे पृथ्वी पर पटक दिया। उससे एक स्त्री प्रकट हुई। उसका नाम कृत्या था। मुनि की आज्ञा पाकर वह राजा को मारने दौड़ी।

भगवान् को अपने निरपराध भक्त का यह अपमान बहुत बुरा लगा। उन्होंने अम्बरीष की रक्षा के लिए सुदर्शन-चक्र को आज्ञा दी। सुदर्शन-चक्र दुर्वासा को मारने दौड़ा। दुर्वासा प्राण लेकर भागे। भागते-भागते वे ब्रह्मा के पास गये, शिव के यहाँ गये, पर चक्र से उनको बचाने के लिए कोई तैयार न हुआ। तब दुर्वासा 'पाहि माम्' 'पाहि माम्', कहते हुए विष्णु के चरणों पर जा गिरे। विष्णु ने कहा—'मैं तो भक्त के अधीन हूँ। तुम अम्बरीष के पास जाओ, वही तुम्हारी रक्षा कर सकते हैं।'

दुर्वासा दौड़कर अम्बरीष के पास आये। अम्बरीष को मुनि की दशा पर बड़ी दया आई। उन्होंने सुदर्शन-चक्र को शान्त किया और फिर मुनि से कहा—'कृपा करके चलकर भोजन ग्रहण कीजिये। आपके चले जाने के बाद अभी तक किसी ने खाया-पिया नहीं।' दुर्वासा ने चुपचाप जाकर भोजन किया और फिर अम्बरीष की प्रशंसा करते हुए वे वहाँ से चले गए।

अन्ध तापस

तापस अन्ध स्राप सुधि आई। कौसल्यहि सब कथा सुनाई।

अयोध्या के पास ही, सरयू-तट पर, एक अन्धा तपस्वी अपनी स्त्री और पुत्र के साथ रहता था। एक दिन राजा दशरथ शिकार खेलने गये थे। उस समय तापस अन्ध का लड़का श्रवणकुमार अपने अन्धे माँ-बाप के लिए सरयू नदी में पानी भरने गया था। जब उसने घड़ा डुबोया, तब उससे ऐसे जोर की आवाज आई कि राजा ने समझा कि कोई हाथी चिंघाड़ रहा है। उन्होंने बिना देखे ही ऐसा बाण मारा कि वह श्रवणकुमार के मर्मस्थल में घुस गया। वह घायल होकर गिर पड़ा। उसने चिल्लाकर कहा—'हाय! मुझ निरपराध को किसने मारा? हाय! मेरे अन्धे माता-पिता का कोई सहारा नहीं है। ये

तड़प-तड़पकर मर जायेंगे।'

जब राजा ने यह सुना तो शीघ्र ही वह कुमार के पास पहुँचे और उसके मर्मस्थल से बाण निकाल कर उससे क्षमा की प्रार्थना करने लगे। उसने कहा—'हे महाराज ! आपने अज्ञानवश ऐसा किया है, अतः जाकर मेरे माता-पिता को जल पिलाइए और उनसे क्षमा की प्रार्थना कीजिये; नहीं तो वे शाप दे देंगे।' इतना कहकर वह तो स्वर्गगामी हुआ और राजा जल लेकर तापस अन्ध के पास पहुँचे। तापस अन्ध ने पैरों की आहट पाकर पूछा—'हे पुत्र ! आज तुमने इतना विलम्ब क्यों किया ? तुम्हारी माता बहुत व्याकुल हो रही हैं। हे पुत्र ! आज बोलते क्यों नहीं हो ?'

यह सुनकर महाराज दशरथ ने सारा हाल कह सुनाया और क्षमा-प्रार्थना की। मुनि ने कहा—'हे महाराज ! हमें श्रवण के पास ले चलिये ताकि हम लोग अन्तिम बार उससे मिल लें। और चूंकि आपने बिना जाने ऐसा किया है इससे आपको ब्रह्म-हत्या नहीं लगेगी; पर जिस प्रकार पुत्र-वियोग से हम मर रहे हैं, उसी प्रकार आप भी पुत्र-वियोग से प्राण छोड़ेंगे।'

इतना कहकर वे दोनों स्वर्गवासी हो गए, और महाराज दशरथ घर लौट आए। इसी कारण महाराज दशरथ ने भी राम के वियोग में शरीर-त्याग किया।

कद्रू

कद्रू विनतहि दीन्ह जस तुमहिं कौसिला देब।

कश्यप मुनि के दो स्त्रियाँ थीं—कद्रू और विनता। कद्रू के लड़के सर्प थे और विनता के अरुण और गरुड़। एक दिन कद्रू ने विनता से पूछा—'हे विनते ! सूर्य के घोड़े सफेद हैं या काले ?' विनता ने कहा—'मुझे तो सफेद दिखलाई देते हैं।' पर कद्रू ने कहा—'काले।' दोनों में यह बात तय हुई कि यदि काले हों, तो विनता कद्रू की दासी बने और यदि श्वेत हों, तो कद्रू विनता की।

कद्रू ने अपने पुत्र सर्पों से कहा—'हे पुत्र ! जाओ, सूर्य के घोड़ों की पूँछ में लिपट जाओ, जिससे विनता मेरी दासी बने।' पर सर्पों ने यह स्वीकार न किया। तब कद्रू ने शाप दिया कि जन्मेजय के राज्य में तुम्हारा नाश हो जायगा। इतने में करकोटक नामक साँप ने घबराकर कहा—'हे माता ! मैं जाकर घोड़ों से लिपट जाता हूँ और तुम और विनता देखने आओ।'

कद्रू और विनता घोड़ों को देखने गईं। वहाँ उन्हें घोड़ों की पूँछ काली दिखाई पड़ी। इसलिए विनता को कद्रू की दासी बनना पड़ा।

कश्यप

कस्यप अदिति तहाँ पितु माता ।

ये ब्रह्मा के पौत्र और मरीचि के पुत्र थे । जब वे प्रजापति हुए, तो अपनी भार्या अदिति के साथ तपस्या करने निकल गए। इनकी कठिन तपस्या से भगवान् विष्णु बहुत प्रसन्न हुए और बोले--'हम आपसे प्रसन्न हैं, जो इच्छा हो, वरदान माँगिये।' उन्होंने यह वरदान माँगा कि आप ही मेरे पुत्र हों। भगवान् ने कहा—'एवमस्तु। मैं त्रेता में अवतार लूँगा और आप दोनों दशरथ और कौशल्या के नाम से प्रसिद्ध होंगे, तब मैं आपके यहाँ प्रकट हूँगा।' इसीलिए कश्यप महाराज दशरथ के नाम से अयोध्यापति हुए।

कैकेयी

कैकेयी भव तन अनुरागे। पाँवर प्रान अघाहिं अभागे।

राजा दशरथ के तीन रानियाँ थीं – कौशल्या, सुमित्रा और कैकेयी। इनमें कैकेयी अधिक रूपवती होने के कारण महाराज को बहुत प्यारी थी। एक बार देवासुर-संग्राम छिड़ा, तो इन्द्र ने राजा दशरथ को सहायता देने के लिए बुलाया। महाराज कैकेयी को भी साथ लेकर देव-रक्षा के लिए गए। जब वे राक्षसों से युद्ध करने में तन्मय थे, तब अकस्मात् उनके रथ के पहिए की धुरी टूट गई। कैकेयी ने अपने स्वामी की रक्षा के लिए धुरी की जगह अपना हाथ डाल दिया और धीरता-पूर्वक खड़ी हो गई। जब महाराज असुरों का संहार कर चुके, तो उन्हें कैकेयी का यह अद्भुत पराक्रम देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने प्रसन्न होकर रानी से कहा—'मैं तुम्हें दो वर देना चाहता हूँ; जो चाहो माँग लो।' उसने कहा –'मेरे दोनों वरदान आप धरोहर की तरह रखे रहें, जब मुझे आवश्यकता होगी, माँग लूँगी।' वही दोनों वरदान कैकेयी ने राजा दशरथ से माँगे, जिससे श्रीरामचन्द्र को वनवास हुआ।

गज

गनिका अजामिल गीध ब्याध गजादि खल तारेउ घना।

प्राचीन काल में एक राजा था, जिसका नाम इन्द्रद्युम्न था। शाप से वह गज हो गया। क्षीर-सागर में त्रिकूट नाम का एक पर्वत है, जिस पर एक बहुत बड़ा सरोवर है। वह मत्त गज हथिनियों के साथ वहाँ आकर जल-क्रीड़ा किया करता था। एक दिन एक ग्राह (मगर) ने, जो प्राचीन काल में हूहू नामक गन्धर्व था और जो शाप से मगर हो गया था, आकर जल में उस गज का पैर पकड़ लिया। दोनों में एक हजार वर्ष तक युद्ध होता रहा। अन्त में गजेंद्र व्याकुल हो गया और भगवान् की स्तुति करने लगा। उसकी आर्त्त वाणी

सुनकर भगवान् को बड़ी दया आई और उन्होंने गज और ग्राह दोनों को मुक्त किया। ग्राह अपनी लोक को चला गया और गजेन्द्र भगवान् का पार्षद हो गया।

गणिका

गनिका अजामिल गीध व्याध गजादि खल तारेउ घना।

सतयुग में एक वैश्य था। उसका नाम परशु था। जवानी ही में दमे की बीमारी से वह मर गया। उसकी स्त्री का नाम जीवन्ती था। पति के मर जाने पर वह वेश्या-वृत्ति करने लगी। उसने एक सुग्गा पाला था। वह उसे पुत्र की तरह प्यार करती थी, और प्रत्येक दिन उसे राम-नाम पढ़ाया करती थी। उसी नाम-जप के प्रभाव से वह तर गई।

गरुड़

होइहि कीन्ह कबहुँ अभिमाना। सो खोवइ चह कृपानिधाना।

यह कश्यप के पुत्र, विनता के गर्भ से उत्पन्न हुए थे। यह विष्णु भगवान् के वाहन थे। एक बार कागभुशुण्डि ने मोहवश श्रीरामचन्द्रजी के हाथ से पूरी का टुकड़ा छीन लिया और वे वहां से भाग गए। भगवान् ने गरुड़ को याद किया। वे शीघ्र ही आ पहुँचे। उन्होंने भुशुण्डि से घोर युद्ध किया। अन्त में भुशुण्डि को परास्त होकर भगवान् की शरण में आना पड़ा। शरणागत भुशुण्डि की भगवान् ने रक्षा की। तभी से गरुड़ के मन में अहङ्कार उत्पन्न हुआ था।

गालव

हठ बस सब संकट सहे गालव नहुष नरेस।

यह मुनि विश्वामित्र के शिष्य थे। एक बार धर्म विश्वामित्र की परीक्षा के लिए वसिष्ठ का रूप बनाकर उनके आश्रम में आया। उस समय विश्वामित्र भोजन बना रहे थे। धर्म ने भी क्षुधार्त्त होकर भोजन की इच्छा प्रकट की। पर उन्हें भोजन बनाने में देर हो रही थी, अतः धर्म ने जाकर दूसरे तपस्वियों के यहाँ क्षुधा-निवारण कर लिया।

इसके बाद विश्वामित्र गर्म अन्न लिये हुए धर्म के पास आए। धर्म ने कहा--'मैं तो भोजन कर चुका हूँ, आप अब यहीं खड़े रहिये।' उनकी आज्ञानुसार, उनके आने की प्रतीक्षा करते हुए सिर पर भोजन का पात्र रखकर विश्वामित्र वहीं १०० वर्ष तक वायु-भक्षण करते हुए, अचल खड़े रहे। फिर धर्म उसी वेश में वहाँ आया और भोजन करके बोला--'हे ब्रह्मर्षि! मैं अत्यन्त सन्तुष्ट हुआ हूँ।' उसी दिन से ब्रह्मर्षि की उपाधि पाकर विश्वामित्र बड़े

प्रसन्न हुए। जब वे भोजन लेकर खड़े थे, तब उनके शिष्य गालव मुनि ने उनकी बड़ी सेवा की थी। इससे प्रसन्न होकर ब्रह्मर्षि ने कहा—'हे पुत्र! जहाँ तुम्हारी इच्छा हो, जाओ।' गालव ने हठपूर्वक कहा—'गुरु-दक्षिणा में मुझे कौन सी-वस्तु देनी होगी? कृपा करके कहिए।' विश्वामित्र ने आठ सौ श्यामकर्ण घोड़े माँगे। गालव अपने मित्र गरुड़ को साथ लेकर राजा ययाति के पास माँगने गए। उसने उन्हें अपनी बेटी माधवी को सौंपकर कहा—'जो इसके साथ एक पुत्र उत्पन्न करे, वह दो सौ श्यामकर्ण घोड़े दे। इस प्रकार आप चार राजाओं के पास इसे ले जायेंगे, तो आठ सौ श्यामकर्ण घोड़े आपको मिल जायेंगे।' निदान गालव मुनि ने माधवी को ले लिया और क्रमशः उसे राजा हर्यश्व, दिवोदास और उशीनर के पास ले गए और उन्होंने एक-एक पुत्र उत्पन्न करके दो-दो सौ घोड़े दिए। इस प्रकार छः सौ घोड़े हो गए। जब और राजा न मिला, तो गालव मुनि ने छः सौ श्यामकर्ण घोड़े और माधवी को लाकर अपने गुरु विश्वामित्र को दिया। मुनि ने उससे एक पुत्र उत्पन्न किया। इस प्रकार ब्रह्मर्षि ने उन्हें गुरु-दक्षिणा से मुक्त किया।

गंगावतरण

गाधिसूनु सब कथा सुनाई। जेहि प्रकार सुरसरि महि आई।

प्राचीन काल में अयोध्या में सगर नाम का एक राजा था। उसके दो रानियाँ थीं – केशिनी और सुमति। उसको सब प्रकार का सुख था, पर कोई सन्तान न थी। अतः वह अपनी दोनों रानियों को लेकर हिमालय के एक प्रदेश में जाकर तप करने लगा। तप के प्रभाव से उसकी बड़ी रानी केशिनी के गर्भ से असमंजस नाम का एक पुत्र उत्पन्न हुआ और छोटी रानी सुमति के सात हज़ार पुत्रों का एक तुम्बा उत्पन्न हुआ, जिसमें से कुछ कालोपरान्त सब बालक निकले। वे सब घृत के कुण्ड में रखकर पाले-पोसे गए। सब बड़े हुए। असमंजस बड़ा निर्दयी और क्रूर था। वह लड़कों को पकड़-पकड़कर सरयू में फेंक देता था। राजा सगर ने उसे देश से बाहर निकाल दिया। उसके अंशुमान नाम का एक बड़ा सुन्दर और सुशील पुत्र उत्पन्न हुआ। जब राजा सगर हिमालय और विन्ध्याचल पर्वतों के बीच में यज्ञ कर रहा था, तो अंशुमान घोड़े की रखवाली पर था। इन्द्र उस घोड़े को हर ले गया और रसातल में कपिल मुनि के पीछे घोड़े को बाँध आया।

सगर ने अपने साठ हज़ार पुत्रों को घोड़े का पता लगाने की आज्ञा दी। उन्होंने साठ हज़ार योजन भूमि को खोद डाला और अन्त में वे वहाँ पहुँचे जहाँ कपिल मुनि के पीछे घोड़ा बँधा था। यह देखकर उन्होंने उन्हीं को चोर

समझा और उन्हें 'चोर-चोर' कहकर पकड़ लिया। इससे कपिल ने क्रोध से हुंकार किया और वे सब वहीं जलकर भस्म हो गए।

जब वे बहुत दिन बीत जाने पर भी नहीं लौटे, तब अंशुमान उन्हें खोजने निकला और वहाँ पहुँचा, जहाँ वे सब जले पड़े थे। उन्हें वह जल देना चाहता था, पर कहीं जलाशय न मिला। तब गरुड़ ने बतलाया कि गंगा के जल से ये तरेंगे। अंशुमान ने घोड़े को लाकर महाराज सगर को दिया। सगर ने यज्ञ पूरा किया और थोड़े दिन बाद वह परलोकगामी हुआ। तब-अंशुमान राजा हुआ। उसके बाद उसका पुत्र दिलीप राजा हुआ। दिलीप ने भी गंगा को लाने का कोई प्रयत्न नहीं किया। उसकी मृत्यु के बाद उसका धर्मात्मा पुत्र भगीरथ राज-सिंहासन पर बैठा। उसने राज्य मन्त्रियों को सौंप दिया और स्वयं गोकर्ण में जाकर गंगा लाने के लिए कठिन तपस्या करने लगा। उसकी तपस्या से ब्रह्मा बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने गंगा-जल और पुत्र का वरदान दिया। फिर भागीरथ ने शंकर की तपस्या की और उन्हें गंगा को धारण करने को बाध्य किया। जब गंगा वेग से गिर रही थीं, तो वे शिवजी की जटा में लुप्त हो गईं। फिर भागीरथ ने शिवजी से गंगा-जल माँगा और गंगाजी का प्रादुर्भाव हुआ, जिससे उनके पितर स्वर्ग को सिधारे।

चित्रकेतु

चित्रकेतु कर घर उन घाला। कनककसिपु कर पुनि अस हाला।

चित्रकेतु शूरसेन देश का चक्रवर्ती राजा था। उसके एक करोड़ रानियाँ थीं, पर किसी से भी कोई सन्तान नहीं थी। इससे राजा को बड़ी चिन्ता रहा करती थी। उसने अपनी इच्छा अंगिरा ऋषि से प्रकट की। उन्होंने यज्ञ किया और उसकी बड़ी पटरानी कृतद्युति को चरु खिलाया, जिससे एक बड़ा प्रतापी और सुन्दर पुत्र उत्पन्न हुआ। अंगिरा ने यह बात पहले ही बता दी थी कि लड़का हर्ष और शोक दोनों का देने वाला होगा। हुआ भी ऐसा ही। क्योंकि उस पुत्र के उत्पन्न होने से राजा बड़ी पटरानी से अधिक प्रेम करने लगा। यह देखकर और रानियों को ईर्ष्या होने लगी। इसलिए एक दिन उन्होंने मिलकर कुमार को विष दे दिया और वह मर गया।

जब राजा ने लड़के को मरा हुआ देखा, तो वह भी व्याकुल होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। इतने में अंगिरा और नारद मुनि भी आ पहुँचे। उन्होंने राजा को बताया कि पुत्र, पौत्र, धन और अनेक ऐश्वर्य सभी दुःखदायी हैं। नारदजी ने राजा को शेष भगवान् की विद्या दी। और सबके सामने ही उन्होंने मृत कुमार से कहा—'हे जीवात्मा! उठ, अपने माता-पिता को

सुखी कर ।' तब वह शरीर में प्रवेश करके बोल उठा—'संसार में न तो मेरा कोई पिता है और न कोई माता । सब अपने-अपने स्वार्थ के साथी हैं । इसलिए मेरे शरीर से किसी का कोई भी सम्बन्ध नहीं है । अतः मेरे लिए माता-पिता को शोक कदापि न करना चाहिए ।'

यह सुनकर राजा चित्रकेतु का अज्ञान जाता रहा और उसका शोक दूर हो गया । पापिनी रानियों ने भी प्रायश्चित्त किया । नारद ने ज्ञानी राजा चित्रकेतु को संकर्षण मन्त्र दिया । इसने उसने संकर्षण भगवान् से वरदान पाया और कृतार्थ हो गया । नारदजी के उपदेश से राजा विद्याधर हो गया । पार्वती ने इसी को शाप दिया था, जिससे वह वृत्रासुर नामक दैत्य हुआ ।

चन्द्रमा

ससि गुरु तियगामी नहुप चढ़ेउ भूमिसुर यान ।

एक बार त्रिलोक को जीतकर चन्द्रमा ने राजसूय यज्ञ किया । इससे उसे बड़ा घमण्ड हुआ । उसने जबरदस्ती गुरु बृहस्पति की भार्या तारा को छीन लिया । इस पर बड़ा घोर युद्ध हुआ, जिसमें दैत्यों ने चन्द्रमा की बड़ी मदद की । अन्त में ब्रह्मा ने मध्यस्थ होकर चन्द्रमा को डाटा-डपटा । चन्द्रमा ने बृहस्पति की स्त्री उसे लौटा दी । पर उसके गर्भ था । ब्रह्मा ने, जो पुत्र उत्पन्न हुआ, उसे चन्द्रमा को दिला दिया, क्योंकि यह उसी का वीर्य था । अधिक प्रतिभावान् तथा बुद्धिमान् होने के कारण उस लड़के का नाम बुध रखा गया ।

तपस्विनी

तेहि सब आपनि कथा सुनाई । मैं अब जाव जहाँ रघुराई ।

विश्वकर्मा के एक कन्या थी, जिनका नाम हेमा था । उसने अपने नृत्य से महादेव को प्रसन्न कर लिया था, जिससे उसने दिव्य स्थान पाया । वह दिव्य नामक गन्धर्व की कन्या स्वयंप्रभा के साथ रहा करती थी । जब वह ब्रह्म-लोक को जा रही थी, तब उसने स्वयंप्रभा से कहा—'जब त्रेता में रामचन्द्र के दूत यहाँ आयेंगे, तब तुम उनका सत्कार करना और राम का दर्शन करना । इससे तुम्हें परमपद मिलेगा ।'

ताड़का

चले जात मुनि दीन्ह दिखाई । सुनि ताड़का क्रोध करि धाई ।

प्राचीन काल में सरयू और गङ्गा के संगम पर देवताओं के द्वारा बनाए हुए दो देश 'मलद' और 'करूष' थे । सुन्द वहाँ का राजा था । उसी समय सुकेतु नाम का एक वीर यक्ष था, जिसके कोई सन्तान न थी । उसने तप करके

ब्रह्मा से वरदान पाया, जिससे उसके ताड़का नाम की अति सुन्दरी कन्या उत्पन्न हुई। उसमें सहस्र हाथियों का बल था। युवती होने पर ताड़का का ब्याह सुकेतु ने सुन्द के साथ कर दिया। जब अगस्त्य मुनि के शाप से सुन्द मारा गया, तब ताड़का क्रोधित होकर अपने पुत्र मारीच को लेकर मुनि को खाने दौड़ी। इस पर मुनि ने मारीच को शाप दिया कि तुम भयंकर राक्षस होओ और ताड़का से कहा—'तू पुरुषों को खाने वाली तथा भयानक रूप वाली हो जा।' इससे वह अगस्त्य मुनि के आश्रम को नष्ट किये डालती थी। तब विश्वामित्र राजा दशरथ के पास आकर राम-लक्ष्मण को माँग ले गए और उन्होंने उस स्त्री ताड़का का वध किया।

त्रिशंकु

सहसबाहु सुरनाथ त्रिशंकू। केहि न राजपद दीन्ह कलंकू।

महाराज त्रिशंकु इक्ष्वाकुवंशी राजा थे। जब महर्षि विश्वामित्र ब्रह्मर्षि पद के लिए वन में अपनी स्त्री के साथ कठिन तपस्या कर रहे थे, तब त्रिशंकु ने अपने पुरोहित महात्मा वशिष्ठ से कहा—'हे गुरुवर ! मैं सदेह स्वर्ग जाना चाहता हूँ। आप कोई उपाय बताइए।' यह सुनकर वशिष्ठजी ने उत्तर दिया कि ऐसा होना असम्भव है। तब वह उनके पुत्रों के पास गया। उन्होंने भी जवाब दे दिया। तब राजा ने कहा—'अच्छा, अब मैं किसी तीसरे के पास जाता हूँ। आपका कल्याण हो। यह अनादर वचन सुनकर वशिष्ठजी के पुत्रों ने शाप दिया कि 'तुम चाण्डाल हो जाओ।'

रात बीतने पर वह सचमुच भयंकर वेश वाला चाण्डाल हो गया। वह घबराकर विश्वामित्र के पास गया। विश्वामित्र ने उसकी इच्छा जानकर यज्ञ करके उसे सदेह स्वर्ग भेज दिया। पर जब वह वहाँ पहुँचा, तो इन्द्र ने उसे उसी क्षण लौटा दिया। उसने ऋषि की दुहाई दी। ऋषि ने उसे वहीं 'तिष्ठ-तिष्ठ' अर्थात् 'ठहर-ठहर', कहकर रोक दिया। उसे वहीं उल्टा ही रोककर विश्वामित्र ने दक्षिण की ओर सप्तर्षियों और नक्षत्रों की रचना प्रारम्भ की। देवताओं ने भयभीत होकर उनसे प्रार्थना की। तब उन्होंने कहा—'मैंने त्रिशंकु को सशरीर स्वर्ग भेजने की प्रतिज्ञा की है, इस वास्ते हमारे बनाए नक्षत्र तारे और सप्तर्षि उसके चारों ओर घूमते रहेंगे।' देवताओं ने इसे स्वीकार कर लिया।

दधीचि

सिबि दधीचि हरिचन्द नरेसा। सहे धरम हित कोटि कलेसा।

एक बार इन्द्र ने बृहस्पति का भरी सभा में अपमान किया, इससे उन्हें

बड़ा दुःख हुआ और वे इन्द्र से रूठ गए। यह समाचार पाकर दैत्यराज वृषपर्वा ने देव-लोक पर चढ़ाई कर दी। इन्द्र डरकर ब्रह्मा के पास आया। ब्रह्मा ने कहा—हे सुरेन्द्र ! अब तुम त्वष्टा के पुत्र विश्वरूप को अपना पुरोहित बनाओ, जिससे तुम्हारा कल्याण हो।' इन्द्र ने ऐसा ही किया। विश्व-रूप ने इन्द्र को नारायण कवच सिखला दिया, जिससे कोई अस्त्र-शस्त्र उसके शरीर पर प्रभाव न कर सके।

इन्द्र ने राज्य पाने पर यज्ञ प्रारम्भ कर दिया। विश्व-रूप भी साथ-साथ यज्ञ में आहुति देने लगे। वे मन में दैत्यों के नाम पर भी एक आहुति देते जाते थे। इन्द्र को यह मालूम हो गया। उसने उसका सिर काट डाला। इससे इन्द्र को ब्रह्म-हत्या लगी। ब्रह्मा ने हत्या को चार हिस्सों में बाँटा, एक पृथ्वी को दिया, जिससे पृथ्वी जहाँ-तहाँ ऊसर हो गई। दूसरा वृक्षों को दिया, जिससे उनमें लाही और गोंद लगने लगा। तीसरा भाग स्त्रियों को दिया, जिससे वे तीन दिन तक रजस्वला रहती हैं और चौथा भाग जल को दिया, जिससे उसमें काई लगती है।

पुत्र के मरने का समाचार पाकर त्वष्टा ने अत्यन्त क्रोध करके हवन आरम्भ किया। कुछ दिन के बाद वृत्रासुर नामक दैत्य उत्पन्न हुआ। त्वष्टा ने उससे कहा कि तुम इन्द्र को मारो। उसकी आज्ञा पाकर वह इन्द्र के पास पहुँचा और उसे उसने ललकारा। इन्द्र भयभीत होकर ब्रह्मा के पास गया। ब्रह्मा ने कहा—'जो दधीचि की हड्डी का वज्र बनाओ, तो दैत्य मारा जाय। इन्द्र दधीचि के पास आया और हड्डी की याचना की। दधीचि ने उसे सहर्ष हड्डी दे दी। इससे भगवान् ने प्रसन्न होकर उन्हें मुक्ति दी।

दण्डक

दण्डक वन प्रभु पावन करहू। उग्र साप मुनिवर के हरहू।

सतयुग में राजा मनु सारी पृथ्वी के ऊपर शासन करते थे। वे अपने पुत्र इक्ष्वाकु को सारा राज्य सौंपकर ब्रह्मलोक को चले गए। इक्ष्वाकु बड़े धर्मात्मा तथा प्रजा-पालक राजा थे। वंश-वृद्धि के लिए उन्होंने अनेक दान-तप किये, जिससे उनके देव-तुल्य सौ पुत्र उत्पन्न हुए। सबसे छोटे लड़के का नाम दण्ड था। वह बड़ा क्रूर और दुराचारी था, इसलिए महाराज ने उसे विन्ध्याचल और नीलगिरि के मध्य-प्रान्त का राज्य सौंपा। उसकी राजधानी का नाम मधुमत्त था।

एक दिन वसन्त-ऋतु में घूमता हुआ वह अपने गुरु भार्गव (शुक्राचार्य) के आश्रम के पास पहुँचा। वहाँ उसने उनकी ज्येष्ठ पुत्री 'अरजा' को देखा, जो

बड़ी सुन्दरी थी। राजा दण्ड उस पर मुग्ध हुआ और उसने उसके साथ बुरा कर्म करना चाहा, पर जब वह राजी न हुई तो उसने उसके साथ बलात्कार किया।

कुमारी अरजा ने जाकर राजा दण्ड की अनीति अपने पिता से कह सुनाई। शुक्राचार्य ने यह सुनकर शाप दिया—'हे दंड ! जा, तू सात रात के अन्दर पुत्र, सेना और वाहनों-सहित नष्ट हो जा। इन्द्र सौ योजन तक धूल और पत्थर बरसाकर तेरे राज्य को नष्ट कर दे और वहाँ के रहने वाले सभी स्थावर-जंगम जीव इस वृष्टि से नष्ट हो जायें।'

इसके बाद मुनि ने वहाँ के आश्रमवासियों को उस जंगल से बाहर जाने की आज्ञा दी। सब लोग चले गए और वह वन 'दण्डकारण्य' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। जब श्रीरामचन्द्रजी अत्रि के आश्रम से आगे चलकर उसमें प्रविष्ट हुए, तब ऋषि का शाप शमन हुआ।

दुन्दुभि

दुन्दुभि अस्थि ताल दिखराये। बिनु प्रयास रघुनाथ ढहाये।

दुन्दुभि एक राजा था। किष्किन्धा के राजा वालि ने उसे मार डाला और ऋष्यमूक पर्वत पर फेंक दिया। इसी पर्वत पर मतंग ऋषि का आश्रम था। जब उन्होंने रक्त देखा तब क्रुद्ध होकर शाप दिया कि यदि वालि यहाँ आयगा, तो उसका मस्तक फट जायगा और वह मर जायगा। इसी कारण वालि ऋष्यमूक पर्वत पर नहीं जाता था।

दुर्वासा

लोकहु वेद विदित इतिहासा। यह महिमा जानहिं दुरवासा।

ये अत्रि मुनि के पुत्र थे। इन्होंने और्व मुनि की कन्या कन्दली से यह कहकर ब्याह किया कि मैं इसके सौ अपराध क्षमा करूँगा। जब उसने १०१ अपराध किये, तो दुर्वासा ने उसे शाप देकर भस्म कर डाला। इससे उसके पिता बहुत क्रुद्ध हुए और उसने भी शाप दिया कि तुम्हारा अहंकार नष्ट हो जाय।

एक बार दुर्वासा अयोध्या के सूर्यवंशीय राजा अम्बरीष के पास गए। वह बड़ा धर्मात्मा राजा था। वह वैष्णव था। उसने एकादशी का व्रत किया था, इसलिए उस दिन पारण की तैयारी में था कि इतने में दुर्वासा वहाँ अतिथि-स्वरूप आ पहुँचे। उसने उन्हें निमन्त्रित किया। वे स्नान करने गए। वहाँ उन्होंने इतनी देरी लगाई कि पारण का समय व्यतीत होने लगा। तब राजा ने जल पीकर पारण कर लिया। जब दुर्वासा लौटकर आए और उन्हें मालूम

हुआ कि राजा ने जल पी लिया है, तब उसका नाश करने के लिए उन्होंने कृत्या प्रकट की। पर चक्र-सुदर्शन अम्बरीष के शरीर का रक्षक था, इसलिए उसने अपने तेज से कृत्या को भस्म कर दिया। वह फिर दुर्वासा पर झपटा। दुर्वासा ब्रह्मा, शिव और विष्णु के पास गए, पर किसी ने भी उनकी रक्षा नहीं की। तब वे राजा ही की शरण में आए। राजा ने चक्र-सुदर्शन की स्तुति की और उसे शान्त किया। तब दुर्वासा भगवद्-भक्तों की प्रशंसा करते हुए अपने स्थान को चले गए।

ध्रुव

ध्रुव सगलानि जपेउ हरि नाऊँ। पायेउ अचल अनूपम ठाऊँ।

मनु के पुत्र राजा उत्तानपाद के दो रानियां थीं। एक का नाम था सुनीति और दूसरी का सुरुचि। ध्रुव का जन्म बड़ी रानी सुनीति से हुआ था। राजा छोटी रानी सुरुचि को अधिक प्यार करता था। सुरुचि के लड़के का नाम उत्तम था।

एक दिन राजा उत्तम को गोद में बैठाए हुए था कि इतने में ध्रुव भी वहाँ खेलता हुआ आ पहुँचा। राजा ने उसे भी गोद में लेने की इच्छा की। इतने में सुरुचि ने कहा :

'हे बालक ! तू राजपुत्र तो है, पर मेरे गर्भ से उत्पन्न नहीं हुआ। अतः राजा की गोद में नहीं बैठ सकता। यदि तू राजा की गोद में बैठना चाहता है, तो जाकर भगवान् की तपस्या कर और वरदान मांग कि तेरा जन्म मेरे गर्भ से हो, जिससे राजा की गोद में बैठ सके।'

विमाता के ये कटु वचन सुनकर बालक ध्रुव अपनी माता के पास आया और उसने सारा हाल कह सुनाया। माता ने यह सुनकर कहा—'हे बेटा ! तुम्हारी विमाता ने जो कुछ कहा है, ठीक ही है। अतः जाकर भगवान् की आराधना करो, वे ही तुम्हारा दुःख दूर कर सकते हैं।'

माता की आज्ञा पाकर ध्रुव तपस्या करने के लिए वन में चला गया। उसने बड़ी कठिन तपस्या की, जिससे भगवान् विष्णु बड़े प्रसन्न हुए, और उन्होंने उसे वरदान दिया—'हे राज-पुत्र ! मैं तेरा संकल्प जानता हूँ, तेरा कल्याण होगा। जिस पद को आज तक कोई नहीं पा सका, जिसके चारों ओर सप्तर्षि, ग्रह, नक्षत्र आदि परिक्रमा करते हैं और जिसका आज तक नाश नहीं हुआ, वह स्थान मैं तुझे देता हूँ। उसमें फिर आवागमन नहीं होता। तू छत्तीस हजार वर्ष तक राज्य करके फिर उसी स्थान पर पहुँच जायगा। इतना कहकर भगवान् अन्तर्धान हो गए और ध्रुव आकर अपने पिता से राज्य

लेकर छत्तीस हज़ार वर्ष तक राज करता रहा। अन्त में वह परम पद को पहुँच गया।

नल-नील

नाथ नील नल कपि दोउ भाई। लरिकाई रिषि आसिष पाई।

एक बार जब मुनि लोग समुद्र-तट पर शालिग्राम की मूर्ति पूजकर आँख मूँदकर ध्यान करने लगे, तब इन दोनों भाइयों ने शालिग्राम को उठाकर समुद्र में फेंक दिया। इस पर ऋषियों ने शाप दिया कि तुम्हारे छुए हुए पत्थर पानी में नहीं डूबेंगे। इसीसे नल-नील सेतु की रचना कर पाए थे।

नहुष

ससि गुरु तियगामी नहुष चढ़ेउ भूमिसुर यान।

नहुष अयोध्यापति इक्ष्वाकुवंशी राजा अम्बरीष का पुत्र और ययाति का पिता था। एक बार जब इन्द्र ने तपस्वी ब्राह्मण वृत्रासुर को मार डाला, तब ब्रह्म-हत्या उसके पीछे लग गई। इन्द्र चारों ओर घूमता-फिरता था, उसे कहीं शरण न मिली। अन्त में वह ईशान कोण में मानस-सरोवर में घुसकर एक हजार वर्ष तक कमल-नाल के तन्तुओं में छिपा रहा और हत्या से छूटने का उपाय सोचने लगा।

इधर सुर-गुरु बृहस्पति ने इन्द्रासन खाली देखकर सर्वगुण-सम्पन्न, विद्या और बल से पूर्ण राजा नहुष को इन्द्र बनाया। एक दिन नहुष ने इन्द्र की पत्नी शची के ऊपर मुग्ध होकर उसे अपने पास बुलाना चाहा। इन्द्राणी ने कहला भेजा कि यदि आप पालकी पर बैठकर सप्तर्षियों को कहार बनाकर मेरे पास आयें, तो मैं सहर्ष आपकी पत्नी बन जाऊँगी। नहुष ने इसे स्वीकार कर लिया और जब वह चला जा रहा था, तो रास्ते में उसने अगस्त्य मुनि से कहा : 'सर्प','सर्प' अर्थात् जल्दी चलो, जल्दी चलो। इससे रुष्ट होकर अगस्त्य ने शाप दिया कि 'जा तू मृत्यु लोक में सर्प हो जा।'

इसलिए नहुष उसी क्षण पृथ्वी पर आकर सर्प हो गया। ब्राह्मणों ने इन्द्र को स्वर्ग में बुलाया और तमाम प्रायश्चित्त करवाकर उनको ब्रह्म-हत्या से छुटकारा दिलाया।

नारद

बालमीकि नारद घटजोनी। निज-निज मुखनि कही निज होनी।

नारदजी ने अपनी जीवनी स्वयं व्यासजी से इस प्रकार कही है—'मैं किसी दासी का पुत्र था, जो ऋषियों की सेवा किया करती थी। मैं ग़रीब होने के कारण उन्हीं ऋषियों की जूठन खाकर अपना निर्वाह कर लिया करता

था। जितेन्द्रिय बनकर मैं उनकी सेवा करने लगा और उनकी आज्ञा से एक ही बार भोजन किया करता था। इससे वे सब मुझसे बड़े प्रसन्न हुए। उनका जूठन खाने ही से मेरा अन्तःकरण पवित्र हो गया और मैं भगवद्-भक्ति में अनुरक्त हो गया। जब मैं पांच वर्ष का हुआ, तब मेरी माता गाय दुहने जा रही थी कि इतने में एक सांप ने उसे काट लिया और उसका प्राणान्त हो गया। तब मैं उत्तर दिशा की ओर रवाना हो गया और एक गहन वन में पहुंचा। वहां मैं तप करने लगा। पर ध्यान स्थिर भाव से नहीं रह सकता था। मैं विकल हो जाता था। समय पाकर मेरा भी प्राणान्त हुआ और कल्पान्त में जब भगवान् विष्णु क्षीर-समुद्र में शयन कर रहे थे, ब्रह्मा के प्राण के साथ मेरी आत्मा का प्रादुर्भाव हुआ। जब ब्रह्मा सृष्टि रचने लगे, तो उनकी इन्द्रियों से मरीचि आदि के साथ मैं भी प्रकट हुआ। अब इस वीणा को लेकर हरि-गुण-गान करता हुआ सर्वत्र विचरता रहता हूँ। कहीं मेरी गति नहीं रुकती और हमेशा भगवान् मुझे हृदय में दर्शन दिया करते हैं।

परशुराम

परशुराम पितु आज्ञा राखी। मारी मातु लोग सब साखी।

परशुराम जमदग्नि ऋषि के पुत्र थे। उनकी माता का नाम रेणुका था। उनके चार बड़े भाई और थे। समन्वान, सुषेण, वसु और विश्वावसु। एक दिन उनकी माता गंगा-तट पर जल लाने गई। वहां उसने राजा चित्ररथ को स्त्री के साथ जल-क्रीड़ा करते हुए देखा, वह मुग्ध हो गई और देर में लौटी। इससे ऋषि बड़े क्रुद्ध हुए और उन्होंने अपने पुत्रों से कहा कि अपनी माता को मार डालो। पर प्रेमवश किसी को भी यह हिम्मत न पड़ी कि वह उसकी हत्या करे। केवल परशुराम ने पिता की आज्ञा का पालन किया और अपनी माता को मार डाला। इससे पिता को बड़ी प्रसन्नता हुई और उन्होंने कहा—'हे पुत्र! वरदान मांगो।'

परशुराम ने कहा—'हे पिताजी! मुझे यही वरदान दीजिए कि मेरी माता पुनर्जीवित हो उठे और मैं दीर्घायु तथा अजेय होऊं।'

पिता ने कहा—'ऐसा ही होगा।'

एक दिन कार्तवीर्य सहस्रार्जुन ने आकर इनके पिता के हवन में विघ्न डाला। इसलिए उन्होंने उनकी सहस्र भुजाओं को काट डाला। उसका बदला लेने के लिए उसके नौकरों ने जमदग्नि को मार डाला। तभी से इन्होंने पृथ्वी-भर के क्षत्रियों का नाश करने की प्रतिज्ञा की। जब समस्त पृथ्वी को क्षत्रिय-रहित कर दिया, तब उन्होंने एक अश्वमेध यज्ञ किया। तदनन्तर सारी

विजित पृथ्वी उन्होंने कश्यप को दान कर दी। तब कश्यपजी ने क्षत्रियों की रक्षार्थ इन्हें दक्षिण समुद्र की ओर भेज दिया।

प्रह्लाद

नाम जपत प्रभु कीन्ह प्रसादू। भगत सिरोमनि भे प्रहलादू।

यह हिरण्यकश्यप के सबसे छोटे पुत्र थे। जब इनके पिता मन्दराचल पर तपस्या करने चले गए, तो देवताओं ने दैत्यों के ऊपर आक्रमण किया और उन्हें जीत लिया। जब इन्द्र इनकी माता कयाधु को कैद किये हुए चला जा रहा था, तो नारदजी ने इन्द्र से बतलाया था कि इसके गर्भ से एक बड़ा सुशील पुत्र उत्पन्न होगा, जो विष्णु का परम भक्त होगा। इससे इन्द्र ने उसकी माता को छोड़ दिया। नारदजी ने इनकी माता को धर्मोपदेश दिया, जिसे प्रह्लाद ने ध्यान से सुना।

जब प्रह्लाद उत्पन्न हुआ और पाँच वर्ष का हुआ, तो विद्योपार्जन के लिए पाठशाला में जाने लगा। पर वहाँ गुरु की शिक्षा पर कुछ ध्यान न देकर, वह सब लड़कों को भगवद्भक्ति और धर्मोपदेश करने लगा। इस पर गुरु शुक्राचार्य ने उसे बहुत पीटा और जब वह इतने पर भी न माना, तो उन्होंने उसके पिता से शिकायत की। पिता ने उसे बहुत समझाया कि 'बेटा! विष्णु की उपासना छोड़ दो, क्योंकि वह मेरा शत्रु है। तुम शिवजी का जप करो।' पर यह बात सुनकर प्रह्लाद उल्टा अपने पिता को उपदेश देने लगा कि 'नहीं, आप विष्णु की उपासना कीजिए, क्योंकि वे सर्वश्रेष्ठ हैं।' इस पर पिता बहुत क्रुद्ध हुआ और उसने बालक प्रह्लाद को जल में डुबवाया, पर्वत से गिरा दिया, हाथी से रौंदवाया और अन्य प्रकार की अनेकों यातनाएँ दीं, पर प्रह्लाद ने राम-नाम कहना नहीं छोड़ा। तब राजा ने अपनी बहन होलिका से कहा—'इसे गोद में लेकर अग्नि में बैठ जाओ, जिससे यह जल जाय और तुम किसी उपाय से बचा ली जाओगी।' होलिका ने ऐसा ही किया, पर होलिका जल गई और प्रह्लाद बच गए। इससे क्रुद्ध होकर पिता ने स्वयं उसे तलवार लेकर मारना चाहा, पर भगवान् नृसिंह अवतार धारण करके प्रकट हुए और सायंकाल के समय दहलीज के ऊपर भगवान् ने अपने नखों से उसका पेट फाड़ डाला। इस तरह उन्होंने प्रह्लाद की रक्षा की।

पृथुराज

पुनि प्रनवउँ पृथुराज समाना। पर अघ सुनइ सहस दस काना।

पृथुराज राजा वेनु का पुत्र था। जब वेनु मर गया, तब देश में अराजकता फैल गई। तब पृथु राजा बनाया गया। यह बड़ा धर्मात्मा और भक्त था।

उसके समय में पृथ्वी पर खेती जोरों से होने लगी। वाणिज्य खूब बढ़ा-चढ़ा। सारे संसार में उसका प्रभुत्व छा गया। भारत का यह सार्वभौम प्रजा-तन्त्र-राज्य पहले-पहल इसी के राष्ट्रपतित्व में हुआ। इसीसे वसुन्धरा का नाम पृथ्वी पड़ा। इसने भगवान् से यह वर माँगा कि आपके चरित और सुयश सुनने के लिए मेरे कानों में दस हजार कानों की शक्ति हो जाय।

वलि

वलि बाँधत प्रभु बाढ़ेउ सो तनु बरनि न जाय।

यह प्रह्लाद का पौत्र और बड़ा सत्यवादी, धर्मात्मा तथा दानी राजा था। उसने देवताओं को जीतकर स्वर्ग पर अपना अधिकार कर लिया, तब देव-माता अदिति बहुत व्याकुल हुई। उन्होंने व्रतादि से भगवान् विष्णु को प्रसन्न किया। उन्हीं के गर्भ से भगवान् ने वामन अवतार लिया। जब उनका यज्ञोपवीत होने लगा, तो वलि ने सौ अश्वमेध यज्ञ करना आरम्भ किया, इसलिए वे यज्ञ-मंडप में पधारे। वलि उनके तेज पर मुग्ध हो गया और उसने उनकी पूजा करके उनसे वर माँगने के लिए कहा। वामन ने तीन पैर पृथ्वी माँगी। यद्यपि शुक्राचार्य ने बहुत मना किया पर उसने जल लेकर तीन पैर पृथ्वी दान कर ही दी। भगवान् ने विराट् रूप धारण किया। एक पैर से उन्होंने पृथ्वी नाप ली और दूसरे पैर से स्वर्गादि लोक नाप लिये और तीसरे पैर के लिए जब कुछ न बचा, तब बलि ने एक पैर के बदले अपना शरीर नपा दिया। इससे वामन भगवान् उससे बड़े प्रसन्न हुए और उसे सुतल-लोक का राज्य देकर वहाँ से विदा किया और स्वर्ग देवताओं को दिला दिया।

वेनु

लोक वेद तें विमुख भा अधम को वेनु समान।

ध्रुव के वंश में कई पीढ़ी पीछे एक राजा था, जिसका नाम अंग था। वह बड़ा धर्मात्मा था, पर उसके कोई संतान न थी। इसलिए उसने यज्ञ कराया, जिससे एक पुत्र पैदा हुआ। उसका नाम 'वेनु' था। यह बड़ा पापी था। खेलते हुए निरपराध बच्चों को पशुवत् मार डालता था। राजा ने उसे बहुत समझाया-बुझाया, पर उसने कुछ भी ध्यान न दिया। जब उसका अत्याचार अधिक बढ़ने लगा, तो राजा अंग अपनी स्त्री सुनीथा को साथ लेकर पापी पुत्र को घर से निकलकर कहीं चला गया। तब ब्राह्मणों ने मिलकर वेनु का राज्याभिषेक कर दिया। उसने रथ पर बैठकर, चारों ओर घूमकर यह आज्ञा दी कि सब कोई यज्ञ, होम और दान-पुण्य बन्द कर दो, क्योंकि इनसे कोई लाभ नहीं है। जो कुछ है, वह मैं ही हूँ। तुम लोग मेरी ही पूजा करो।

ब्राह्मणों ने उसे बहुत समझाया, पर उसने एक न सुनी। तब सब ब्राह्मण बहुत क्रुद्ध हुए और उन्होंने उसे मार डालना ही उचित समझा। इसलिए उन लोगों ने क्रोध करके उसे हुंकार शब्द से मार डाला।

ययाति

तनय जजातिहि जौबन दयऊ। पितु अग्या अघ अजस न भयऊ।

राजा नहुष के छः पुत्र थे। उनमें एक का नाम ययाति था। जब इनके बड़े भाई ने राज्य लेना अस्वीकार किया, तो यही राजा हुए। इनके दो रानियाँ थीं—देवयानी और शर्मिष्ठा। पहली शुक्राचार्य की पुत्री थी और दूसरी वृषपर्वा दैत्य की। शुक्राचार्य ने शर्मिष्ठा के साथ संभोग करने के लिए राजा को मना किया था। पर ऋतु-काल में शर्मिष्ठा की प्रार्थना से इन्होंने संभोग कर लिया और उसे गर्भ रह गया। इससे देवयानी क्रुद्ध होकर अपने पिता के यहाँ चली गई। राजा भी उसके पीछे-पीछे उसे मनाते हुए गये। शुक्राचार्य ने सब हाल सुनकर शाप दिया—'हे राजा! तू बुड्ढा हो जा।' इस पर राजा ने उनसे प्रार्थना की कि आप यह वरदान दें, कि मैं किसी का यौवन लेकर फिर युवा हो सकूँ। उन्होंने कहा—'ऐसा ही होगा।'

शर्मिष्ठा के दो पुत्र थे—यदु और तुर्वसु। देवयानी से तीन पुत्र उत्पन्न हुए—द्रुह्यु, अनु और पुरु। जरा-ग्रस्त होने पर राजा ने अपने पुत्रों से यौवन माँगा, पर किसी ने भी नहीं दिया। केवल पुरु ने पिता की आज्ञा का पालन किया। इसलिए जब राजा ययाति सब सुख भोग चुके, तब उन्होंने पुरु को उसका यौवन लौटा दिया और उससे प्रसन्न होकर सारा राज्य उसी को सौंप दिया और स्वयं वन को चले गए। वहाँ वे शरीर छोड़ने पर स्वर्ग गये; पर कुछ दिनों बाद स्वर्ग-भ्रष्ट होकर वे अपने दौहित्रों के यज्ञ-मण्डप में गिरे। फिर वे वनवासिनी और तपस्विनी कन्या माधवी तथा दौहित्रों के पुण्य-फल से स्वर्ग में पहुँच गए।

रन्तिदेव

रन्तिदेव बलि भूप सुजाना। सहेउ धरम धरि संकट नाना।

यह बड़ा दानी राजा था। एक बार उसे ४८ दिन बिना अन्न-जल ही के बीत गए। वह सकुटुम्ब बड़ा दुःखी हुआ। अकस्मात् ४६ वें दिन घृत, खीर, लपसी और जल राजा को मिल गए। राजा भोजन करने बैठ ही रहा था, कि इतने ही में एक ब्राह्मण अतिथि-स्वरूप वहाँ आ पहुँचा। राजा ने उसे अपना भाग खिलाकर सादर विदा किया। इतने ही में एक शूद्र भी आ पहुँचा। राजा ने उसे भी भोजन दिया। फिर जैसे ही राजा ने शेष अन्न खाना चाहा

त्यों ही एक तीसरा अतिथि साथ में कुत्ते लिये आ पहुँचा। उसने कहा—'हे राजन् ! मैं और मेरे कुत्ते सभी भूखे हैं। मुझे अन्न दीजिये।' राजा ने बचा हुआ अन्न उसे दे दिया और प्रणाम करके विदा किया। अब राजा के पास केवल जल बच रहा। उसे वह पीना ही चाहता था कि चांडाल आकर कहने लगा—'हे राजन् ! मुझ नीच को जल दीजिये।' उसकी आर्त्त वाणी सुनकर राजा ने कहा :

> नत्वहं कामये राज्यं न स्वर्गं ना पुनर्भवं।
> कामये दुःखतप्तानां प्राणिनामर्त्तिनाशनम् ॥

अर्थात् न तो मुझे राज्य ही की आकांक्षा है और न मोक्ष ही चाहता हूँ। मेरी यही कामना है कि सब प्राणियों की पीड़ा दूर हो जाय। इतना कहकर राजा ने उसे यह जल दे दिया।

इतने में ब्रह्मा, विष्णु इत्यादि देवता, जो उपर्युक्त रूप धारण करके आये थे, प्रकट हो गए और उन्होंने राजा को दर्शन दिया। राजा ने सबको भक्ति से प्रणाम किया और कुछ चाहना न की। इसलिए भगवान् ने उसे मुक्ति दी।

रावण

सुनु सठ सोय रावन बलसीला। हरगिरि जानु जासु भुजलीला।

(१) जब रावण ने अपने भाई कुबेर से पुष्पक विमान ले लिया, तब वह उस पर सवार होकर कैलाश पर्वत के जङ्गल में घुसा। पर वहाँ विमान आगे जाने से रुक गया। उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। इतने में विकराल वानर-मूर्ति शिव के मुख्य गण श्रीनंदीश्वर रावण के पास आकर कहने लगे—'हे दशानन ! यहां शिवजी क्रीड़ा कर रहे हैं, तू यहां से चला जा। रावण उनका रूप देखकर और शिव का नाम सुनकर तिरस्कार करके हँसा। इस पर नंदीश्वर ने क्रुद्ध होकर कहा—अरे दशग्रीव ! तू मेरे वानर-रूप पर हँस रहा है, इसलिए वानरों ही द्वारा तेरे कुल का नाश होगा। इस शाप पर रावण ने तनिक भी ध्यान न दिया और क्रुद्ध होकर उसने अपनी भुजाओं को पर्वत के नीचे घुसा कर उसे उठा लिया। इससे शिव के गण कांपने लगे और पार्वती भी शिव के शरीर से लिपट गईं। तब शिव ने अपने पैर के अँगूठे से पर्वत को दबा दिया, जिससे रावण की भुजाएँ दबकर मरमरा उठीं। इससे दुःखित होकर उसने बड़ा घोर नाद किया, जिससे त्रैलोक्य कांप उठा। हैरान होकर रावण सामवेद से शङ्कर की स्तुति करने और रो-रोकर उनकी प्रार्थना करने लगा। इस प्रकार हज़ार वर्ष बीत गए। तब भगवान् शिव प्रसन्न हुए और उन्होंने उसकी भुजाओं को दाब से छोड़ दिया और उसे रावण की पदवी तथा चन्द्रहास नामक खड्ग दिया।

जानउँ मैं तुम्हारि प्रभुताई। सहसवाहु सन परी लराई।

(२) एक बार रावण हैहयवंशीय राजा सहस्रार्जुन से युद्ध करने गया। राजा ने उसे बाँध लिया। तब पुलस्त्य मुनि के कहने पर राजा ने रावण को छोड़ दिया।

एक कहत मोहिं सकुच अति, रहा बालि की काँख।

(३) एक बार रावण बालि को मारने की इच्छा से किष्किन्धा गया। बालि ने उसे अपनी काँख में दबाकर, चारों ओर समुद्रों पर घुमा-फिराकर उसे छोड़ दिया। इसलिए बालि के पराक्रम से प्रसन्न होकर रावण ने उससे मित्रता कर ली।

राहु

उघरहिं अन्त न होइ निवाहू। कालनेमि जिमि रावन राहू।

जब समुद्र-मन्थन हो रहा था, तब उसमें से १४ रत्न निकले। जिसमें अमृत का कलश लिये हुए धन्वन्तरि वैद्य भी बाहर आये। दैत्यों ने अमृत का कलश छीन लिया और देवता मुँह ताकते रह गए। तब सब देवता मिलकर नारायण के प,स गये और उन्होंने सारा हाल कह सुनाया। भगवान् ने कहा—'तुम लोग घबराओ मत, मैं उपाय करूँगा।' इधर दानव आपस में बँटवारे के लिए लड़-झगड़ ही रहे थे कि भगवान् मोहिनी रूप धारण कर रंग-स्थल पर में आ गए। दैत्य उन्हें देखकर बहुत कामातुर हुए और उन्होंने उस अमृत-कलश को भगवान् को सौंप दिया। भगवान् ने देवताओं और दैत्यों की दो अलग-अलग पंक्तियाँ बैठाईं और स्त्री-चरित्र से दैत्यों को ठगकर, देवताओं को अमृत पिला दिया। उसी अवसर पर राहु नामक दैत्य देवता का रूप धारण करके, देव-पंक्ति में जा बैठा था। वह सूर्य और चन्द्रमा के बीच में जा बैठा था। उन्होंने भगवान् को सूचना दे दी। भगवान् ने चक्र-सुदर्शन से उसका सिर काट लिया। पर अमृत उसके कंठ के नीचे पहुँच गया था, इससे उसके सिर और धड़ अमर हो गए। उसी धड़ और सिर को ब्रह्मा ने अष्टम और नवम ग्रह बना दिया। अवसर पाकर वही राहु चन्द्रमा और सूर्य को ग्रसता है।

वाल्मीकि

वालमीकि नारद घट जोनी। निज-निज मुखनि कही निज होनी।

'अध्यात्म-रामायण' में लिखा है कि जब रामचन्द्र वाल्मीकि के आश्रम में गए, तब उन्होंने उनके नाम की बड़ाई की, क्योंकि उन्हीं का उलटा नाम अर्थात् 'मरा' कहकर वे ब्रह्मर्षित्व को प्राप्त हुए थे। उन्होंने राम से अपनी जीवनी इस प्रकार कही—

"हे राम ! मैं एक ब्राह्मण का पुत्र था। परन्तु मैं सदैव शूद्रों का-सा आचरण किया करता था और हमेशा किरातों के साथ रहा करता था। मैंने चोरी भी खूब की और एक शूद्रा स्त्री से मैंने कई पुत्र भी पैदा किये। यदि कोई राही मिलता, तो उसे मारकर लूट लिया करता था। एक दिन सप्तर्षि चले जा रहे थे कि मैं उनके ऊपर टूट पड़ा। उन्होंने मुझे देखकर पूछा—'रे-रे मूर्ख द्विजाधम ! तू हमारे पास क्यों आता है ?' मैंने उत्तर दिया–'हे मुनिवरो ! मैं अपने कुटुम्ब को पालने के लिए आप लोगों को लूटना चाहता हूँ।' उन लोगों ने कहा—'अच्छा, पहले तू जाकर अपने पुत्रों तथा स्त्री से पूछ कि वे तेरे पाप में शामिल होंगे या नहीं ? जब तक तू लौट न आयगा, हम लोग यहीं खड़े रहेंगे।' मैंने जाकर अपने पुत्रों और स्त्री से पूछा, तो उन्होंने उत्तर दिया कि हम लोग पाप-भागी न होंगे, केवल धन ही में हिस्सा लेंगे।' यह सुनकर मुझे कुछ ज्ञान हुआ और मैंने आकर सप्तर्षियों के चरणों में सिर नवाया। मैंने उनसे प्रार्थना की कि हे मुनिगण ! कोई ऐसा उपाय बतलाइये, जिससे मेरा कल्याण हो और मैं नरक में जाने से बच जाऊँ। उन्होंने मुझे 'राम-नाम' जपने का उपदेश दिया, पर मैं ऐसा मूर्ख था कि शुद्ध नाम भी उच्चारण नहीं कर सकता था। तब उन्होंने वहीं बैठकर उल्टा नाम अर्थात् 'मरा' जपने के लिए कहा। मैं वहीं बैठकर एक हजार वर्ष तक उसी प्रकार नाम का जप करता रहा। मेरे ऊपर बांबी जम गई। तब वही ऋषि फिर वहाँ आये और मुझसे कहने लगे—'हे ब्रह्मर्षे ! बाहर निकल आओ।' यह सुनकर मैं उठ खड़ा हुआ और उन्होंने मेरा नाम वाल्मीकि रखा; क्योंकि मेरा पुनर्जन्म वाल्मीकि से हुआ था। तभी से मुझे ब्रह्मर्षि की उपाधि मिली।"

इन्हीं ब्रह्मर्षि ने रामायण की रचना की थी, जिसका नाम 'वाल्मीकि-रामायण' है।

विराध

मिला असुर बिराध मग जाता। आवत ही रघुबीर निपाता।

विराध तुम्बु नाम का गन्धर्व था। यह रम्भा नाम की अप्सरा पर मुग्ध हो गया था। इससे एक दिन कुबेर की सेवा न कर सका। तब कुबेर ने इसे राक्षस होने का शाप दिया। पर उसके गिड़गिड़ाने पर उन्होंने कहा—'जा, जब त्रेता में श्रीरामचन्द्र वन से आयेंगे, तब तुझे मारकर तेरा उद्धार करेंगे।'

काल पाकर यही शतह्रदा नाम की राक्षसी का पुत्र हुआ। उसका नाम विराध पड़ा। जब राम, लक्ष्मण और सीता वन में चले जा रहे थे, यह सीता को लेकर भागा। तब दोनों भाइयों ने उससे युद्ध करके इसकी भुजाएँ काट

लीं और वह शरीर त्यागकर अपने लोक को चला गया।

विश्वामित्र

यह गाधि के पुत्र थे। एक बार ये वशिष्ठ के यहाँ मेहमान होकर गये। वशिष्ठ ने उनका बड़ा सत्कार किया। जब विश्वामित्र को यह मालूम हुआ कि वशिष्ठ के यहाँ एक कामधेनु है, तब उसे उन्होंने उनसे माँगा। वशिष्ठ ने कहा—'यह कामधेनु मेरी नहीं है, पञ्चायती है, अतः मैं आपको देने में असमर्थ हूँ।'

यह सुनकर विश्वामित्र को बड़ा क्रोध हुआ और उन्होंने वशिष्ठ मुनि से घोर संग्राम किया। अन्त मे ब्रह्म-बल से मुनि ने उनकी सेना का नाश किया। तभी से विश्वामित्र ने भी ब्राह्मण बनने का संकल्प किया। इसलिए वे तपस्या में संलग्न होगए। बड़ा कठिन तप किया। अन्त में ब्रह्मा से इन्होंने यह वरदान लिया कि वशिष्ठ मुनि मुझे ब्रह्मर्षि कहें। ब्रह्मा ने कहा—'एवमस्तु।'

एक दिन विश्वामित्र वशिष्ठ से मिलने गए। वे ज्यों ही कुटी पर पहुँचे और वशिष्ठ को बुलाने वाले थे, त्यों ही उन्होंने अरुन्धती को वशिष्ठ से यह कहते हुए सुना—'हे भगवन् आजकल राजर्षि विश्वामित्र के तप की बड़ी धूम है। सभी प्रशंसा करते हैं।' तब वशिष्ठ मुनि ने कहा 'हे देवी! वे अब राजर्षि नहीं, ब्रह्मर्षि हो गए हैं। क्योंकि ब्रह्मा ने उन्हें ब्रह्मर्षि ही होने का वरदान दिया है। इतने में दोनों आदमी बड़े प्रेम से मिले और उनके मन का मैल धुल गया।

शवरी

सवरी पेखि रामु गृह आए। मुनि के वचन समुझि जिय भाये।

शवरी एक भीलनी थी। जब शवरी के गुरु स्वर्गगामी हो रहे थे, तब शवरी ने उनसे स्वयं अपने को भी स्वर्ग में ले चलने की प्रार्थना की। इस पर उसके गुरु ने कहा था कि तू अभी यहीं रह; जब राम और लक्ष्मण यहाँ आयेंगे, तब तू भी उनके दर्शन से परम धाम को जायगी। तभी से वह भगवान् के आने की बाट जोहती रही।

शिवि

सिवि दधीचि हरिचन्द कहानी। एक-एक सन कहहिं बखानी।

यह काशी-नरेश उशीनर के पुत्र थे। जब राजा की मृत्यु हो गई,तब शिवि वहाँ के राजा हुए एक बार राजा ने १०० यज्ञ करने का विचार किया। जब वह ९२ यज्ञ कर चुका,तो इन्द्र को बड़ी चिन्ता हुई कि कहीं ऐसा न हो कि यह आठ यज्ञ और करके मेरे पद को प्राप्त कर ले। इसलिए उसने राजा के यज्ञ में विघ्न

डालने के विचार से अग्नि को कबूतर बनाया और स्वयं बाज बन गया। जब बाज झपटा, तब कबूतर भागकर राजा शिव की गोद में जाकर बैठ गया। इन्द्र ने कहा—'हे राजन्! आप मेरा आहार मुझे दे दीजिये, नहीं तो मैं भूखों मर जाऊँगा।' राजा ने कहा—'मैं शरणागतों की रक्षा अवश्य करूँगा। अतः जो कुछ तू चाहे मुझसे ले ले।' इस पर बाज ने कहा—'अच्छा, आप मुझे इसी कबूतर के बराबर अपना मांस काटकर दे दीजिये।' राजा ने स्वीकार कर लिया। कबूतर पलड़े पर रखा गया और राजा का मांस काटा गया, पर वह बराबर नहीं हुआ। तब राजा स्वयं पलड़े पर बैठने के लिए उद्यत हुआ। इतने ही में भगवान् विष्णु प्रकट हुए और उन्होंने उसे मुक्ति दी।

शृङ्गी

यह महात्मा विभाण्डक के पुत्र थे। एक बार विभाण्डक जब गङ्गा में गोता लगाने गए, तब उन्हें एक उर्वशी अप्सरा दिखलाई पड़ी। उसे देखकर ऋषि का वीर्य गिर गया। उन्होंने उसी क्षण गोता लगा लिया। इतने में एक मृगी ने आकर वही जल पिया, जिसमें ऋषि का शुक्र गिर गया था। वह मृगी नहीं थी, बल्कि देव-कन्या थी। ब्रह्मा के शाप से वह मृगी हो गई थी। ऋषि के शुक्र से उसे गर्भ रह गया और उसी से शृङ्गी पैदा हुए। शृङ्गी ऋषि को उत्पन्न करने के बाद वह फिर अपने लोक को चली गई। ऋषि के मस्तक पर सींग थे, अतः उसका नाम ऋष्यशृङ्ग पड़ा। अंगदेश (भागलपुर) के राजा रोमपाद थे। वे राजा दशरथ के बड़े मित्र थे। उनके कोई सन्तान न थी, इसलिए दशरथ ने अपनी कन्या शान्ता उन्हें दे दी। विभाण्डक के यहाँ ब्राह्मणों का अपमान होता था, इसलिए उनके राज्य में बड़ा अकाल पड़ा। उसने दुःखी होकर ब्राह्मणों से इसका उपाय पूछा तब उन लोगों ने शान्ता के साथ शृंगी ऋषि का ब्याह करने के लिए कहा। वेश्याओं द्वारा ऋष्यशृङ्ग विभाण्डक के यहाँ बुलाने गए और धूम-धाम से शान्ता का ब्याह उनके साथ कर दिया गया। इन्होंने महाराज दशरथ के यहाँ पुत्रेष्टि-यज्ञ किया था, जिससे राम आदि का जन्म हुआ।

सहस्रबाहु

सहसबाहु भुज छेदनिहारा। परसु बिलोकु महीपकुमारा।

यह हैहयवंशीय क्षत्रिय था। इसकी राजधानी माहिष्मतीपुरी थी। जब इसने जमदग्नि ऋषि का आश्रम नष्ट किया था, तब परशुराम ने इसके हजारों हाथ काट डाले। वह मृत्यु को प्राप्त हुआ। देखिये 'परशुराम'।

सीता को नारद का आशीर्वाद

सुमिरि सीय नारद वचन उपजी प्रीति पुनीत ।

जब जानकी गिरिजा का पूजन करने जा रही थी, तब रास्ते में उन्हें नारदजी मिल गए। सीता ने उन्हें प्रणाम किया। तब नारद ने आशीर्वाद दिया कि इसी बगीचे में तुम पहले-पहल अपने पति का दर्शन करोगी। सीता ने पूछा—'मैं कैसे पहचानूंगी ?' तब नारद ने कहा—'जिसे देखकर तुम्हारा मन लुभा जाय, वही तुम्हारा पति होगा।'

सुरनाथ (इन्द्र)

सहस बाहु सुरनाथ त्रिसंकू। केहि न राजमद दीन्ह कलंकू।

एक बार जब बृहस्पति इन्द्र की सभा में गये, तब लक्ष्मी के मद से उसने इनका कुछ भी आदर न किया। गुरु बृहस्पति चुपचाप उठकर अपने घर चले गए। इन्द्र को मालूम हो गया कि उसने अपराध किया है। वह उनसे क्षमा माँगने के लिए उनके यहाँ गया, पर बृहस्पति अदृश्य हो गए। इधर दैत्यों ने शुक्राचार्य की सम्मति से इन्द्र पर चढ़ाई कर दी। तब ब्रह्मा की आज्ञा से इन्द्र ने जाकर त्वष्टा के पुत्र तपस्वी विश्वरूप से प्रार्थना की और उन्हें अपना पुरोहित बनाया। तब इन्द्र का राज्य वापस मिला।

हरिश्चन्द्र

सिवि दधीचि हरिचन्द नरेसा। सहे धरम हित कोटि कलेसा।

यह अयोध्या के सूर्यवंशी राजा बड़े दानी थे। इनके दान की प्रशंसा सर्वत्र फैल गई थी। एक दिन नारद मुनि ने जाकर इन्द्र से इनकी प्रशंसा की। उसे यह सुनकर बड़ी ईर्ष्या हुई। वह डरने लगा कि कहीं राजा हरिश्चन्द्र हमारे पद को न पा जायँ। इसलिए विश्वामित्र से उसने उनकी परीक्षा लेने के लिए कहा। ऋषि ने आकर राजा से सारी पृथ्वी का दान माँगा और एक सहस्र स्वर्ण-मुद्राएँ उसकी दक्षिणा भी माँगी। राजा ने पृथ्वी तो सहर्ष दान दे दी, पर दक्षिणा चुकाने के लिए वे सकुटुम्ब काशी में गए। वहाँ उन्होंने एक ब्राह्मण के हाथ अपनी स्त्री तथा लड़के को बेचकर आधी दक्षिणा दी और शेष दक्षिणा उन्होंने अपने को एक डोम के हाथ बेचकर चुका दी। महाराज अब उस डोम के यहाँ मरघट की रखवाली करने लगे। एक दिन उनके पुत्र रोहिताश्व को सर्प ने काट लिया, जिससे कुमार की मृत्यु हो गई। रानी शैव्या उसे लेकर शव-दाह करने के लिए श्मशान-घाट पर गईं। पर वहाँ राजा हरिश्चन्द्र ने पहुँचकर कर माँगा, यद्यपि वे रानी को पहचान भी गए थे। जब रानी कर देने के लिए अपनी साड़ी फाड़ने को उद्यत हुई, तभी नारायण प्रकट हो गए

और उन्होंने उसका हाथ पकड़ लिया। राजा सकुटुम्ब भगवान् के चरणों पर गिर पड़े और भगवान् उन्हें अपने लोक को ले गए।

हिरण्यकश्यप

चित्रकेतु कर घर उन घाला। कनककसिपु कर पुनि अस हाला।

यह दैत्यों का राजा था। प्रह्लाद इसी के पुत्र थे। यह विष्णु का वैरी और शिव का भक्त था। जब प्रह्लाद राम-नाम का जप करते थे, तब वह उन्हें बड़ा कष्ट दिया करता था। यहाँ तक कि वह स्वयं ही प्रह्लाद को तलवार से मारने को उद्यत हुआ कि भगवान् नृसिंह का रूप धारण करके खम्भे को फाड़कर बाहर निकल पड़े और अपने नखों से उसका उदर विदीर्ण कर डाला। देखिए 'प्रह्लाद'।

गूढ़ार्थ-कोष

१ अग्नि—१ दक्षिणाग्नि, २ गार्हपत्य, ३ आहवनीय ।

२ अवस्था—१ जाग्रत, २ स्वप्न, ३ सुषुप्ति, ४ तुरीय ।

३ अविद्या—ईश्वर की मोह-शक्ति ।

४ आकर—१ जरायुज, २ अण्डज, ३ स्वेदज, ४ उद्भिज ।

५ आभरण—१ नूपुर, २ चूड़ी, ३ हार, ४ कंकण, ५ अँगूठी, ६ बाजूबन्द, ७ वेसर, ८ विरिया, ९ टीका, १० शीशफूल, ११ तागड़ी, १२ कण्ठश्री ।

६ आश्रम—ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास ।

७ ईति—७ प्रकार की होती हैं—अतिवर्षा, २ सूखा, ३ टीड़ी, ४ मूषक, ५ शुक, ६ स्वचक्र, ७ परचक्र ।

८ ईषणा—तीन हैं—१ लोक-बड़ाई, २ धन-राज्यादि, ३ स्त्री-पुत्र ।

९ उपवेद—चार हैं—१ ऋग्वेद का आयुर्वेद २ यजुर्वेद का धनुर्वेद, ३ सामवेद का गन्धर्व, ४ अथर्ववेद का स्थापत्य ।

१० ऋतु—छः हैं—१ शिशिर, २ वसन्त, ३ ग्रीष्म, ४ वर्षा, ५ शरद् ६ हेमन्त ।

११ कर्म—तीन हैं—१ संचित, २ प्रारब्ध, ३ क्रियमाण ।

१२ कल्प—४ युगों की एक चौकड़ी और हजार चौकड़ी का १ कल्प । सतयुग १७२८००० वर्ष, त्रेता १२९६००० वर्ष, द्वापर ८६४००० वर्ष और कलियुग ४३२००० वर्ष का होता है । इन सबके सहस्र का कल्प कहलाता है, अर्थात् इन सबका योगफल ४३२०००० हुआ, उसका सहस्र ४३२०००००००० हुआ ।

१३ गुण—सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण ।

१४ गुरु—तीन हैं—१ माता, २ पिता, ३ आचार्य ।

१५ चतुरङ्गिणी-सेना—१ हाथी, २ रथ, ३ पैदल, ४ घोड़ा ।

१६ चतुर्गुण—१ साम, २ दाम, ३ दण्ड, ४ भेद ।

१७ तत्त्व--पाँच हैं--१ पृथ्वी, २ आप, ३ तेज, ४ वायु, ५ आकाश।

१८ ताप-- तीन हैं--१ आध्यात्मिक, २ आधिभौतिक, ३ आधिदैविक।

१९ त्रिदेव--ब्रह्मा, विष्णु और महेश।

२० तीन अवस्था--बालक, युवा और वृद्ध।

२१ दिक्पाल—दस हैं—इन्द्र, यम, वरुण, कुबेर, अग्नि, राक्षस, वायु, शिव, ब्रह्मा और शेष।

२२ द्वीप—सात हैं-जम्बू, शाक, कुश, क्रौंच, पुष्कर, शाल्मली और गोमेद।

२३ नवखण्ड—इलावृत्ति, रम्यक, हिरण्यमय, कुरु, हरि, भारत, केतुमाल, भद्राश्व, किंपुरुष।

२४ निधि—नौ हैं-१ महापद्म, २ पद्म, ३ शंख, ४ मकर, ५ कच्छप, ६ मुकुन्द, ७ कुन्द, ८ नील और ९ खर्व।

२५ प्राण—पांच हैं—प्राण, अपान, उदान, व्यान और समान।

२६ पुराण--१८ हैं—ब्रह्म-पुराण, पद्म-पुराण, विष्णु-पुराण, शिव-पुराण, श्रीमद्भागवत, नारद-पुराण, मार्कण्डेय-पुराण, अग्नि-पुराण, भविष्य-पुराण, ब्रह्मवैवर्त-पुराण, लिंग-पुराण, वाराह-पुराण, स्कन्द-पुराण, वामन-पुराण, कूर्म-पुराण, मत्स्य-पुराण, गरुण-पुराण और ब्रह्माण्ड-पुराण।

२७ भक्त—पांच होते हैं-आर्त्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी, विज्ञान और निवास।

२८ भक्ति—नौ प्रकार की है—श्रवण, कीर्तन, अर्चन वन्दन, चरण-सेवा, स्मरण, आत्म-निवेदन, दासत्व और सख्य।

२९ मद—छै हैं--जाति-मद, कुल-मद, युवावस्था-मद, रूप-मद, विद्या-मद, धन-मद, ज्ञान-मद, ध्यान-मद और राज्य-मद।

३० महायज्ञ—पांच हैं--वेद-पाठ, तर्पण, होम, बलिवैश्वदेव और अतिथि-सत्कार।

३१ युग—चार हैं--सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग।

३२ योनि--८४ लाख हैं--९ लाख जलचर, ४ लाख मनुष्य, २७ लाख स्थावर, ११ लाख कृमि, १० लाख पक्षी और २३ लाख चौपाये।

३३ रस—नौ हैं—शृङ्गार, हास्य, करुणा, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स, अद्भुत और शान्त।

३४ राम--१ परशुराम, २ रामचन्द्र, ३ बलराम।

३५ रिपु—चार हैं—१ काम, २ क्रोध, ३ लोभ और ४ मोह।

३६ लोक—१४ हैं—तल, अतल, वितल, सुतल, तलातल, रसातल, पाताल,

भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्गलोक, महर्लोक, जनलोक, तपोलोक, सत्यलोक ।

३७ वर्ण--चार है--ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ।

३८ वर्ग --४ हैं-धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ।

३९ विद्या -- चौदह है--ब्रह्म-ज्ञान, रसायन, वेद, वैद्यक, ज्योतिष, व्याकरण, धनुर्विद्या, जल में तैरना, सङ्गीत, नाटक खेलना, अश्वारोहण, कोक-शास्त्र, कृषि, न्याय ।

४० वेद--चार हैं-ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद ।

४१ वेदांग--छः हैं-शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष ।

४२ व्यसन--स्त्री द्यूतम्मृगया मद्यं नृत्यं गीतं वृथाटनम् ।
वादन्निन्दान्दिवास्वप्नन्नराणां व्यसनन्दश ।।

४३ शास्त्र--छः हैं-सांख्य, योग, वेदान्त, मीमांसा, न्याय, वैशेषिक ।

४४ श्रोता--तीन होते हैं-मुक्त, मुमुक्षु, विषयी ।

४५ शृङ्गार--सोलह हैं-१ अंगशुचि, २ मज्जन, ३ दिव्य वस्त्र, ४ महावर, ५ केश सँवारना, ६ माँग में सिन्दूर, ७ ठोडी पर तिल, ८ माथे में बिन्दी, ९ मेंहदी, १० अरगजा-लेपन, ११ भूषण, १२ सुगन्ध, १३ मुखराग, १४ दन्तराग, १५ अधर-राग, १६ काजल ।

४६ षट्रस--कटु, तिक्त, अम्ल, मधुर, कषाय और लवण यही छः रस हैं ।

४७ सप्तर्षि--वशिष्ठ, अत्रि, कश्यप, विश्वामित्र, भरद्वाज, जमदग्नि और गौतम यही सात ऋषि हैं ।

४८ सप्तावरण --जल, पवन, अग्नि, आकाश, अहंकार, महत्तत्त्व और प्रकृति ।

४९ समीर--शीतल, मन्द और सुगन्ध ।

५० सिद्धि--आठ हैं-अणिमा, महिमा, लघिमा, गरिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व और वशित्व ।

हिन्दी प्रिंटिंग प्रेस, २७ शिवाश्रम, क्वीन्स रोड, दिल्ली में मुद्रित ।